तंत्र-सूत्र

रहस्य में प्रवेश

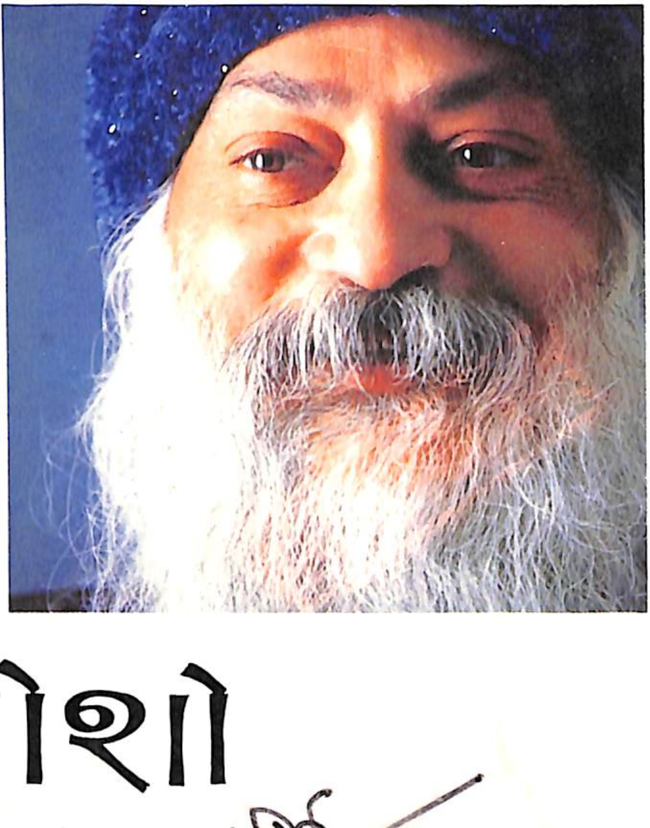

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र

नौवां खंड

ओशो

रहस्य में प्रवेश

(विज्ञान भैरव तंत्र : नौवां खंड)

(तंत्र-सूत्र : ओशो द्वारा भगवान शिव के विज्ञान भैरव तंत्र पर दिए गए 80 प्रवचनों में से 65 से 72 प्रवचनों का संकलन।)

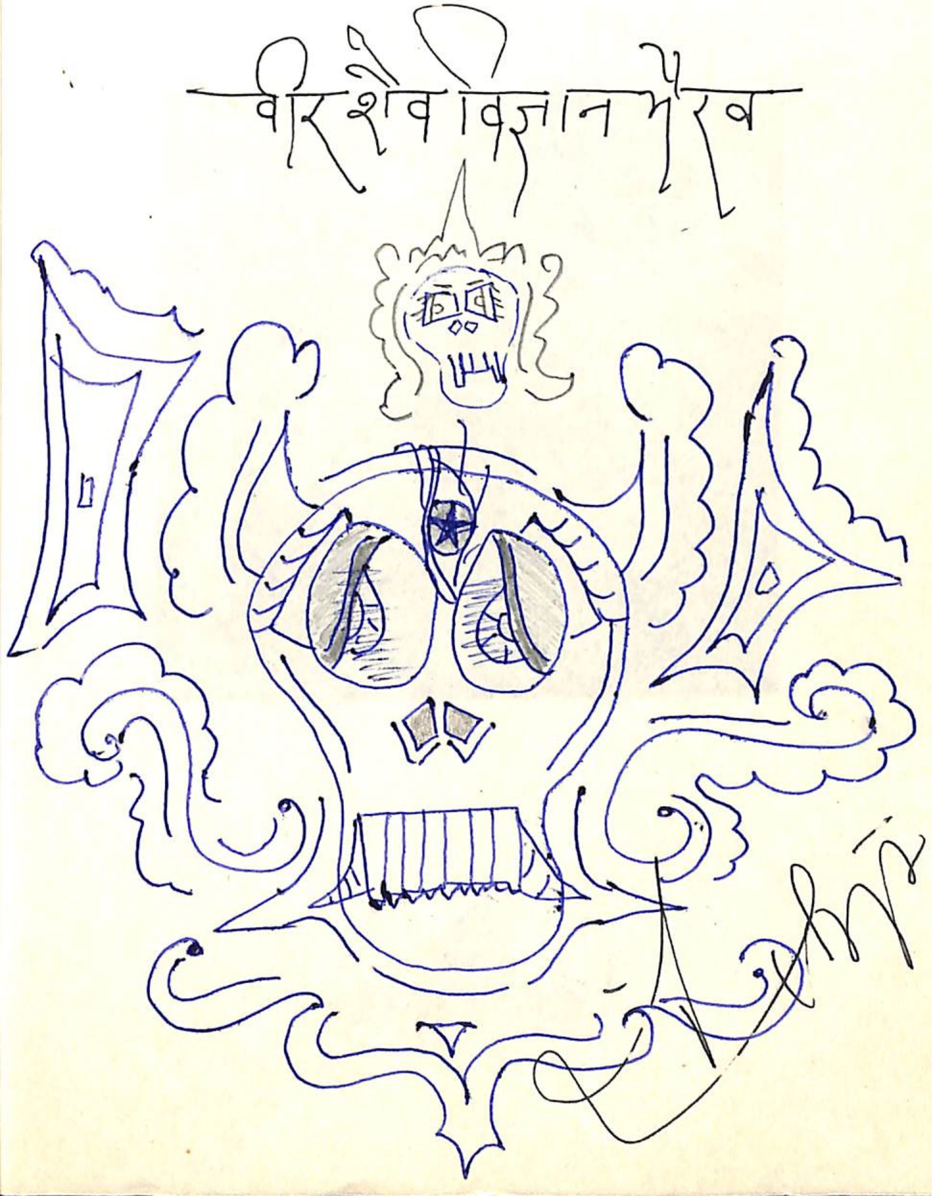

મેરે જીવન કે દેવતા —
'ભગવાન રજનીશ' आप के
શ્રી ચરણોં મેં..
કોટી-કોટી નમન ।

ओशो

रहस्य में प्रवेश

(विज्ञान भैरव तंत्र : नौवां खंड)

तंत्र-सूत्र : ओशो द्वारा भगवान शिव के विज्ञान भैरव तंत्र पर दिए गए
80 प्रवचनों में से 65 से 72 प्रवचनों का संकलन।

जन्मों-2 तक, जो गवायां ।
सारा जीवन, जिसके लिए,
— व्यर्थ लुटाया ॥
उस परम-अमृत को,
उन से मिलकर
— एक क्षण में पाया ॥

हिन्द पॉकेट बुक्स

संकलन : मा प्रेम कल्पना, मा अमृत प्रिया
संपादन : स्वामी संजय भारती, स्वामी आनंद सत्यार्थी
संयोजन : स्वामी योग अमित
साज-सज्जा : स्वामी जगदीश भारती
लेजर टाइपसेटिंग : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मुद्रक : न्यूटेक फोटोलिथोग्राफर्स दिल्ली-110095
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड,
जी. टी. रोड, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095
कापीराइट : सर्वाधिकार सुरक्षित
इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल, फोटोकापी, रेकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।
संस्करण : 2001
प्रतियां : 2000

भूमिका

तंत्र, अपनी ही चेतना में प्रवेश का मार्ग है

आधुनिक युग का निर्माण करने में विज्ञान का सबसे प्रमुख योगदान है। विशेषरूप से भौतिक विज्ञान एवं मनोविज्ञान दोनों पदार्थ और मन के रहस्यों का उद्‌घाटन करने में बहुत मात्रा में सफल हुए हैं। दोनों क्षेत्रों में किए गए अनुसंधान मनुष्य जाति के लिए अत्यंत उपयोगी इसलिए सिद्ध हुए हैं, क्योंकि दोनों ने पदार्थ एवं मन दोनों को जीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रमाणित किया है। परन्तु ये दोनों विधाएं जीवन की चाहे कितनी गहराई तक गई हों, चेतना तक पहुंचने का कोई सुराग उनके पास नहीं है। तंत्र ही वह विधा है जिसने शरीर अथवा पदार्थ तथा मन दोनों को न केवल स्वीकार किया, उसके रहस्यों को प्रकाशित किया, बल्कि साथ ही ध्यान के आयाम को जोड़कर चेतना के अनुभव का मार्ग भी तंत्र ने प्रशस्त किया।

वर्तमान जीवन एवं जगत के संदर्भ में प्रज्ञापुरुष ओशो ने तंत्र के इसी बहुआयामी स्वरूप का अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत उदात्त, अत्यंत कल्याणकारी उद्‌घाटन किया है।

पहली बात तो ओशो ने यह स्पष्ट की है कि तंत्र जीवन को देखने का विधायक भाव है, वह जीवन के पूर्ण स्वीकार का मार्ग है। तंत्र और योग का मूल भेद समझाते हुए वे कहते हैं कि मूलतः अध्यात्म के ये ही दो मार्ग हैं। योग परिश्रम एवं संकल्प का मार्ग है, तंत्र स्वीकार और समर्पण का मार्ग है। तंत्र मूलतः हृदय की खिलावट का मार्ग है।

तंत्र सेक्सुअल नहीं है, परंतु वह सेक्स का उसी पूर्णता एवं शुद्धता के भाव से स्वीकार करता है जैसे जीवन के अन्य आयामों का। तंत्र ने सेक्स को ध्यान के साथ जोड़कर उसे भी अध्यात्म के मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण सोपान बना दिया है। सदियों से बड़ी भूल यह हुई है कि तंत्र को सेक्स का पर्यायवाची मान लिया गया। तंत्र को सेक्स समझना उतना ही भ्रामक है जितना योग को मात्र आसन एवं प्राणायाम मान लेना।

ओशो ने अपने प्रवचनों द्वारा यह समझाया है कि तंत्र का पूरा जोर हमारी चेतना का विकास कैसे हो इस पर है। वे बताते हैं कि तंत्र शब्द संस्कृत के मूल धातु 'तन्' से निकला है, जिसका अर्थ होता है विस्तार। अतः तंत्र का अर्थ है—चेतना का विस्तार। मनुष्य की चेतना का विस्तार तब तक संभव नहीं जब तक वह मूर्च्छा में है। और तंत्र ध्यान की अनेकानेक विधियों द्वारा इसी मूर्च्छा को हटाने एवं जागरण के मार्ग पर हमें अग्रसर करने के लिए प्रेरित करता है।

विज्ञान के वर्तमान युग में तंत्र द्वारा दिए गए हृदय की वीणा के स्वर ओशो ने

पुनः झंकृत किए हैं। बुद्धपुरुष ओशो ने तंत्र को समसामयिक किया है, तंत्र-सूत्र में उनके ये वचन उल्लेखनीय हैं :

"ज्ञान तो हृदय से आता है, बुद्धि से नहीं। ज्ञान तुम्हारी आत्मा के अंतरतम से उठता है, मस्तिष्क से नहीं। अपनी खोपड़ी को हटा कर अलग रख दो और आत्मा का अनुसरण करो, चाहे वह जहां भी ले जाए। अगर वह खतरे में भी ले जाए तो खतरे में जाओ। क्योंकि वही तुम्हारे लिए और तुम्हारे विकास के लिए मार्ग होगा।"

स्वामी सत्य वेदांत
(डा. वसंत जोशी)
एम. ए., पी-एच. डी., महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा
पी-एच. डी. मिशिगन विश्वविद्यालय, यू. एस. ए.
कुलपति, ओशो मल्टिवर्सिटी, पूना

अनुक्रम

65. जीवन एक रहस्य है ...9

92. निर्विचार क्षणों के प्रति सजग होओ 12

93. शरीर को असीमित जानो 22

66. अंतस का आकाश और रहस्य ...27

1. आप किसे रहस्य कहते हैं? 27
2. मैं अपने को सामान्य अनुभव करता हूं, लेकिन कोई रूपांतरण नहीं देखता। 33
3. क्या अच्छे और बुरे जैसा कुछ होता है? 36
4. क्या कल्पना का उपयोग असीम के अनुभव के लिए किया जा सकता है? 39

67. मन और पदार्थ के पार ...44

94. अपने को भरा हुआ अनुभव करो 48

95. स्तनों पर अवधान को केंद्रित करो 56

68. लक्ष्य की धारणा ही बंधन है ...63

1. क्या कल्पना भी कामना नहीं है? 63
2. कल आपने कहा कि मन सत्य है। 68
   लेकिन फिर सभी गुरु मन को बाधा क्यों कहते हैं?
3. केंद्र के रूपांतरण पर इतना जोर क्यों है? 72
4. स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग विधियां क्यों हैं? 75

69. एकांत दर्पण बन जाता है ...81

96. अनंत विस्तार में देखते रहो 85

97. अनंत अंतरिक्ष को अपने आनंद-शरीर से भर दो 97

70. तपश्चर्या : अकेलेपन से गुजरने का साहस ...100

1. अकेलापन बहुत काटता है। क्या करें? 100
2. एकांत और पूर्णता में सामंजस्य कैसे बिठाएं? 106
3. संबंधों को बढ़ाएं या घटाएं? 109
4. यौन का आकर्षण क्या गर्भ में वापस लौटने का आकर्षण है? 111
5. आपका 'हम' से क्या तात्पर्य है? 115

71. परिधि का विस्मरण ...117

98. अपने हृदय में शांति का अनुभव करो 120

99. समस्त दिशाओं में व्याप्त हो जाओ 127

72. असुरक्षा में जीना बुद्धत्व का मार्ग है ...117

1. कृपया बुद्धपुरुष के प्रेम को समझाएं। 136
2. क्या प्रेम गहरा होकर विवाह नहीं बन सकता? 144
3. क्या व्यक्ति असुरक्षा में जीते हुए निश्चिंत रह सकता है? 147
4. अतिक्रमण की क्या आवश्यकता है? 150

65

जीवन एक रहस्य है

सूत्र

92. चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।

93. अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।

जीवन कोई समस्या नहीं वरन एक रहस्य है। विज्ञान के लिए जीवन एक समस्या है, लेकिन धर्म के लिए यह एक रहस्य है। समस्या का समाधान हो सकता है, रहस्य का नहीं—उसे जीया जा सकता है, सुलझाया नहीं जा सकता। धर्म कोई समाधान नहीं देता, कोई उत्तर नहीं देता। विज्ञान के पास उत्तर हैं, धर्म के पास कोई उत्तर नहीं हैं।

यह मौलिक भेद है और इससे पहले कि तुम धर्म को समझने का कोई प्रयास करो, धार्मिक मन और वैज्ञानिक मन के दृष्टिकोण के बीच इस मौलिक भेद को गहराई से समझ लेना जरूरी है।

जब मैं कहता हूं कि विज्ञान जीवन को एक पहेली की तरह देखता है, जिसे सुलझाया जा सकता है, तो पूरा दृष्टिकोण बौद्धिक हो जाता है। फिर उसमें बुद्धि समाविष्ट होती है, तुम नहीं। तुम उससे बाहर रह जाते हो। मन ही व्याख्या करता है, मन ही सब संभालता है; मन ही निरीक्षण, विश्लेषण करता है। मन विवाद करता है, संदेह उठाता है, प्रयोग करता है, पर तुम्हारी समग्रता इससे बाहर ही रहती है।

इसीलिए यह बड़ी हैरानी की घटना घटती है—हो सकता है एक वैज्ञानिक—जहां तक उसके शोध-विभाग का प्रश्न है—बहुत विद्वान हो, परंतु आम जीवन में वह सबकी तरह सामान्य मनुष्य होगा—कोई विशेष नहीं—बस सामान्य। अपने ज्ञान की शाखा में वह एक प्रतिभावान व्यक्ति हो सकता है, लेकिन जीवन में वह बस सामान्य है।

विज्ञान केवल तुम्हारी बुद्धि को सम्मिलित करता है, तुम्हारी समग्रता को नहीं। बुद्धि के पास हिंसा है, बुद्धि आक्रामक होती है। यही कारण है कि बहुत कम स्त्रियां वैज्ञानिक हो पाती हैं—आक्रामकता उनके लिए स्वाभाविक नहीं है। बुद्धि पुरुषोचित होती है, आक्रामक होती है; यही कारण है कि पुरुष अधिक वैज्ञानिक और स्त्रियां अधिक धार्मिक होती हैं। बुद्धि काटने का, विभाजित करने का, विश्लेषण करने का प्रयास करती है।

और जब तुम किसी जीवित चीज को काटते हो तो उसमें से जीवन विदा हो जाता है, केवल मुर्दा अंग तुम्हारे हाथों में रह जाते हैं।

इसीलिए विज्ञान कभी जीवन को नहीं छू पाता। वस्तुतः जो कुछ भी वह छूता है मृत हो जाता है। जब विज्ञान कहता है कि कोई आत्मा नहीं है या कोई परमात्मा नहीं है तो यह अर्थपूर्ण है, इसलिए नहीं कि आत्मा या परमात्मा नहीं है, बल्कि इसलिए कि उससे पता चलता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण ऐसा है कि वह कहीं भी जीवन को नहीं छू सकता। जहां भी विज्ञान छूता है, मृत्यु घट जाती है। विभाजन, विश्लेषण, विच्छेदन की विधि से ही, दृष्टिकोण से ही जीवन बाहर छूट जाता है।

एक बात—बुद्धि हिंसक और आक्रामक है, इसलिए बुद्धि के द्वारा अंतिम परिणाम मृत्यु ही हो सकती है, जीवन नहीं। बुद्धि आंशिक है, समग्र नहीं। जीवन एक इकाई है। तुम इसे संश्लेषण से जान सकते हो, विश्लेषण से नहीं। जितना ही उच्चतर संश्लेषण होगा, उतने ही उच्चतर जीवन का विकास होता है। परमात्मा परम संश्लेषण है, परिपूर्ण इकाई है, अस्तित्व की पूर्णता है। परमात्मा कोई पहेली नहीं वरन अस्तित्व का परम संश्लेषण है—और पदार्थ अस्तित्व का परम विश्लेषण।

तो विज्ञान अंततः आणविक भौतिकता पर पहुंच जाता है और धर्म ब्रह्मांडीय चेतना पर; विज्ञान अंतिम, निम्नतम तल की ओर गति करता है और धर्म उच्चतम तल की ओर उठता है। दोनों विपरीत आयामों में गति करते हैं। तो विज्ञान हर चीज को समस्या में बदल लेता है, क्योंकि यदि वैज्ञानिक तरीके से कुछ सुलझाना हो तो पहले यह निश्चित करना पड़ता है कि वह समस्या भी है या नहीं।

धर्म रहस्य को आधार बनाता है। कहीं कोई समस्या नहीं है, जीवन कोई समस्या नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसे सुलझाया नहीं जा सकता। समस्या का अर्थ है जिसे सुलझाया जा सके, जिसे जाना जा सके, जो अभी अज्ञात है, पर अज्ञेय नहीं है—किसी भी क्षण वह अज्ञात से ज्ञात में बदल सकती है।

तो वास्तव में, धर्म इस तरह का प्रश्न नहीं पूछ सकता कि 'जीवन क्या है?' यह बेकार की बात है। धर्म ऐसा प्रश्न नहीं पूछ सकता कि 'परमात्मा क्या है?' यह बेवकूफी है। धर्म का ढंग ही समस्याएं खड़ी करने का नहीं है। धर्म यह पूछ सकता है कि कैसे और जीवंत हुआ जाए, कैसे जीवन के प्रवाह में बहा जाए, कैसे समग्रता से जीया जाए; धर्म पूछ सकता है कि परमात्मा कैसे हुआ जाए—लेकिन यह नहीं पूछ सकता कि परमात्मा क्या है।

रहस्यों को हम जी सकते हैं, उनके साथ हम एक हो सकते हैं, हम स्वयं को उनमें खो दे सकते हैं, हम एक बिलकुल अलग अस्तित्व प्राप्त कर सकते हैं, उससे सारा गुण बदल जाता है—लेकिन कुछ सुलझता नहीं, क्योंकि कुछ भी सुलझाया नहीं जा सकता। और जो कुछ भी ऐसा लगता है कि सुलझाया जा सकता है या जाना जा सकता है, वह केवल इसीलिए लगता है क्योंकि हम उसे टुकड़ों में देख रहे हैं। यदि हम पूर्ण को देखें तो कुछ भी जाना नहीं जा सकता है, हम केवल रहस्य को पीछे ढकेलते रहते हैं।

हमारे सभी उत्तर कामचलाऊ हैं। वे केवल आलसी चित्त के लोगों को उत्तर मालूम पड़ते हैं। यदि तुम्हारे पास खोजी चित्त है तो तुम वापस उसी रहस्य पर पहुंच जाओगे, तुम पाओगे कि वह प्रश्न केवल एक कदम पीछे हट गया। उत्तरों के ठीक पीछे प्रश्न छिपा है। तुमने केवल उत्तर का मुखौटा बना लिया है, रहस्य पर एक पर्दा डाल लिया है।

यदि तुम इस भेद को अनुभव कर सके तो शुरू से ही धर्म एक दूसरा रूप, एक दूसरा रंग, एक दूसरा दृष्टिकोण ले लेता है। सारा का सारा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है। ये विधियां जिनकी हम चर्चा कर रहे हैं किसी चीज को सुलझाने के लिए नहीं हैं—ये विधियां जीवन को समस्या की तरह नहीं देखतीं। जीवन तो बस है। यह सदा एक रहस्य रहा है और सदा रहस्य रहेगा। हम कुछ भी करें इसके रहस्य को मिटा नहीं सकते, क्योंकि रहस्यमय होना ही इसका गुण है। जीवन का रहस्यमय होना कोई ऊपरी घटना नहीं है, रहस्य कुछ ऐसा नहीं है जिसे जीवन से अलग किया जा सके—यह तो स्वयं जीवन है।

तो मेरे देखे, जितने ही तुम इस रहस्य में, इस रहस्यमयता में प्रवेश करते हो, उतने ही तुम धार्मिक होते हो। एक वास्तविक धार्मिक व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि वह परमात्मा में विश्वास करता है। वह यह नहीं कहेगा कि परमात्मा है। ये चीजें बहुत उथली मालूम पड़ती हैं, ऐसे लगती हैं जैसे कि कुछ विशेष प्रश्नों के उत्तर दिए गये हों। एक धार्मिक व्यक्ति ऐसी भौतिक भाषा नहीं बोल सकता कि परमात्मा है। यह तो इतनी गहरी बात है, इतनी रहस्यपूर्ण बात है कि इस बारे में कुछ भी कहना पाप होगा।

इसीलिए जब भी कोई बुद्ध से पूछता था कि परमात्मा है या नहीं, तो वे मौन रह जाते थे। तुम ऐसी बात पूछ रहे हो जिसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। ऐसा नहीं है कि परमात्मा नहीं है, लेकिन ऐसी चीज के बारे में कुछ भी कहना उसे उत्तर देने योग्य बना देगा। तब जीवन एक समस्या बन जाएगा जिसका उत्तर दिया जा सकता है। फिर रहस्य विदा हो जाता है। इसीलिए बुद्ध कहते थे, मुझसे कोई आध्यात्मिक प्रश्न मत पूछो।

प्रश्न केवल भौतिक हो सकते हैं। भौतिक-शास्त्र उनका उत्तर दे सकता है। प्रश्न आध्यात्मिक नहीं होते, हो नहीं सकते, क्योंकि अध्यात्म का अर्थ ही रहस्य है।

ये विधियां तुम्हें ज्ञान में नहीं, रहस्य में और गहरे ले चलने के लिए हैं।

या तुम इसे दूसरी तरह से देख सकते हो—ये विधियां तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से निर्भार करने के लिए हैं। ये तुम्हारा ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं हैं। क्योंकि ज्ञान ही बाधा है, इससे रहस्य का द्वार बंद हो जाता है। जितना तुम अधिक जानते हो, उतने ही तुम जीवन में गहरे प्रवेश करने के कम योग्य हो जाते हो।

मौलिक आश्चर्य-भाव को पुनः प्राप्त कर लेना अत्यंत जरूरी है। क्योंकि बच्चों जैसे आश्चर्य के भाव में कुछ ज्ञात नहीं रह जाता और सब कुछ रहस्य बन जाता है। और यदि तुम रहस्य में उतरो तो जितने गहरे उतरोगे, रहस्य उतना ही गहन होता जाएगा। और एक क्षण आता है जब तुम कह सकते हो कि तुम कुछ नहीं जानते। वही सम्यक क्षण है।

अब तुम ध्यानपूर्ण हुए। जब तुम एक गहन अज्ञान अनुभव कर सकते हो, जब तुम इस बात के प्रति सजग होते हो कि तुम कुछ नहीं जानते, तो तुम उस संतुलित बिंदु पर पहुंच जाते हो जहां से रहस्य का द्वार खुल सकता है। यदि तुम ज्ञानी हो तो द्वार बंद रहता है; यदि तुम अज्ञानी हो और पूरी तरह सचेत हो कि तुम कुछ नहीं जानते, अचानक द्वार खुल जाता है। तुम्हारें कुछ न जानने का भाव ही द्वार खोल देता है।

तो इन विधियों को ज्ञान की तरह मत लेना, बल्कि तुम्हें और निर्दोष बनाने में मदद की तरह लेना। अज्ञान निर्दोषिता है, ज्ञान सदा ही एक तरह की धूर्तता और चालाकी है। यदि तुम अपने ज्ञान का उपयोग पुनः अज्ञानी होने के लिए कर लो तो तुमने उसका ठीक उपयोग किया। सभी शास्त्रों का, सारे ज्ञान का, सारे वेदों का यही एकमात्र उपयोग है—तुम फिर से बच्चों जैसे हो जाओ।

निर्विचार क्षणों के प्रति सजग होओ

अब पहली विधि :

92. चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।

तीन बातें। पहली, यदि ज्ञान महत्त्वपूर्ण है तो मस्तिष्क केंद्र होगा; यदि बच्चों जैसी निर्दोषिता महत्त्वपूर्ण है तो हृदय केंद्र होगा। बच्चा हृदय में जीता है, हम मस्तिष्क में जीते हैं, बच्चा अनुभव करता है, हम विचार करते हैं। जब हम कहते हैं कि हम अनुभव कर रहे हैं, तब भी हम विचार करते हैं कि अनुभव कर रहे हैं। सोचना हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है और अनुभव गौण हो जाता है। विचार विज्ञान का ढंग है और अनुभव धर्म का।

तुम्हें फिर से अनुभव करना शुरू करना चाहिए। और दोनों ही आयाम बिलकुल अलग हैं। जब तुम विचार करते हो, तुम अलग बने रहते हो। जब तुम अनुभव करते हो, तुम पिघलते हो।

एक गुलाब के फूल के बारे में सोचो। जब तुम सोच रहे हो तो तुम अलग हो; दोनों के बीच एक दूरी है। सोचने के लिए दूरी की जरूरत है; विचारों को गति करने के लिए दूरी चाहिए। फूल को अनुभव करो और अलगाव समाप्त हो जाता है, दूरी विदा हो जाती है। क्योंकि भाव के लिए दूरी बाधा है। जितने ही तुम किसी चीज के निकट आते हो, उतना ही अधिक उसे अनुभव कर सकते हो। एक क्षण आता है जब निकटता भी एक तरह की दूरी लगती है—और तब तुम पिघलते हो। तब तुम अपनी और फूल की सीमाओं को अनुभव नहीं कर सकते, तुम नहीं कह सकते कि तुम कहां समाप्त होते हो और फूल कहां शुरू होता है। तब सीमाएं एक-दूसरे में विलीन हो जाती हैं। फूल एक तरह से तुम में प्रवेश कर जाता है और तुम एक तरह से फूल में प्रवेश कर जाते हो।

भाव है सीमाओं का खो जाना; विचार है सीमाओं का बनना। यही कारण है कि विचार सदा परिभाषाएं मांगता है, क्योंकि परिभाषाओं के बिना तुम सीमाएं नहीं खड़ी कर सकते। विचार कहता है कि पहले परिभाषा कर लो; और भाव कहता है परिभाषा मत करो। यदि तुम परिभाषा करते हो तो भाव समाप्त हो जाता है।

बच्चा अनुभव करता है; हम विचार करते हैं। बच्चा अस्तित्व के निकट आता है, वह पिघलता है और अस्तित्व को स्वयं में पिघलने देता है। हम अकेले, अपने मस्तिष्क में बंद हैं। हम ऐसे हैं जैसे द्वीप।

यह सूत्र कहता है कि हृदय के केंद्र पर लौट आओ। चीजों को अनुभव करना शुरू करो। यदि तुम अनुभव करना शुरू करो तो अद्भुत अनुभव होगा। जो भी कुछ तुम करो अपना थोड़ा समय और थोड़ी ऊर्जा भाव को दो। तुम यहां बैठे हो, तुम मुझे सुन सकते हो—लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा होगा। तुम मुझे यहां महसूस भी कर सकते हो, लेकिन वह सोच-विचार का हिस्सा नहीं होगा। यदि मेरी उपस्थिति को महसूस कर सको तो परिभाषाएं खो जाती हैं। तब वास्तव में; यदि तुम भाव की सम्यक स्थिति में पहुंच जाओ तो तुम्हें पता नहीं रहता कि कौन बोल रहा है और कौन सुन रहा है। तब वक्ता श्रोता बन जाता है, श्रोता वक्ता बन जाता है। तब वास्तव में वे दो नहीं रहते। बल्कि एक ही घटना के दो ध्रुव हो जाते हैं—एक ध्रुव पर वक्ता होता है और दूसरे ध्रुव पर श्रोता। लेकिन दोनों ही बस ध्रुव हैं, अलग-अलग। वास्तविक चीज तो दोनों के मध्य में है—जो कि जीवन है, प्रवाह है।

जब भी तुम अनुभव करते हो तो तुम्हारे अहंकार के अतिरिक्त कुछ और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। विषय और विषयी अपनी परिभाषाएं खो देते हैं। एक प्रवाह, एक तरंग बचती है—एक ओर वक्ता और दूसरी ओर श्रोता, लेकिन मध्य में जीवन की धारा।

मस्तिष्क तुम्हें व्याख्या देता है और इस व्याख्या के कारण बहुत भ्रांति पैदा हुई है। क्योंकि मस्तिष्क साफ-साफ परिभाषा करता है, सीमा बांधता है, नक्शे बनाता है। तर्क से सब सुस्पष्ट हो जाता है; किसी प्रकार की अनिश्चितता, किसी रहस्य की कोई संभावना नहीं रह जाती। हर अनिश्चितता अस्वीकृत हो जाती है, केवल जो स्पष्ट है वही वास्तविक है। तर्क तुम्हें एक स्पष्टता देता है और इस स्पष्टता के कारण भ्रम पैदा होता है।

वास्तविकता का स्पष्टता से लेना-देना नहीं है। सत्य सदा बेबूझ है। धारणाएं सुस्पष्ट होती हैं, सत्य रहस्यमय होता है; धारणाएं संगत होती हैं, सत्य असंगत होता है।

शब्द स्पष्ट होते हैं, तर्क स्पष्ट होता है, परंतु जीवन अनिश्चित रहता है। हृदय तुम्हें एक तरल अनिश्चितता देता है। हृदय सत्य के अधिक निकट पहुंचता है, परंतु तर्क की सुस्पष्टता नहीं होती। और क्योंकि हमने सुस्पष्टता को लक्ष्य बना लिया है इसलिए हम सत्य को चूकते चले जाते हैं। सत्य में दोबारा प्रवेश करने के लिए तुम्हें तरल आंखें चाहिए। तुम्हें तरल होना चाहिए, तुम्हें धारणा-शून्य, अतर्क्य, विस्मयकारी और जीवंत सत्य में प्रवेश करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

सुस्पष्टता तो मृत है। उसमें बदलाहट नहीं है, बहाव नहीं है। जीवन एक बहाव है, उसमें कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, अगले क्षण कुछ भी वैसा नहीं रहता। तो जीवन के प्रति तुम कैसे सुस्पष्ट हो सकते हो? यदि तुम सुस्पष्टता का अधिक ही आग्रह करोगे तो जीवन से तुम्हारा संबंध टूट जाएगा। यही हुआ है।

यह सूत्र कहता है कि पहली बात है, अपने हृदय के केंद्र पर वापस लौट आओ। लेकिन वापस कैसे लौटें?

'चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।'

मन का अर्थ है मानसिक प्रक्रिया, सोच-विचार। और चित्त का अर्थ है वह पृष्ठभूमि जिस पर विचार तैरते हैं—ऐसे ही जैसे आकाश में बादल तैरते हैं। बादल हैं विचार और आकाश है वह पृष्ठभूमि जिस पर वे तैरते हैं। उस आकाश, उस चेतना को चित्त कहा गया है। तुम्हारा मन विचार-शून्य हो सकता है; तब वह चित्त है, तब वह शुद्ध मन है। जब विचार होते हैं तो मन अशुद्ध होता है।

विचार-शून्य मन अस्तित्व की सूक्ष्मतम घटना है। इससे अधिक सूक्ष्म संभावना की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। चेतना अस्तित्व की सबसे सूक्ष्म घटना है। तो जब मन में कोई विचार नहीं होते तब तुम्हारा मन शुद्ध होता है। शुद्ध मन हृदय की ओर गति कर सकता है, अशुद्ध मन नहीं कर सकता। अशुद्धता से मेरा अर्थ मन में अशुद्ध विचारों का होना नहीं है, अशुद्धता से मेरा अर्थ है सारे विचार—विचार मात्र ही अशुद्धि है।

यदि तुम परमात्मा के बारे में सोच रहे हो तो भी यह अशुद्धता है, क्योंकि बादल तो तैर ही रहा है। बादल बहुत शुभ्र है, लेकिन फिर भी है और आकाश निर्मल नहीं है। आकाश निरभ्र नहीं है। बादल काला हो सकता है—मन में कोई कामुक विचार गुजर जाए; या बादल सफेद हो सकता है—मन में कोई सुंदर प्रार्थना गुजर सकती है, लेकिन दोनों ही स्थितियों में मन शुद्ध नहीं है। मन अशुद्ध है, बादलों से घिरा है। और मन यदि बादलों से घिरा हो तो तुम हृदय की ओर नहीं बढ़ सकते।

यह समझ लेने जैसा है, क्योंकि विचारों के रहते तुम मस्तिष्क से जुड़े रहते हो। विचार जड़ें हैं, और जब तक तुम उन जड़ों को ही न काट डालो तुम वापस हृदय पर नहीं लौट सकते। बच्चा उस क्षण तक ह्रदय में रहता है जिस क्षण तक विचार उसके मन में पैदा होने शुरू नहीं होते। फिर वे जड़ें जमाते हैं; फिर शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता से विचार जमते हैं; फिर धीरे-धीरे चेतना हृदय से मस्तिष्क की ओर मुड़ने लगती है। चेतना मस्तिष्क में केवल तभी रह सकती है जब विचार हों। यही आधार है। जब विचार नहीं होते तो चेतना तत्क्षण हृदय में अपनी वास्तविक निर्दोषिता पर वापस लौट आती है।

इसीलिए ध्यान पर, निर्विचार अवस्था पर, विचार-शून्य सजगता पर, चुनाव-रहित बोध पर इतना जोर दिया गया है, या बुद्ध के 'सम्यक चित्त' पर इतना जोर दिया गया है, जिसका अर्थ है विचार-शून्य चित्त का होना, केवल होशपूर्ण होना। तब क्या होता है? एक अद्भुत घटना घटती है, क्योंकि जब जड़ें कट जाती हैं तो चेतना तत्क्षण हृदय

पर, अपने मूल स्रोत पर लौट आती है। तुम फिर बच्चे बन जाते हो।

जीसस कहते हैं, 'केवल वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर पाएंगे जो बच्चों जैसे हैं।'

वह ऐसे ही लोगों की बात कर रहे हैं जिनकी चेतना अपने हृदय पर लौट आई है; जो निर्दोष हो गए हैं, बच्चों जैसे हो गए हैं। लेकिन पहली आवश्यकता है चित्त को अव्याख्य सूक्ष्मता में ले जाना।

विचारों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। ऐसा कोई भी विचार नहीं है जिसे अभिव्यक्त न किया जा सके। यदि उसे अभिव्यक्त न किया जा सके तो तुम उसे सोच भी नहीं सकते। यदि तुम उसे सोच सकते हो तो उसे अभिव्यक्त भी कर सकते हो। ऐसा एक भी विचार नहीं है जिसे तुम अनिर्वचनीय कह सको। जिस क्षण तुमने उसे सोचा, वह वचनीय हो गया—तुमने उसे अपने से तो कह ही दिया।

चेतना, शुद्ध चैतन्य। अव्याख्य है। इसीलिए तो संत कहते हैं कि वे जो जानते हैं उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। तार्किक सदा यह प्रश्न उठाते हैं कि अगर तुम जानते हो तो कह क्यों नहीं सकते? और उनके तर्क में अर्थ है, बल है। अगर तुम सच में कहते हो कि तुम जानते हो तो तुम अभिव्यक्त क्यों नहीं कर सकते?

तार्किक के लिए ज्ञान व्याख्य होना चाहिए—जिसे जाना जा सकता है, उसे दूसरों को जनाया भी जा सकता है, उसमें कोई समस्या नहीं है। यदि तुमने जान ही लिया है तो फिर क्या समस्या है? तुम उसे दूसरों को भी जना सकते हो। लेकिन संत का ज्ञान विचारों का नहीं होता। उसने विचार की भांति नहीं जाना है; एक अनुभूति की भांति जाना है। तो वास्तव में यह कहना ठीक नहीं है, 'मैं परमात्मा को जानता हूं।' यह कहना बेहतर है, 'मैं अनुभव करता हूं।' यह कहना ठीक नहीं है, 'मैंने परमात्मा को जाना है।' यह कहना अच्छा है, 'मैंने उसका अनुभव किया है।' यह उस घटना की ज्यादा उचित अभिव्यक्ति है, क्योंकि ज्ञान हृदय के द्वारा होता है, वह अनुभूति की तरह है, जानने की तरह नहीं।

'चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखो…।'

चित्त अव्याख्य है। यदि कोई विचार चल रहा हो तो वह व्याख्य है। इसलिए मन को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में रखने का अर्थ है ऐसी स्थिति में पहुंच जाना जहां तुम चैतन्य तो हो, पर किन्हीं विचारों के प्रति नहीं; तुम पूरी तरह सजग तो हो, पर तुम्हारे मन में कोई विचार नहीं चल रहे। यह बहुत सूक्ष्म और बहुत कठिन बात है—तुम आसानी से इसे चूक सकते हो।

हम मन की दो अवस्थाओं को जानते हैं। एक अवस्था तो वह जब विचार होते हैं। जब विचार होते हैं तो तुम हृदय की ओर नहीं जा सकते। फिर हम मन की एक दूसरी अवस्था जानते हैं—जब विचार नहीं होते। जब विचार नहीं होते, तुम सो जाते हो। हर रात कुछ क्षणों, कुछ घंटों के लिए तुम विचार से बाहर हो जाते हो। विचार खो जाते हैं, पर तुम हृदय तक नहीं पहुंचते क्योंकि तुम अचेतन हो। तो एक बड़े सूक्ष्म संतुलन

की जरूरत है। विचार ऐसे ही खो जाने चाहिए जैसे वे गहरी नींद में खो जाते हैं जब कोई सपने नहीं चलते—और तुम्हें उतना सजग होना चाहिए जितने तुम जागते हुए होते हो। मन उतना विचार-रहित होना चाहिए जितना गहरी नींद में होता है, लेकिन तुम्हें सोया हुआ नहीं होना चाहिए, तुम्हें पूरी तरह जाग्रत, होशपूर्ण होना चाहिए।

जब जागरण और इस विचार-शून्यता का मिलन होता है तो ध्यान घटित होता है। इसीलिए पतंजलि कहते हैं कि समाधि सुषुप्ति की तरह है। परम आनंद गहनतम नींद की तरह है, बस एक ही भेद है—इसमें तुम सोए नहीं होते। लेकिन गुण वही है—विचार-शून्य, स्वप्न-शून्य, शांत, कोई तरंग नहीं, एकदम शांत और मौन, लेकिन जागरूक।

जब तुम होश में होते हो और कोई विचार नहीं होता तो तुम अपनी चेतना में अचानक एक रूपांतरण अनुभव करते हो। केंद्र बदल जाता है। तुम वापस फेंक दिए जाते हो। तुम हृदय पर वापस फेंक दिए जाते हो। और हृदय से जब तुम संसार को देखते हो तो संसार नहीं होता, बस परमात्मा होता है। बुद्धि से जब तुम अस्तित्व को देखते हो तो परमात्मा नहीं होता, बस भौतिक अस्तित्व होता है।

पदार्थ, भौतिक अस्तित्व, संसार और परमात्मा दो चीजें नहीं हैं, देखने के दो ढंग हैं, दो परिप्रेक्ष्य हैं। वे एक ही अस्तित्व को दो अलग-अलग केंद्रों से देखी गई घटनाएं हैं।

'चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, और नीचे और भीतर रखो।'

पूरी तरह से उसमें डूब जाओ, विलीन हो जाओ। हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर एक चैतन्य मात्र रह जाए—पूरा हृदय बस एक चेतना से घिर जाए, किसी बारे में भी मत सोचो, बस सजग रहो, बिना किसी शब्द के, बिना किसी विचार के, बस होओ।

चित्त को हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो और तुम्हारे लिए सब कुछ संभव हो जाएगा। देखने के सब द्वार स्वच्छ हो जाएंगे और रहस्यों के सब द्वार खुल जाएंगे। अचानक कोई समस्या न रहेगी, अचानक कोई दुख न रहेगा—जैसे अंधकार पूरी तरह मिट गया हो।

एक बार तुम इसे जान लो तो तुम वापस बुद्धि पर जा सकते हो, पर तुम अब वही नहीं होओगे। अब तुम बुद्धि का एक यंत्र की तरह उपयोग कर सकते हो, उससे काम ले सकते हो, पर तुम उसके साथ तादात्म्य नहीं बनाओगे। उससे काम लेते समय भी जब तुम संसार को देखोगे तो तुम्हें पता होगा कि जो भी तुम देख रहे हो वह बुद्धि के कारण है। अब तुम एक उच्चतर अवस्था, एक गहनतर दृष्टिकोण से परिचित हो—और जिस क्षण तुम चाहो तुम वापस लौट सकते हो।

एक बार तुम्हें मार्ग का पता लग जाए और खयाल आ जाए कि कैसे चेतना वापस लौटती है, कैसे तुम्हारी आयु, तुम्हारा अतीत, तुम्हारी स्मृति और तुम्हारा ज्ञान समाप्त हो जाता है और तुम दोबारा एक नवजात शिशु हो जाते हो—एक बार तुम्हें इस रहस्य

का पता चल जाए—तो तुम जब चाहे केंद्र की यात्रा कर सकते हो और पुनः जीवंत, ताजे, प्राणवान हो सकते हो। यदि तुम्हें फिर बुद्धि में लौटना पड़े तो तुम उसका उपयोग कर सकते हो, तुम सामान्य संसार में जा सकते हो—तुम उसमें कार्य करोगे पर उससे तादात्म्य नहीं करोगे, क्योंकि गहरे में तुम जानते हो कि बुद्धि के द्वारा जो भी जाना जाता है वह आंशिक है, वह पूर्ण सत्य नहीं है। और आंशिक सत्य झूठ से भी खतरनाक होता है, क्योंकि वह सत्य जैसा प्रतीत होता है और तुम उससे धोखा खा सकते हो।

कुछ और बातें। जब तुम हृदय पर लौटते हो तो तुम अस्तित्व को एक पूर्ण इकाई की तरह देखते हो। हृदय विभाजित अंग नहीं है, हृदय तुम्हारा एक हिस्सा नहीं है, हृदय का अर्थ है तुम्हारी संपूर्ण समग्रता। मन एक हिस्सा है, हाथ एक हिस्सा है, पांव एक हिस्सा है, पेट एक हिस्सा है, पूरे शरीर को अगर हम अलग-अलग लें तो वह हिस्सों में बंट जाता है। पर हृदय एक हिस्सा नहीं है। यही कारण है कि अगर मेरा हाथ काट दिया जाए तो भी मैं जीवित रहूंगा। मेरा मस्तिष्क भी निकाल दिया जाए तो भी मैं जीवित रहूंगा, लेकिन मेरा हृदय गया कि मैं भी गया।

वास्तव में मेरा पूरा शरीर अलग किया जा सकता है, लेकिन अगर मेरा हृदय धड़क रहा है तो मैं जीवित हूं। हृदय का अर्थ है तुम्हारी पूर्णता। तो जब तुम्हारा हृदय बंद होता है, तुम नहीं रहते। और दूसरी सब चीजें बस हिस्से हैं, दूसरी लगाई जा सकती हैं। यदि हृदय धड़क रहा है तो तुम सुरक्षित होगे। हृदय का केंद्र तुम्हारे अस्तित्व का अंतरतम बिंदु है।

मैं अपने हाथ से तुम्हें छू सकता हूं। वह स्पर्श मुझे तुम्हारे बारे में एक जानकारी देगा, तुम्हारी त्वचा के बारे में जानकारी देगा कि वह चिकनी है या नहीं। हाथ मुझे कुछ जानकारी देगा, लेकिन वह जानकारी बस आंशिक होगी क्योंकि हाथ मेरी समग्रता नहीं है। मैं तुम्हें देख सकता हूं। मेरी आंखें तुम्हारे बारे में एक अलग जानकारी देंगी, लेकिन वह भी पूरी नहीं होगी। मैं तुम्हारे बारे में सोच सकता हूं—फिर वही बात। लेकिन मैं तुम्हें हिस्सों में महसूस नहीं कर सकता। यदि मैं तुम्हें महसूस करता हूं तो तुम्हारी पूरी समग्रता में ही महसूस करता हूं। यही कारण है कि जब तुम प्रेम के द्वारा न जानो, तुम किसी व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में नहीं जान सकते। केवल प्रेम से ही पूर्ण व्यक्तित्व, समग्र अस्तित्व तुम्हारे सामने प्रकट होता है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है हृदय से जानना, हृदय से अनुभव करना। तो मेरे देखे अनुभव करना और जानना, तुम्हारे अस्तित्व के दो हिस्से नहीं हैं। अनुभव है तुम्हारी पूर्णता और जानकारी बस उसका एक हिस्सा है।

धर्म के लिए प्रेम परम ज्ञान है। इसीलिए धर्म की अभिव्यक्ति वैज्ञानिक ढंग के बजाय काव्यात्मक शैली में अधिक हुई है। वैज्ञानिक भाषा का उपयोग नहीं हो सकता, क्योंकि उसका संबंध जानकारी के जगत से है। काव्य का उपयोग हो सकता है। और जो प्रेम के द्वारा सत्य तक पहुंचे हैं, वे जो भी कहते हैं काव्य हो जाता है। उपनिषद, वेद, जीसस या बुद्ध या कृष्ण के वचन, ये सब काव्यात्मक वक्तव्य हैं।

यह संयोग ही नहीं है कि पुराने सभी धर्म-ग्रंथ काव्य में लिखे गए हैं। इसमें बड़ा

अर्थ है। इससे पता चलता है कि कवि के जगत में और ऋषि के जगत में एक तरह की समानुभूति है। ऋषि भी हृदय की भाषा का उपयोग करता है।

कवि केवल कुछ क्षणों की उड़ान में ऋषि बन जाता है, ऐसे ही जैसे जब तुम कूदते हो तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से दूर हो जाते हो, लेकिन फिर वापस लौट आते हो। कवि का अर्थ है जो कुछ क्षणों के लिए संतों के जगत में उड़ान भर आया हो। उसे कुछ झलकें मिली हैं। संत वह है जो गुरुत्वाकर्षण के बिलकुल पार चला गया है, जो प्रेम के संसार में जीता है, जो हृदय से जीता है। हृदय जिसका निवास बन गया है। कवि के लिए तो यह बस एक झलक भर है—कभी-कभी वह बुद्धि से हृदय में उतर आता है। लेकिन ऐसा बस कुछ क्षणों के लिए घटता है—वह फिर बुद्धि में वापस लौट जाता है।

तो अगर तुम कोई सुंदर कविता देखो तो उस कवि से मिलने मत चले जाना जिसने उसे लिखा है, क्योंकि तुम उसी व्यक्ति से नहीं मिलोगे। तुम बहुत निराश होओगे, क्योंकि तुम्हारा एक बहुत साधारण आदमी से मिलना होगा। उसे एक झलक मिली है; कुछ क्षणों के लिए सत्य उस पर प्रकट हुआ और वह हृदय पर उतर आया। लेकिन उसे मार्ग का पता नहीं है। वह उसका मालिक नहीं है। यह तो बस एक आकस्मिक घटना है और वह अपनी मरज़ी से इस आयाम में गति नहीं कर सकता।

जब कूलरिज मरा तो चालीस हजार अधूरी कविताएं छोड़कर मरा। उसने अपने पूरे जीवन में बस सात ही कविताएं पूरी कीं। वह महान कवि था, संसार के महानतम कवियों में से एक था, लेकिन कई बार उससे पूछा गया, 'तुम अधूरी कविताओं का ढेर क्यों लगाते रहते हो और तुम उन्हें कब पूरा करोगे?' वह कहता, 'मैं कुछ नहीं कर सकता। कभी-कभी कुछ पंक्तियां मुझे उतरती हैं और फिर वे रुक जाती हैं। तो मैं उन्हें कैसे पूरा कर सकता हूं? मैं प्रतीक्षा करूंगा। मुझे प्रतीक्षा करनी ही होगी। यदि दोबारा मुझे झलक मिलती है और दोबारा अस्तित्व मुझ पर सत्य को प्रकट करता है, तो फिर मैं उसे पूरा करूंगा। लेकिन अपने आप तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता।'

वह बड़ा ईमानदार कवि रहा होगा। इतने ईमानदार कवि खोज पाना कठिन है, क्योंकि मन की प्रवृत्ति है पूर्ति करना। यदि तीन पंक्तियां उतरती हैं तो तुम चौथी जोड़ लोगे; और वह चौथी बाकी तीन की भी हत्या कर देगी, क्योंकि वह मन की बड़ी निम्न अवस्था से आएगी—जब तुम पृथ्वी पर वापस लौट चुके होओगे।

जब तुम उछले तो कुछ क्षणों के लिए तुम गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो गए, तुम अस्तित्व के एक अलग ही आयाम में चले गए। कवि धरती पर रहता है पर कभी-कभी ऊंची छलांग लेता है। उस छलांग में उसे झलकें मिलती हैं। संत हृदय में रहता है। वह धरती पर नहीं चलता, हृदय उसका निवास बन गया होता है। तो वास्तव में वह कविता रचता नहीं, लेकिन वह जो भी कहता है, कविता बन जाता है। वास्तव में संत गद्य का प्रयोग ही नहीं करता, क्योंकि उसका गद्य भी कविता है, वह उसके हृदय से आ रहा है, उसके प्रेम से आ रहा है।

'चित्त को ऐसी अव्याख्य सूक्ष्मता में अपने हृदय के ऊपर, नीचे और भीतर रखो।'

हृदय तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व है। और जब तुम समग्र हो केवल तभी तुम समग्र को जान सकते हो—इसे याद रखना। केवल समान ही समान को जान सकता है। जब तुम आंशिक हो तो समग्र को नहीं जान सकते। जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। यदि भीतर तुम समग्र हो तो बाहर की समग्र वास्तविकता तुम पर प्रकट होगी, तुम उसे जानने में सक्षम हो गए, तुमने उसे जानने की पात्रता अर्जित कर ली। जब तुम भीतर बंटे होते हो तो बाहर सत्य भी बंटा दिखता है। तो जो भी तुम भीतर हो वही तुम्हारे लिए बाहर का जगत होगा।

हृदय की गहराइयों में पूरा संसार भिन्न है, एक अलग ही गेस्टाल्ट है। मैं तुम्हें देख रहा हूं। यदि मैं तुम्हें मस्तिष्क से देखूं, बुद्धि से देखूं, जानने के अपने एक हिस्से से देखूं, तो यहां कुछ मित्र हैं, व्यक्ति हैं, अहंकार हैं—अलग-अलग।

लेकिन यदि मैं तुम्हें हृदय से देखूं तो यहां व्यक्ति नहीं होंगे। फिर तो बस यहां एक सागरीय चेतना है और व्यक्ति बस उसकी लहरें हैं। यदि मैं तुम्हें हृदय से देखूं तो तुम और तुम्हारा पड़ोसी दो नहीं होंगे; तब तुम्हारे और तुम्हारे पड़ोसी के बीच सत्य है। तुम बस दो ध्रुव हो और बीच में सत्य है। तो फिर यहां चेतना का एक सागर है जिसमें तुम लहरों की तरह हो। लेकिन लहरें अलग-अलग नहीं हैं, वे एक साथ जुड़ी हुई हैं। और तुम हर क्षण एक-दूसरे में मिल रहे हो, चाहे तुम्हें इसका पता हो या न पता हो।

जो श्वास कुछ क्षण पहले तुममें थी अब तुमसे निकल चुकी है—अब तुम्हारे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है। कुछ ही क्षण पहले यह तुम्हारा जीवन थी और इसके बिना तुम मर गए होते, और अब यह तुम्हारे पड़ोसी में जा रही है। अब यह उसका जीवन है। तुम्हारा शरीर लगातार कंपन विकीरित कर रहा है, तुम एक रेडिएटर हो, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा सतत तुम्हारे पड़ोसी में प्रवेश कर रही है और उसकी जीवन-ऊर्जा तुममें प्रवेश कर रही है।

यदि मैं तुम्हें अपने हृदय से देखूं, यदि मैं तुम्हें प्रेमपूर्ण आंखों से देखूं, यदि मैं तुम्हें समग्रता से देखूं, तो तुम सब ऊर्जा के पुंज हो, ऊर्जा के सघन बिंदु हो और जीवन सतत तुमसे दूसरों में और दूसरों से तुममें गति कर रहा है…।

और इस कमरे में ही नहीं, यह पूरा जगत जीवन-ऊर्जा का सतत प्रवाह है। यह सतत गतिमान है। यहां कोई वैयक्तिक इकाइयां नहीं हैं, यह एक ब्रह्मांडीय समग्रता है। लेकिन बुद्धि के द्वारा अखंड ब्रह्मांड कभी प्रकट नहीं होता, केवल हिस्से, आणविक हिस्से ही दिखाई पड़ते हैं। और यह कोई प्रश्न नहीं है जिसे बुद्धि से समझा जा सके। यदि तुम इसे बुद्धि से समझने का प्रयास करते हो तो इसे समझना असंभव ही होगा। यह अस्तित्व के एक बिलकुल अलग बिंदु से देखा गया, एक बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण है।

अगर तुम भीतर समग्र हो तो बाहर की समग्रता तुम पर प्रकट हो जाती है। किसी ने उसे परमात्मा का साक्षात्कार कहा है, किसी ने उसे मोक्ष कहा है, किसी ने उसे निर्वाण कहा है। अलग-अलग शब्द हैं, बिलकुल भिन्न शब्द हैं, लेकिन वे एक ही अनुभव, एक

ही सत्य को दर्शाते हैं। एक बात उन सभी अभिव्यक्तियों में आधारभूत है—कि व्यक्ति मिट जाता है। तुम इसे परमात्मा का साक्षात्कार कह सकते हो, तब तुम व्यक्ति की तरह न रह जाओगे; तुम इसे मोक्ष कह सकते हो, फिर तुम एक स्व की भांति नहीं रह जाओगे; तुम इसे निर्वाण कह सकते हो—जैसे बुद्ध ने कहा है—कि जैसे दीये की ज्योति बुझ जाती है, खो जाती है, तुम दोबारा उसे कहीं खोज नहीं सकते, पा नहीं सकते, वह अनस्तित्व में चली गई, ऐसे ही व्यक्ति समाप्त हो जाता है।

लेकिन यह बात सोचने जैसी है। सभी धर्म यह क्यों कहते हैं कि जब तुम सत्य का साक्षात्कार करते हो तो व्यक्ति, स्व, अहंकार मिट जाता है? यदि सभी धर्म इस पर जोर देते हैं तो इसका अर्थ है कि यह स्व जरूर मिथ्या होगा—वरना तो वह मिट कैसे सकता है? यह विरोधाभासी लग सकता है लेकिन ऐसा ही है, जो नहीं है केवल वही मिट सकता है; जो है वह तो अस्तित्व में रहेगा ही, वह मिट नहीं सकता।

मस्तिष्क के कारण एक झूठी इकाई का आभास होता है—व्यक्ति। यदि तुम हृदय में उतर जाओ तो झूठी इकाई खो जाती है। वह बुद्धि की रचना थी। हृदय में तो बस ब्रह्मांड रह जाता है, व्यक्ति नहीं; पूर्ण रह जाता है, अंश नहीं। और स्मरण रहे, जब तुम नहीं हो तो तुम नर्क निर्मित नहीं कर सकते, जब तुम नहीं हो तो तुम दुख में नहीं हो सकते, जब तुम नहीं हो तो कोई पीड़ा नहीं हो सकती। सब संताप, सब पीड़ाएं, तुम्हारे कारण हैं—छाया की भी छाया। स्व झूठ है और उस झूठे स्व के कारण बहुत-सी झूठी छायाएं निर्मित हो गई हैं। वे तुम्हारा पीछा करती हैं, तुम उनके साथ लड़ते रहते हो। लेकिन तुम कभी जीत न पाओगे, क्योंकि उनका आधार तो तुम्हीं में छिपा रहता है।

स्वामी रामतीर्थ ने कहीं कहा है कि वह एक गरीब ग्रामीण के घर में ठहरे हुए थे। उस ग्रामीण का छोटा बच्चा झोंपड़े के सामने खेल रहा था, और सूरज उग रहा था और बच्चे को अपनी छाया दिखाई दी। वह उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन जितना वह बढ़ता, छाया उतनी ही आगे बढ़ जाती। बच्चा रोने लगा। असफलता उसके हाथ लगी थी। उसने हर तरह से पकड़ने की कोशिश की, पर पकड़ पाना असंभव था।

छाया को पकड़ना असंभव है—इसलिए नहीं कि छाया को पकड़ना बड़ा कठिन है, यह असंभव इसलिए है क्योंकि बच्चा उसे पकड़ने के लिए दौड़ रहा था। जब वह दौड़ रहा था तो छाया भी दौड़ रही थी। तुम छाया को नहीं पकड़ सकते, क्योंकि छाया में कोई सार नहीं है; और सार को ही पकड़ा जा सकता है।

रामतीर्थ वहां बैठे हुए थे, वह हंस रहे थे और बच्चा रो रहा था और मां हैरान थी कि क्या करे। बच्चे को कैसे सांत्वना दे? तो उसने रामतीर्थ से पूछा, 'स्वामी जी, क्या आप कुछ मदद कर सकते हैं?' रामतीर्थ बच्चे के पास गए, बच्चे का हाथ पकड़ा और उसके सिर पर रख दिया—छाया पकड़ी गई। अब जब बच्चे ने अपने ही सिर पर हाथ रख दिया तो छाया पकड़ में आ गई। बच्चा हंसने लगा। अब वह देख सकता था कि उसके हाथ ने छाया को पकड़ लिया है।

तुम छाया को तो नहीं पकड़ सकते पर स्वयं को पकड़ सकते हो। और जिस क्षण

तुम स्वयं को पकड़ लेते हो छाया पकड़ में आ जाती है।

पीड़ा अहंकार की ही छाया है। हम सब उस बच्चे की तरह पीड़ा, संताप और विषाद के साथ लड़ रहे हैं और उन्हें मिटाने का प्रयास कर रहे हैं। हम इसमें कभी जीत नहीं सकते। यह कोई ताकत का प्रश्न नहीं है—सारा प्रयास ही व्यर्थ है, असंभव है। तुम्हें स्वयं को, अहंकार को पकड़ना चाहिए; और जैसे ही तुम इसे पकड़ लेते हो, सारी पीड़ा मिट जाती है। वह बस छाया थी।

ऐसे लोग हैं जो स्वयं से लड़ने लगते हैं। यह सिखाया गया है, 'स्व को मिटा दो, अहंकार-शून्य हो जाओ, और तुम आनंदित हो जाओगे,' तो वे स्व से, अहंकार से लड़ने लगते हैं। लेकिन यदि तुम लड़ रहे हो तो इतना तो तुम मान ही रहे हो कि स्व है। तुम्हारी लड़ाई उसके लिए भोजन बन जाएगी, उसके लिए ऊर्जा का एक स्रोत बन जाएगी, तुम उसका पोषण करने लगोगे।

यह विधि कहती है कि अहंकार के बारे में सोचो मत, बस बुद्धि से हृदय पर उतर आओ और अहंकार मिट जाएगा। अहंकार बुद्धि का प्रक्षेपण है। उससे लड़ो मत। तुम जन्मों-जन्मों तक उससे लड़ते रह सकते हो, पर यदि बुद्धि में ही बने रहे तो उसे जीत नहीं सकते।

अपने दृष्टिकोण को बदल डालो, बुद्धि से उतर कर एक दूसरे तल पर, अस्तित्व के एक गहरे पर उतर आओ। और सब कुछ बदल जाता है, क्योंकि अब तुम एक अलग दृष्टिकोण से देख सकते हो। हृदय से कोई अहंकार नहीं पैदा होता। इसी कारण हम हृदय से भयभीत हो गए हैं। हम कभी उसे अपने आप नहीं चलने देते, उसमें सदा हस्तक्षेप करते रहते हैं, सदा मन को बीच में ले आते हैं। हम हृदय को मन से नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि हम भयभीत हो गए हैं—यदि तुम हृदय की ओर गए तो स्वयं खो दोगे। और यह खोना बिलकुल मृत्यु जैसा लगता है।

इसीलिए प्रेम कठिन लगता है, इसीलिए प्रेम में पड़ने में भय लगता है। क्योंकि तुम स्वयं को खो देते हो, तुम नियंत्रण में नहीं रहते। कोई तुमसे बड़ी चीज तुम्हें अपने प्रभाव पकड़ में ले लेती है और तुम्हें वशीभूत कर लेती है। फिर तुम्हें कुछ निश्चित नहीं रहता और कुछ पता नहीं होता कि तुम कहां जा रहे हो। तो बुद्धि कहती है, 'मूर्ख मत बनो, समझ से काम लो। पागल मत बनो।'

जब भी कोई प्रेम में होता है तो सब सोचते हैं कि वह पागल है। वह स्वयं ही समझता है कि वह पागल हो गया है, 'मैं अपने होश में नहीं हूं।' ऐसा क्यों होता है? क्योंकि अब कोई नियंत्रण न रहा। कुछ ऐसा हो रहा है जिसे वह नियंत्रित नहीं कर सकता, जिसे वह चला नहीं सकता, वश में नहीं कर सकता। बल्कि कुछ और उसे चला रहा है, एक बड़ी शक्ति ने उसे बस में कर लिया है। वह वशीभूत है···।

लेकिन जब तक तुम वशीभूत होने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक तुम्हारे लिए कोई परमात्मा नहीं है। जब वह वशीभूत होने के लिए राजी नहीं हो, तब तक तुम्हारे लिए कोई रहस्य, कोई आनंद, कोई अहोभाव नहीं है। जो प्रेम से, प्रार्थना से, विराट से

वशीभूत होने को राजी है, उसका मतलब है कि वह अहंकार की तरह मरने के लिए राजी है। केवल वही जान सकता है कि वास्तव में जीवन क्या है, कि जीवन के पास देने के लिए क्या संपदा है। जो संभव है वह तत्क्षण साकार हो जाता है, लेकिन तुम्हें स्वयं को दांव पर लगाना होगा।

यह विधि सुंदर है। यह तुम्हारे अहंकार के बारे में कुछ नहीं कहती। यह उस संबंध में कुछ कहती ही नहीं। यह बस तुम्हें एक विधि देती है और यदि तुम विधि का अनुसरण करो, अहंकार समाप्त हो जाएगा।

शरीर को असीमित जानो

दूसरा सूत्र :

93. अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।

एक दूसरे द्वार से यह वही विधि है। मौलिक सार तो वही है कि सीमाओं को गिरा दो। मन सीमाएं खड़ी करता है। यदि तुम सोचो मत तो तुम असीम में गति कर जाते हो। या, एक दूसरे द्वार से, तुम असीम के साथ प्रयोग कर सकते हो और मन के पार हो जाओगे। मन असीम के साथ, अपरिभाषित, अनादि, अनंत के साथ नहीं रह सकता। इसलिए यदि तुम सीमा-रहित के साथ कोई प्रयोग करो तो मन मिट जाएगा।

यह विधि कहती है, 'अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।'

कोई भी अंग। तुम बस अपनी आंखें बंद कर ले सकते हो और सोच सकते हो कि तुम्हारा सिर असीम हो गया है। अब उसकी कोई सीमाएं न रहीं। वह बढ़ता चला जा रहा है और उसकी कोई सीमाएं न रहीं। तुम्हारा सिर पूरा ब्रह्मांड बन गया है, सीमाहीन।

यदि तुम इसकी कल्पना कर सको तो विचार अचानक रुक जाएंगे। यदि तुम अपने सिर की असीम रूप में कल्पना कर सको तो विचार नहीं रहेंगे। विचार केवल एक बहुत संकीर्ण मन में हो सकते हैं। मन जितना संकीर्ण हो, उतना ही विचार करने के लिए बेहतर है। जितना ही विशाल मन हो, उतने ही कम विचार होते हैं; जब मन पूर्ण आकाश बन जाता है तो विचार बिलकुल नहीं रहते।

बुद्ध अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि वे क्या सोच रहे हैं? वे कुछ भी सोच नहीं रहे। उनका सिर पूरा ब्रह्मांड है। वे विस्तृत हो गए हैं, अनंत रूप से विस्तृत हो गए हैं।

यह विधि उन्हीं के लिए अच्छी है जो कल्पना कर सकते हैं, सबके लिए यह ठीक नहीं रहेगी। जो कल्पना कर सकते हैं और जिनकी कल्पना इतनी वास्तविक हो जाती है कि यह भी नहीं कह सकते कि यह कल्पना है या वास्तवकिता है, उनके लिए यह

विधि बहुत उपयोगी होगी। वरना यह अधिक उपयोगी नहीं होगी। लेकिन डरो मत, क्योंकि कम-से-कम तीस प्रतिशत लोग इस तरह की कल्पना करने में सक्षम हैं। ऐसे लोग बहुत शक्तिशाली होते हैं।

यदि तुम्हारा मन बहुत शिक्षित नहीं है तो तुम्हारे लिए कल्पना करना बड़ा सरल होगा। यदि मन शिक्षित है तो सृजनात्मकता खो जाती है, तब तुम्हारा मन बस एक तिजोरी, एक बैंक बन जाता है। और पूरी शिक्षा व्यवस्था एक बैंकिंग व्यवस्था है। वे तुममें चीजें डालते जाते हैं, ठूंसते जाते हैं। उन्हें जो भी तुममें ठूंसने जैसा लगता है, ठूंस देते हैं। वे तुम्हारे मन का उपयोग स्टोर की तरह करते हैं। फिर तुम कल्पना नहीं कर सकते। फिर तुम जो भी करते हो वह बस उसकी पुनरावृत्ति होती है, जो तुम्हें सिखाया गया है।

तो जो लोग अशिक्षित हैं, वे इस विधि का बड़ी सरलता से उपयोग कर सकते हैं। और जो लोग यूनिवर्सिटी से बिना विकृत हुए वापस आ गए हैं, वे भी इसे कर सकते हैं। जो वास्तव में अभी भी जीवित हैं, इतनी शिक्षा के बाद भी जीवित हैं, वे इसे कर सकते हैं। स्त्रियां इसे पुरुषों की अपेक्षा अधिक सरलता से कर सकती हैं। जो लोग भी कल्पनाशील हैं, स्वप्न-द्रष्टा हैं, वे लोग इसे बहुत आसानी से कर सकते हैं।

लेकिन यह कैसे पता चले कि तुम इसे कर सकते हो या नहीं?

तो इसमें प्रवेश करने से पहले तुम एक छोटा-सा प्रयोग कर सकते हो। अपने दोनों हाथों को एक-दूसरे में फंसा लो और आंखें बंद कर लो। किसी भी समय, पांच मिनट के लिए किसी कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ, दोनों हाथों को आपस में फंसा लो और कल्पना करो कि हाथ इतने जुड़ गए हैं कि तुम कोशिश भी करो तो उन्हें नहीं खोल सकते।

यह बड़ी बेतुकी बात लगेगी क्योंकि वे जुड़े हुए नहीं हैं, लेकिन तुम सोचते रहो कि वे जुड़े हुए हैं। पांच मिनट तक ऐसे सोचते रहो और फिर तीन बार अपने मन में कहो, 'अब मैं अपने हाथ खोलने की कोशिश करूंगा। लेकिन मैं जानता हूं कि यह असंभव है। ये जुड़ गए हैं और मैं इन्हें खोल नहीं सकता।'

फिर उन्हें खोलने की कोशिश करो। तुममें से तीस प्रतिशत लोग हाथ नहीं खोल पाएंगे। वे सच में जुड़ जाएंगे और जितनी तुम खोलने की कोशिश करोगे उतना ही तुम्हें लगेगा कि यह असंभव है। तुम्हें पसीना आने लगेगा—फिर भी अपने हाथ नहीं खोल पाओगे। तो यह विधि तुम्हारे लिए है। तब तुम इस विधि का उपयोग कर सकते हो।

यदि तुम आसानी से अपने हाथ खोल सको और कुछ भी न हो तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम इसे न कर पाओगे। लेकिन अगर तुम्हारे हाथ न खुलें तो डरो मत और ज्यादा प्रयास मत करो, क्योंकि जितना ही तुम प्रयास करोगे, उतना ही कठिन होता जाएगा। बस फिर से अपनी आंखें बंद कर लो और सोचो कि तुम्हारे हाथ अब

खुल गए हैं। तुम्हें फिर से सोचने के लिए पांच मिनट लगेंगे कि अब जब तुम हाथों को खोलोगे तो वे खुल जाएंगे—और वे एकदम से खुल जाएंगे।

जैसे तुमने उन्हें कल्पना द्वारा बंद किया था, वैसे ही खोलो। और यदि यह संभव है कि तुम्हारे हाथ बस कल्पना द्वारा जुड़ जाते हैं और तुम उन्हें खोल नहीं सकते तो यह विधि तुम पर चमत्कारिक रूप से कार्य करेगी। और इन एक सौ बारह विधियों में कई विधियां हैं जो कल्पना पर कार्य करती हैं। उन सब विधियों के लिए यह हाथ बांधने वाली विधि अच्छी रहेगी। बस इतना याद रखो, पहले प्रयोग करके देख लो कि यह विधि तुम्हारे लिए है या नहीं।

'अपने वर्तमान रूप का कोई भी अंग असीमित रूप से विस्तृत जानो।'

कोई भी अंग···तुम पूरे शरीर की कल्पना भी कर सकते हो। अपनी आंखें बंद कर लो और कल्पना करो कि तुम्हारा पूरा शरीर फैल रहा है, फैल रहा है, फैल रहा है, और सब सीमाएं खो गईं। शरीर असीमित हो गया। तो क्या होगा? क्या होगा इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि तुम इसकी कल्पना कर सको कि तुम ब्रह्मांड हो गए हो—असीमित का यही अर्थ है—तो जो कुछ भी तुम्हारे अहंकार के साथ जुड़ा है, खो जाएगा। तुम्हारा नाम, तुम्हारा परिचय—सब खो जाएंगे। तुम्हारी अमीरी या गरीबी, तुम्हारा स्वास्थ्य या बीमारी, तुम्हारे दुख—सब खो जाएंगे, क्योंकि वे तुम्हारे सीमित शरीर के अंग हैं। असीमित शरीर के साथ वे नहीं रह सकते। और एक बार तुम्हें यह पता लग जाए तो अपने सीमित शरीर में लौट आओ। लेकिन अब तुम हंस सकते हो। और सीमित में भी तुम असीमित का स्वाद ले सकते हो। तब तुम इस झलक को साथ लिए चल सकते हो।

इसे अनुभव करके देखो। और अच्छा होगा कि पहले तुम सिर से शुरू करके देखो, क्योंकि वही सब बीमारियों की जड़ है। अपनी आंखें बंद कर लो, जमीन पर लेट जाओ या किसी कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ, और सिर के भीतर देखो। सिर की दीवारों को फैलते, विस्तृत होते अनुभव करो। यदि घबराहट मालूम हो तो धीरे-धीरे करो। पहले सोचो कि तुम्हारा सिर पूरे कमरे में फैल गया है। तुम्हें सच में लगेगा कि तुम्हारा सिर दीवारों को छू रहा है। अगर तुम अपने हाथों को बांध सकते हो तो ऐसा स्पष्ट अनुभव होगा। तुम्हें दीवारों की शीतलता महसूस होगी, जिन्हें तुम्हारी त्वचा छू रही है। तुम्हें दबाव महसूस होगा।

बढ़ते जाओ। तुम्हारा सिर पार चला गया है—अब घर सिर के भीतर समा गया है, फिर पूरा शहर सिर में समा गया है। फैलते चले जाओ। तीन महीने के भीतर-भीतर, धीरे-धीरे तुम ऐसी स्थिति पर पहुंच जाओगे जहां सूर्य तुम्हारे सिर में उदित होगा, तुम्हारे भीतर ही चक्कर लगाएगा। तुम्हारा सिर अनंत हो गया। इससे तुम्हें इतनी स्वतंत्रता मिलेगी जितनी तुमने पहले कभी नहीं जानी। और सब दुख जो इस संकीर्ण मन से संबंधित हैं, समाप्त हो जाएंगे ऐसी स्थिति में ही उपनिषद के ऋषियों ने कहा होगा,

'अहं ब्रह्मास्मि—मैं ब्रह्म हूं।' ऐसे ही आनंद के क्षण में अनलहक की उद्घोषणा हुई होगी।

मंसूर परम आनंद से चिल्लाया, 'अनलहक, अनलहक—मैं परमात्मा हूं।' मुसलमान उसे समझ नहीं पाए। असल में कोई भी परंपरावादी ऐसी चीजें नहीं समझ पाएगा। उन्होंने सोचा कि वह पागल हो गया है, लेकिन वह पागल नहीं था, वह तो परम स्वस्थ आदमी था। उन्होंने सोचा कि वह अहंकारी हो गया, वह कहता है, 'मैं परमात्मा हूं!' तो उन्होंने उसे मार डाला। जब उसे मारा जा रहा था और उसके हाथ-पांव काटे जा रहे थे, तब वह हंस रहा था और कह रहा था, 'अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि—मैं परमात्मा हूं।' किसी ने पूछा, 'मंसूर, तू हंस क्यों रहा है? तेरी तो हत्या हो रही है।' वह बोला, 'तुम मुझे नहीं मार सकते। मैं तो संपूर्ण हूं।'

तुम बस एक हिस्से को मार सकते हो। संपूर्ण को तो तुम कैसे मार सकते हो? तुम उसके साथ कुछ भी करो, उससे कोई अंतर नहीं पड़ने वाला।

कहते हैं कि मंसूर ने कहा, 'यदि तुम मुझे मारना चाहते थे तो तुम्हें कम-से-कम दस साल पहले आना चाहिए था। तब मैं था, तब तुम मुझे मार सकते थे। लेकिन अब तुम मुझे नहीं मार सकते, क्योंकि अब मैं नहीं हूं। मैंने स्वयं ही उस अहंकार को मार दिया है जिसे तुम मार सकते हो।'

मंसूर कुछ इसी तरह की सूफी विधियों का अभ्यास कर रहा था जिसमें व्यक्ति तब तक फैलता चला जाता है जब तक कि विस्तार इतना असीम न हो जाए कि व्यक्ति रहे ही न। फिर बस पूर्ण ही रहता है, व्यक्ति नहीं।

इन पिछले दो-तीन दशकों में पश्चिम में नशीली दवाएं बहुत प्रचलित हो गई हैं। और उनका आकर्षण विस्तार का आकर्षण ही है, क्योंकि उन दवाओं के असर में तुम्हारी संकीर्णता, तुम्हारी सीमाएं खो जाती हैं। लेकिन यह बस एक रासायनिक परिवर्तन है, इससे कुछ आध्यात्मिक रूपांतरण नहीं हो पाता। यह व्यवस्था पर लादी गई एक हिंसा है—तुम व्यवस्था को टूटने के लिए बाध्य करते हो।

इससे तुम्हें शायद एक झलक मिले कि तुम अब सीमित न रहे, कि तुम असीम हो गए, मुक्त हो गए। लेकिन यह रासायनिक दबाव के कारण है। एक बार वापस लौटे कि फिर से तुम संकीर्ण शरीर में पहुंच जाओगे, और अब शरीर पहले से भी ज्यादा संकीर्ण लगेगा। तुम फिर से उसी कारागृह में कैद हो जाओगे, लेकिन अब कारागृह और असह्य हो जाएगा, क्योंकि तुम्हें एक झलक मिल चुकी है। और क्योंकि वह झलक रसायन के द्वारा मिली थी इसलिए तुम उसके मालिक नहीं हो, तुम गुलाम हो जाओगे, तुम आदी हो जाओगे। अब तुम्हें उसकी और-और जरूरत पड़ेगी।

यह विधि एक आध्यात्मिक मस्ती है। यदि तुम इसका अभ्यास करो तो एक आध्यात्मिक रूपांतरण होगा जो रासायनिक नहीं होगा और जिसके तुम मालिक होओगे।

इसे कसौटी समझो—यदि तुम मालिक हो तो वह चीज आध्यात्मिक है। अगर तुम गुलाम हो तो सावधान—भले ही वह दिखाई आध्यात्मिक पड़े, लेकिन हो नहीं सकती।

जो भी चीज तुम्हें आदी करने वाली, शक्तिशाली, गुलाम बनाने वाली, बंधन बन जाए, वह तुम्हें और गुलामी और परतंत्रता की ओर ले जा रही है—दिखाई वह कुछ भी पड़े।

तो इसे एक कसौटी समझना कि तुम जो भी करो, उससे तुम्हारी मालकियत बढ़नी चाहिए। तुम्हें और-और उसका मालिक बनना चाहिए। ऐसा कहा गया है और मैं इसे बार-बार दोहराता हूं कि जब ध्यान तुम्हें वास्तव में घटित होगा तो तुम्हें उसे करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि अभी भी तुम्हें करना पड़ता है तो ध्यान अभी हुआ ही नहीं है, क्योंकि वह भी एक गुलामी बन गई है। ध्यान को भी जाना चाहिए। एक ऐसा क्षण आना चाहिए जब तुम्हें कुछ भी करना न पड़े। तब तुम जैसे हो दिव्य हो; तुम जैसे हो, तुम आनंद हो, परमानंद हो।

लेकिन यह विधि विस्तार के लिए, चेतना के विस्तार के लिए अच्छी है। लेकिन इसे करने से पहले हाथ बांधने वाला प्रयोग करो, ताकि तुम अनुभव कर सको। यदि तुम्हारे हाथ बंध जाते हैं तो तुम्हारी कल्पना बहुत सृजनात्मक है, नपुंसक नहीं है। फिर तुम इस विधि से चमत्कार घटा सकते हो।

आज इतना ही।

अंतस का आकाश और रहस्य

प्रश्न-सार

1. *आप किसे रहस्य कहते हैं?*
2. *मैं अपने को सामान्य अनुभव करता हूं, लेकिन कोई रूपांतरण नहीं देखता।*
3. *क्या अच्छे और बुरे जैसा कुछ होता है?*
4. *क्या कल्पना का उपयोग असीम के अनुभव के लिए किया जा सकता है?*

पहला प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि जब मन में कोई विचार नहीं रहते तो मन शून्य आकाश बन जाता है और सब रहस्यों के द्वार खुल जाते हैं। मैं इस आंतरिक आकाश को स्पष्ट और गहरे से अनुभव करता हूं, पर इसमें कुछ ऐसा विशेष नहीं है जिसे मैं रहस्य कह सकूं। क्या आप बताएंगे कि रहस्य आप किसे कहते हैं और उसे कैसे अनुभव किया जाता है?

आंतरिक शून्य स्वयं में ही एक रहस्य है। न तुम उसे अनुभव कर सकते हो और न जान सकते हो। तुम वह हो सकते हो। और वह तुम हो ही। जब आंतरिक शून्यता होती है तो तुम नहीं होते। तुम उसे देख नहीं सकते। यदि तुम उसे देख सको तो आंतरिक शून्य अभी पैदा ही नहीं हुआ। कौन उसे देखेगा? यदि तुम उसे देख सकते हो तो तुम उससे भिन्न हो, इसलिए वह आंतरिक नहीं हुआ, वह बाह्य हुआ वह तुमसे बाहर है। अंतस अभी शून्य नहीं हुआ, भरा ही हुआ है। द्रष्टा या साक्षी बनकर अहंकार बड़े सूक्ष्म रूप में वहां बैठा है। अंतस अभी शून्य नहीं हुआ, क्योंकि जब अंतस शून्य हो जाता है तो तुम नहीं रहते।

तो पहली बात तो स्मरण रखने की यह है कि तुम रहस्य के साक्षी नहीं हो सकते, तुम रहस्य हो सकते हो। तुम उसे देख नहीं पाओगे, क्योंकि तुम उससे अलग नहीं हो सकते, कोई द्वैत नहीं हो सकता।

पहली बात, जब अंतस वास्तव में शून्य होता है तो तुम नहीं होते, क्योंकि तुम्हीं से तो अंतस भरा हुआ है। तुम्हारे ही कारण वह शून्य नहीं है; तुम्हारे ही कारण सब भरा हुआ है। जब तुम मिटते हो, विदा हो जाते हो, तभी अंतस शून्य होता है। तो तुम

रहस्य के साक्षी नहीं हो सकते। जब तक तुम हो, रहस्य प्रकट नहीं होगा। जब तुम नहीं हो, रहस्य प्रकट होगा।

तो जब तुम कहते हो कि तुम आंतरिक शून्य को अनुभव कर रहे हो तो इसका अर्थ हुआ कि तुम शून्य नहीं हो; शून्य तुम्हें, तुम्हारे चारों ओर घटित हो रहा है, लेकिन तुम शून्य नहीं हो। तो असल में यह शून्य केवल शून्य का विचार है—तभी तो तुम कह सकते हो कि अब तुम्हारा अंतराकाश शून्य हो गया है। यह एक विचार है। यह शून्य वास्तविक नहीं है, मन का ही एक खेल है। जब द्रष्टा है तो दृश्य भी होना चाहिए। तुम शून्य को भी एक वस्तु, एक विचार बना ले सकते हो।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार बोकोजू इसी तरह शून्य हो गया। इसी तरह की शून्यता उसे घटित हुई होगी। वह अपने गुरु के पास आया और बोला, 'अब तो कुछ भी नहीं बचा, मैं तो शून्य हो गया।' गुरु ने कहा, 'बाहर जाओ और इस शून्य को भी फेंक आओ। यह शून्य भी कुछ तो है ही, इसे क्यों ढो रहे हो? यदि तुम सच में ही शून्य हो गए तो कहेगा कौन? फिर कौन उसे ढोएगा? कौन उसकी उपलब्धि को महसूस करेगा?' गुरु ने बोकोजू को कहा, 'तुमने अच्छा किया कि तुम शून्य हो गए, अब जाओ और इस शून्य को भी फेंक आओ।'

तुम शून्य से भी भर सकते हो—यही समस्या है। और यदि तुम शून्य से भरे हुए हो तो तुम शून्य नहीं हो।

दूसरी बात, रहस्य का मेरा अर्थ क्या है? जो तुम समझते हो, मेरा वह अर्थ नहीं है, क्योंकि तुम सोचते हो कि रहस्य बड़ा आश्चर्यजनक, चौंका देने वाला, हतप्रभ कर देने वाला होगा, कि तुम्हारे पांवों के नीचे से जमीन खिसक जाएगी। वह बात ही नहीं है। रहस्य तो शुद्ध अस्तित्व है, जिसमें न कुछ आश्चर्यजनक है, न कुछ चौंकाने वाला है। न तो तुम ठगे से रह जाओगे, न चौंकोगे, न हैरान होओगे। रहस्य वास्तव में बिलकुल रहस्यमय नहीं है। यह साधारण-सा अस्तित्व—इसे बिना कोई समस्या खड़ी किए ऐसा का ऐसा स्वीकार करो।

जब तुम कोई समस्या खड़ी नहीं करते तो यह अस्तित्व एक रहस्य हो जाता है; जब तुम समस्या खड़ी करते हो तो रहस्य को नष्ट कर देते हो। अब तुम किसी समाधान, किसी उत्तर की तलाश में हो। फिर वही मन चलता चला जाता है। जब तुम मुझे रहस्य की बात करते सुनते हो तो सोचते हो कि वह कोई बड़ी विशेष चीज होगी। इस अस्तित्व में कुछ भी विशेष नहीं है। केवल अहंकार के लिए ही विशेष शब्द का अस्तित्व है।

कहा जाता है कि जब लिंची को ज्ञान हुआ तो वह हंसा। उसके शिष्यों ने पूछा, 'आप हंस क्यों रहे हैं?' उसने कहा, 'मैं इसलिए हंस रहा हूं कि इसे मैं हजारों-हजारों जन्मों से खोज रहा था—और यह इतना साधारण है।'

यही है रहस्य—कुछ भी विशेष नहीं है।

एक दूसरे झेन गुरु डोजेन के बारे में कहा जाता है कि जब उसे ज्ञान हुआ तो उसके शिष्यों ने उससे पूछा, 'बुद्धत्व के बाद सबसे पहले आपने क्या करना चाहा?' कहते

हैं कि डोजेन ने कहा, 'मैंने एक कप चाय पीनी चाही।'

इतनी साधारण बात थी। लेकिन अहंकार को ये बातें आकर्षक नहीं लगतीं। यदि मैं तुमसे कहूं कि बुद्धत्व इतनी साधारण घटना है कि उसके बाद तुम एक कप चाय पीना चाहोगे तो तुम्हें लगेगा कि यह तो बिलकुल बेकार है—क्यों इसे खोजना? फिर अहंकार शुरू हो जाता है। अहंकार को विशेष चीज की तलाश होती है, कुछ ऐसा जो बस अपवाद हो, जो साधारणतया न होता हो, कुछ ऐसा जो बस तुम्हें ही हुआ हो, जो और किसी को भी न हुआ हो—अहंकार को किसी विशेष, किसी असाधारण चीज की तलाश होती है।

सत्य असाधारण नहीं है; सभी ओर घट रहा है। और यदि यह तुम्हें घटित नहीं हुआ है तो विशेष बात है! क्योंकि सत्य तो सदा मौजूद है। एक क्षण को भी वह अनुपस्थित नहीं होता। बुद्धत्व तो सदा घटित हो रहा है, यह तो अस्तित्व की धड़कन है—तुम बहरे और अंधे हो। इसमें कुछ विशेष नहीं है।

बुद्ध होना, जाग्रत होना तो सबसे साधारण घटना है। जब मैं कहता हूं 'साधारण' तो मेरा अर्थ है—इसे ऐसा होना चाहिए। यदि यह असाधारण दिखाई पड़ता है तो तुम्हारे कारण, क्योंकि तुम इतनी बाधाएं खड़ी करते हो—और फिर उन्हें पार करने की चेष्टा करते हो। और फिर तुम गौरवान्वित अनुभव करते हो। पहली बात, कोई बाधा है ही नहीं। लेकिन तुम्हारे अहंकार को अच्छा नहीं लगेगा—तुम निकटतम और अंतरंग बिंदु पर पहुंचने के लिए लंबा मार्ग बनाओगे। और उससे दूर कभी तुम गए भी न थे!

तो किसी रहस्यमय चीज की खोज मत करो। बस साधारण और निर्दोष रहो, फिर सारा अस्तित्व तुम्हारे लिए खुल जाता है। तुम पागल नहीं हो जाओगे, तुम तो बस इस बात की व्यर्थता पर मुस्कुरा दोगे कि जो इतने पास था उसे ही तुम चूक रहे थे। और बीच में कोई बाधा भी नहीं थी। एक तरह से यह तुममें ही था। यह चमत्कार ही था कि तुम कैसे उसे चूकते रहे।

यदि शून्य सच्चा है तो पूरी वास्तविकता, जो है, तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगी। ऐसा नहीं है कि अभी वह ढंकी है, वह तो अभी भी प्रकट है। तुम बंद हो। तुम्हारा मन भरा हुआ है। जब तुम्हारा मन शून्य हो जाता है, खाली हो जाता है, तब तुम सत्य के प्रति खुल जाते हो और मिलन हो जाता है। और तब सब कुछ अपनी पूर्ण साधारणता में सुंदर हो जाता है।

इसीलिए कहा जाता है कि जो जानता है वह बिलकुल साधारण हो जाता है। वह सत्य के साथ एक हो जाता है। विशेष की कामना करना अहंकार का मार्ग है, और अहंकार के सब मार्ग तुम्हारे और सत्य के बीच दूरी पैदा करते हैं। शून्य हो जाओ, और तुम्हें सब कुछ उपलब्ध हो जाएगा।

ऐसा नहीं है कि तुम्हारे पास कहने को बहुत कुछ होगा—कहने को कुछ भी नहीं है। ऐसा समझा जाता है कि कृष्ण या बुद्ध, या जिन्होंने भी उस परम को जाना है वे इसलिए उसकी व्याख्या नहीं कर सकते क्योंकि वह बहुत जटिल है। नहीं, उसकी

व्याख्या वे इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि वह बहुत सरल है। जटिल की व्याख्या हो सकती है, स्मरण रखना, सरल की व्याख्या नहीं की जा सकती। जितनी ही जटिल कोई चीज होती है, उतनी ही सरल उसकी व्याख्या हो जाती है। क्योंकि जटिलता में तुम विभाजन कर सकते हो, तुलना कर सकते हो। सरल के साथ तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिए, यदि मैं तुमसे पूछूं, 'पीला क्या है?' तो तुम क्या कहोगे? अब पीला इतनी सरल बात है, उसमें जटिलता ही नहीं है। यदि मैं तुमसे पूछूं, 'पानी क्या है?' तुम कह सकते हो, 'एच टू ओ।' यह थोड़ा जटिल है—उसमें हाइड्रोजन है, ऑक्सीजन है, तो तुम उसकी परिभाषा कर सकते हो। लेकिन यदि मैं तुमसे पूछता हूं, 'पीला क्या है?' तो अधिक-से-अधिक तुम यही कह सकते हो कि पीला पीला है। लेकिन वह तो पुनरुक्ति है, उससे कोई अर्थ नहीं निकलता। यदि मैं पूछूं, 'पीला क्या है?' तो तुम क्या करोगे? तुम किसी पीले फूल की ओर इशारा कर सकते हो, तुम सूर्योदय के पीले रंग की ओर इशारा कर सकते हो, लेकिन तुम कुछ कह नहीं रहे, सिर्फ इशारा कर रहे हो।

सरल की ओर केवल इशारा किया जा सकता है; जटिल की परिभाषा हो सकती है, व्याख्या हो सकती है। बुद्ध पुरुष मौन रह जाते हैं, इसलिए नहीं कि उन्होंने किसी बहुत जटिल सत्य का साक्षात किया है, बल्कि उस सरल घटना के कारण वे मौन रह जाते हैं जिसकी परिभाषा नहीं हो सकती, बस इशारा ही किया जा सकता है। वे तुम्हें उस तक ले तो जा सकते हैं, परंतु उसके बारे में कुछ कह नहीं सकते।

रहस्य कोई जटिल चीज नहीं है, वह तो बहुत सरल है, सरलतम है, लेकिन तुम्हारा उससे तभी मिलना हो सकता है जब तुम भी सरल हो जाओ। यदि तुम जटिल हो तो तुम उससे नहीं मिल सकते, कोई मिलने का आधार ही नहीं है। जब तुम एकदम सरल, निर्दोष और शून्य हो जाते हो, केवल तभी सत्य का और तुम्हारा मिलन होता है। तब तुममें सत्य प्रतिबिंबित होता है, तुममें उसकी प्रतिध्वनि उठती है, वह तुममें प्रवेश कर जाता है।

लेकिन किसी विशेष चीज की प्रतीक्षा मत करो। निर्वाण कोई विशेष चीज नहीं है। जब मैं यह कहता हूं तो तुम्हारे मन में क्या होता है? जब मैं कहता हूं कि निर्वाण कोई विशेष चीज नहीं है तो तुम्हें क्या लगता है? कैसा लगता है? तुम्हें थोड़ी निराशा होती है। मन में यह प्रश्न जरूर उठ रहा होगा—फिर मेहनत ही क्यों करें? फिर कोई प्रयास ही क्यों करें? फिर ध्यान क्यों करें? फिर ये विधियां किसलिए हैं?

इस मन को देखो, यह मन ही समस्या है। मन विशेष की आकांक्षा करता है। और उस आकांक्षा के कारण मन विशेष चीजों का निर्माण करता चलाजाता है। अस्तित्व में कुछ भी विशेष नहीं है—या तो पूरा अस्तित्व ही विशेष है या कुछ भी विशेष नहीं है।

इस आकांक्षा के कारण ही मन ने स्वर्ग पैदा किए हैं। और मन एक से संतुष्ट

नहीं होता, इसलिए कई स्वर्ग पैदा कर लिए हैं। ईसाइयों के पास एक स्वर्ग है, हिंदुओं के पास सात हैं—क्योंकि इतने सारे भले लोग हैं, उनमें जरूर श्रेणियां होनी चाहिए। कुछ लोग बहुत ज्यादा भले हैं, वे कहां जाएं? इसका कोई अंत नहीं है। बुद्ध के समय में एक संप्रदाय था जो सात सौ स्वर्गों में विश्वास करता था। तुम्हें अहंकारों को स्थान देना पड़ता है—उच्चतम अहंकार को उच्चतम स्वर्ग में जाना चाहिए।

मैं राधास्वामियों की एक किताब देख रहा था। वे कहते हैं चौदह स्वर्ग हैं। केवल उनके गुरु ही अंतिम में पहुंच पाए हैं। बुद्ध सातवें में हैं, कृष्ण पांचवें में हैं और मोहम्मद तीसरे में कहीं हैं। केवल उनके गुरु ही चौदहवें में पहुंच पाए हैं। और हर किसी को श्रेणीबद्ध स्थान दिया गया है। केवल उनके गुरु ही विशेष हैं। यह विशेष होने की आकांक्षा है। और हर कोई उसी आकांक्षा के अनुसार है।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक पादरी रविवार के दिन पड़ोस के छोटे-छोटे बच्चों को धार्मिक पाठ पढ़ा रहा था। वह बता रहा था कि अच्छे लोगों को क्या मिलता है—शोहरत के ताज और स्वर्ग। जो लोग अच्छे हैं, स्वर्ग में उनके सिर पर ताज रखा जाएगा। फिर अंत में उसने पूछा, 'सबसे बड़ा ताज किसे मिलेगा?' कुछ देर के लिए तो वहां सन्नाटा रहा, फिर टोपी बनाने वाले का छोटा सा लड़का खड़ा हुआ और बोला, 'जिसका सिर सबसे बड़ा होगा।'

हम सब यही कर रहे हैं। सबसे बड़े सिर की हमारी परिभाषाएं अलग हो सकती हैं, लेकिन हम सबके पास अंततः कुछ-न-कुछ विशेष होने की धारणा है और उस विशेष के कारण ही हम आगे बढ़ते रहते हैं। लेकिन स्मरण रखो, उस विशेष के कारण तुम कहीं भी नहीं बढ़ रहे हो, बस कामनाओं में भटक रहे हो। और कामनाओं में भटकना कोई विकास नहीं है, केवल चक्कर काटने जैसा है।

यदि तुम अभी भी ध्यान कर सको—भलीभांति जानते हुए कि कोई विशेष घटना नहीं घटने वाली है, बस तुम अपनी साधारण वास्तविकता से एक हो जाओगे, कि तुम अपनी साधारण वास्तविकता के साथ लयबद्ध हो जाओगे—यदि ऐसे मन के साथ तुम ध्यान कर सको तो बुद्धत्व इसी क्षण संभव है। लेकिन ऐसे मन के साथ तुम्हें ध्यान करने जैसा ही नहीं लगेगा—तुम कहोगे, 'यदि कोई विशेष घटना नहीं घटने वाली है तो सब कुछ छोड़ ही दो।'

मेरे पास लोग आते हैं और पूछते हैं, 'मैं तीन महीने से ध्यान कर रहा हूं और अभी तक कुछ भी नहीं हुआ।' एक कामना है, और वह कामना ही बाधा है। यदि कामना न हो तो वह इसी क्षण हो जाए।

तो रहस्यमयता की कामना मत करो। असल में, किसी चीज की भी कामना मत करो। बस सत्य जैसा है वैसे ही उसके साथ सहज हो रहो। साधारण हो रहो—साधारण होना सुंदर है। क्योंकि तब न कोई तनाव होता है, न कोई संताप। साधारण हो रहना बहुत रहस्यपूर्ण है, क्योंकि वह एकदम सरल है। मेरे देखे, ध्यान एक खेल है, एक क्रीड़ा

है; ध्यान कोई कार्य नहीं है। लेकिन तुम्हें यह कार्य जैसा ही लगता है। तुम इसे कार्य की तरह ही लेते हो।

कार्य और खेल के बीच अंतर को समझ लेना अच्छा है। कार्य परिणाम-उन्मुख होता है, स्वयं में ही पर्याप्त नहीं होता। उसका लक्ष्य कहीं और होता है, किसी सुख, किसी परिणाम में होता है। कार्य एक सेतु है, साधन है। अपने आप में वह अर्थहीन है। उसका अर्थ लक्ष्य में है।

खेल बिलकुल भिन्न बात है। उसका कोई लक्ष्य नहीं है, या वह स्वयं ही लक्ष्य है। सुख उसके पार, उसके बाहर नहीं है; उसमें होना ही सुख है। तुम्हें उसके बाहर कोई सुख, उसके पार कोई अर्थ मिलने वाला नहीं है—जो कुछ है वह उसमें ही अंतर्निहित है। तुम किसी लक्ष्य से नहीं खेलते, बस अभी उसमें आनंदित होते हो। वह निरुद्देश्य है।

यही कारण है कि केवल बच्चे ही खेल सकते हैं; जैसे-जैसे तुम बड़े होते जाते हो वैसे-वैसे खेलने में तुम कम सक्षम होते जाते हो। लक्ष्य महत्त्वपूर्ण होता चला जाता है और तुम पूछने लगते हो, 'क्यों, मैं क्यों खेलूं?' तुम अधिक परिणाम-उन्मुख होते चले जाते हो—इससे कुछ मिलना चाहिए, खेल अपने आप में पर्याप्त नहीं है। अंतर्निहित मूल्य तुम्हारे लिए अर्थ खो देता है। केवल बच्चे ही खेल पाते हैं, क्योंकि वे भविष्य की नहीं सोचते। वे समय की धारणा से मुक्त, अभी और यहीं हो सकते हैं।

कार्य है समय; खेल है समय-शून्यता ध्यान खेल की तरह ही होना चाहिए, परिणाम-उन्मुख नहीं। किसी उपलब्धि के लिए ध्यान नहीं करना है, क्योंकि उसमें सारी बात ही खो जाती है। यदि तुम किसी उपलब्धि के लिए ध्यान कर रहे हो तो तुम ध्यान कर ही नहीं सकते। तुम ध्यान केवल तभी कर सकते हो जब तुम उसके साथ खेल रहे हो, उसका आनंद ले रहे हो, जब उससे कुछ पाना न हो बल्कि वह स्वयं में ही सुंदर हो। ध्यान के लिए ही ध्यान—तब वह समय-शून्य हो जाता है। और तब अहंकार नहीं उठ सकता।

कामना के बिना तुम स्वयं को भविष्य में प्रक्षेपित नहीं कर सकते, कामना के बिना तुम आशाएं नहीं कर सकते, और कामना के बिना तुम कभी निराश नहीं होगे। कामना के अभाव में, समय वास्तव में समाप्त हो जाता है—तुम शाश्वत के एक क्षण से शाश्वत के दूसरे क्षण में गति करने लगते हो। उसमें कोई शृंखला नहीं होती। और तब तुम कभी नहीं पूछोगे कि कुछ विशेष क्यों नहीं हो रहा।

जहां तक मेरा संबंध है, मैं तो अभी तक रहस्य को नहीं जान पाया। यह खेल ही रहस्य है; समय-शून्य होना, कामना-मुक्त होना ही रहस्य है। और साधारण होना ही लक्ष्य है—यदि यह शब्द प्रयोग करने की आज्ञा मुझे दो तो—साधारण होना ही लक्ष्य है। यदि तुम साधारण हो सको तो तुम मुक्त हो जाते हो, तब तुम्हारे लिए कोई संसार नहीं है।

यह पूरा संसार असाधारण होने का एक संघर्ष है। कुछ लोग राजनीति में इसका

प्रयास करते हैं, कुछ धन में करते हैं और कुछ धर्म में करते हैं, लेकिन वासना तो वही रहती है।

दूसरा प्रश्न :

केवल ध्यान में ही नहीं वरन दैनंदिन जीवन में भी मैं अस्तित्व के साथ एकरसता, अहंकार-शून्यता और समय-शून्यता सतत अनुभव करता हूं। फिर भी मैं स्वयं को साधारण पाता हूं। और मैं अपने भीतर उस आमूल रूपांतरण को नहीं देखता जिसकी आप अक्सर चर्चा करते रहते हैं।

यह शुभ है। यही लक्ष्य है। इससे कोई समस्या खड़ी मत करो। मजे से साधारण रहो।

लेकिन तुम ऐसा क्यों अनुभव करते हो? तुम्हें ऐसा क्यों लगता है कि तुम साधारण के साधारण हो? कहीं न कहीं जरूर असाधारण होने की कामना होगी। केवल उसकी तुलना में ही तुम साधारण अनुभव करते हो, और फिर एक तरह की उदासी घेरेगी ही। लेकिन साधारण होने में दिक्कत क्या है? जब मैं कहता हूं कि साधारण हो जाओ तो मेरा क्या अर्थ है? मेरा अर्थ है कि तुम जो भी हो—वही हो रहो।

कुछ ही दिन पहले एक युवक मेरे पास आया और बोला, 'मैं अहंकारी हूं और जब भी मैं आपको सुनता हूं तो मुझे लगता है कि मैं गलत हूं। तो मैं अहंकार से मुक्त कैसे होऊं?' मैंने उसे कहा, 'तुम बस अहंकारी रहो और इस तथ्य को स्वीकार करो कि तुम ऐसे हो और कोई द्वंद्व निर्मित मत करो। निरहंकारी होने का कोई प्रयास मत करो। तुम अहंकारी हो तो इसे अनुभव करो और अहंकारी रहो।'

उसे बहुत निराशा हुई, क्योंकि वास्तव में वह अहंकार के लिए नया मार्ग खोज रहा था। वह अहंकार-शून्यता की तलाश में था। और मैंने कहा, 'तुम जो हो वही होओ, ताकि कामना गिर जाए और अहंकार गति न कर सके।' मैंने उसे कहा, 'तीन महीने तक न तो मेरे पास आओ और न ही अहंकार से लड़ो—वह है, उसे स्वीकार कर लो। वह तुम्हारा हिस्सा है, ऐसे तुम हो। उससे लड़ो मत और उससे विपरीत की भाषा में मत सोचो कि कैसे निरहंकारी हुआ जाए, क्योंकि यह अहंकार का ही मार्ग है। उसे स्वीकार कर लो। स्वीकृति उसकी मृत्यु है।'

लेकिन उस युवक ने कहा, 'परंतु हर धर्म निरहंकारी होने को कहता है और मैं निरहंकारी होना चाहता हूं।'

यह 'मैं' कौन है जो निरहंकारी होना चाहता है? अहंकार के उपाय बहुत सूक्ष्म हैं। जब मैं उससे बात कर रहा था तो मुझे लग रहा था कि वह मुझे नहीं सुन रहा है। यदि मैं उसे निरहंकारी होने के लिए कुछ विधियां देता तो वह स्वीकार करने को, ग्रहण करने को तैयार होता, क्योंकि तब अहंकार अपना काम शुरू कर सकता था।

लेकिन मैं कह रहा था, 'निरहंकारिता की बात ही मत करो, बस जो हो वही होओ।

और तीन महीने संघर्ष मत करो, फिर मेरे पास आना।'

उसने प्रयास किया। तीन महीने बाद वह फिर आया और मुझसे बोला, 'यह स्वीकार बहुत कठिन था, लेकिन आपने कहा था तो मैंने प्रयास किया। अब इस अहंकार से पार जाने के लिए कोई विधि, कोई कुंजी दे दें।' उसका सारा प्रयास ही झूठा था, क्योंकि यदि तुम स्वीकार ही कर लो तो पार जाने की कोई कामना ही नहीं रह जाती।

जब भी तुम स्वयं को साधारण अनुभव करते हो तो किसी-न-किसी तरह से असाधारण होने की कोशिश करते हो। लेकिन हर कोई साधारण है—साधारण होना ही वास्तविक होना है। ऐसा हो सकता है कि कोई तुम्हें असाधारण लगता हो, क्योंकि उसकी तुलना तुम अपने साथ करते हो, लेकिन कोई महाविद्वान भी अपने आप में उतना ही साधारण है जितना कि कोई और; और वह स्वयं को साधारण ही महसूस करता है।

गुलाब का फूल भी साधारण है और कमल का फूल भी साधारण है, लेकिन गुलाब यदि तुलना करने लगे और सोचने लगे कि कैसे वह कमल हो जाए तो समस्या खड़ी हो जाएगी। और यदि कमल गुलाब से उठने वाली मधुर गंध के बारे में सोचने लगे तो गुलाब असाधारण हो जाएगा।

जब तुम तुलना करते हो तो उस तुलना से ही असाधारणतया पैदा होती है—वरना तो सब कुछ साधारण है। अपने आप में हर चीज बस जैसी है वैसी है। न तो तुलना करो, न कामना करो। यदि तुम कामना करते हो तो ध्यान तुम्हें निराश करेगा, क्योंकि ध्यान तुम्हें ऐसी स्थिति में ले आएगा जहां तुम अपनी परिपूर्ण साधारणता को अनुभव करोगे।

इसके प्रति खुलो, इसका स्वागत करो। यह शुभ है। इससे पता लगता है कि ध्यान बढ़ रहा है, गहरा हो रहा है। लेकिन कहीं-न-कहीं असाधारण होने की कामना अभी भी है और वही बाधा बन रही है।

यदि वह कामना चली जाए तो तुम साधारण नहीं अनुभव करोगे। तुम बस होओगे। तुम कैसे अनुभव कर सकते हो कि तुम साधारण हो? तुम बस होओगे, और मात्र होना, मात्र इस तरह होना कि तुम्हें यह भी पता न चले कि तुम साधारण हो या असाधारण—उपलब्ध हो जाना है।

यह शुभ है, इससे निराश मत होओ। यदि तुम निराश होते हो तो याद रखो कि तुम एक कामना को ढो रहे हो और वह कामना ही जहर पैदा कर रही है। यह पागलपन क्यों है? ऐसा हर किसी के साथ क्यों होता है? यह सारा संसार पागल है इस कारण से; हर कोई कुछ होना चाहता है, कुछ विशेष होना चाहता है।

जीवन तुम्हें केवल तभी घटित होता है जब तुम ना-कुछ हो जाते हो। जब तुम इतने खाली हो जाते हो कि भीतर कोई नहीं बचता, तो सारा जीवन बिना किसी बाधा, बिना किसी रुकावट के तुममें से बहने लगता है। तब बहाव पूर्ण और समग्र होता है।

जब तुम कुछ होते हो तो तुम चट्टान जैसे हो जाते हो और बहाव में बाधा डालते हो—जीवन तुममें से गति नहीं कर सकता। तुममें संघर्ष है, प्रतिरोध है, और स्वभावतः तुम बड़ा शोर करते हो। और तुम सोच सकते हो कि इतना शोर कर रहे हो तो शायद तुम बड़े असाधारण व्यक्ति हो।

एक खाली मार्ग हो जाओ, कोई प्रतिरोध न करो, ताकि जीवन तुममें से बह सके, सरलता से बह सके। फिर कोई शोर नहीं होगा। हो सकता है तुम्हें अपने होने का पता भी न चले, क्योंकि जब तुम संघर्ष करते हो तभी तुम्हें पता चलता है कि तुम हो। जितना तुम संघर्ष करते हो उतना ही तुम्हें तुम्हारा होना महसूस होता है।

जीवन इतनी शांति से तुममें से बहता है कि तुम अपना होना ही भूल जाते हो। न कोई बाधा है, न प्रतिरोध, न अस्वीकार, न निषेध। और तुम इतने स्वागत से भरे होते हो कि तुम यह भी भूल जाते हो कि तुम हो भी।

एक झेन गुरु के बारे में कहते हैं कि वह अपना ही नाम दिन में कई बार पुकारता था। सुबह वह कहता, 'बोकोजू?' और फिर कहता, 'जी हां, मैं यहीं हूं।' बोकोजू उसका ही नाम था। और उसके शिष्य उससे पूछते कि वह ऐसा क्यों करता है। वह कहता है कि मैं भूल जाता हूं। मैं इतना शांत हो गया हूं कि मुझे खुद को ही याद दिलाना पड़ता है, 'बोकोजू?' और फिर मैं कहता हूं, 'जी हां, मैं यहीं हूं।'

जीवन इतना शांत बहाव, इतनी शांत धारा हो सकता है कि कोई शोरगुल नहीं होता। लेकिन यदि तुम कुछ होने, असाधारण होने, विशेष होने पर ही अड़े रहो, तो जीवन तुममें से नहीं बह सकता। तब तुम्हारे और जीवन के बीच, तुम्हारे क्षुद्र अहंकार और ब्रह्मांड के बीच संघर्ष खड़ा हो जाता है।

इसी से विक्षिप्तता पैदा हो रही है। पूरी पृथ्वी एक विक्षिप्त ग्रह बन गई है। और इस विक्षिप्तता का निदान किसी उपचार, किसी मनोचिकित्सा से नहीं हो सकता, क्योंकि यह जीवन की इतनी मौलिक शैली बन गई है। यह कोई बीमारी नहीं है, ऐसे ही हम जी रहे हैं। हमारे जीने का पूरा ढंग ही विक्षिप्त है।

तो तुम्हारा उपचार किन्हीं चिकित्सा-पद्धतियों से नहीं हो सकता जब तक कि पूरी जीवन शैली ही न बदली जाए। और केवल दो ही तरह की जीवन शैलियां हैं—अहंकार-उन्मुख और निरहंकार-उन्मुख। तुम्हें कुछ होना है, यह जीवन का एक ढंग है। तब विक्षिप्तता उसका परिणाम होगी। असल में, विक्षिप्त व्यक्ति सबसे असाधारण व्यक्ति है। उसने असाधारणता उपलब्ध कर ली है, क्योंकि अब वह वास्तविकता से बिलकुल उखड़ गया है, यथार्थ से उसका कोई संबंध ही नहीं है। अब वह अपने आप में ही जीता है, उसने अपना निजी संसार निर्मित कर लिया है। अब स्वप्न वास्तविक हो गया है और वास्तविक बस स्वप्न मात्र रह गया है। सब कुछ गड्ड-मड्ड हो गया है।

तुम किसी पागल को राजी नहीं कर सकते कि वह गलत है, क्योंकि वह बहुत तर्क-संगत होता है। पागल बहुत तर्क-संगत और विचारयुक्त होते हैं।

एक पागल हर रोज सुबह-सुबह अपने घर से बाहर आकर कुछ मंत्रों का जाप करता

और कुछ मुद्राएं बनाता। तो स्वभावतः जो भी उधर से गुजरता वही पूछता कि वह क्या कर रहा है। और वह पागल कहता, 'मैं इस मोहल्ले की भूतों से रक्षा कर रहा हूं।'

तो वह राहगीर कहता, 'लेकिन यहां तो कोई भूत है ही नहीं।'

और वह पागल कहता, 'देखा, मेरे मंत्र जपने से यहां कोई भूत नहीं है।'

वह एकदम तर्कयुक्त है, तुम उसे समझा नहीं सकते—उसके मंत्र जाप के कारण भूत नहीं हैं। लेकिन अब वह अपने ही आंतरिक स्वप्न-जगत में जीता है और तुम उसे बाहर नहीं खींच सकते।

यदि तुम अपने को कुछ समझते हो—कोई भी कुछ नहीं हो सकता, यह तुम्हारा स्वभाव ही नहीं है—लेकिन तुम अपने को यदि कुछ समझते हो तो तुम्हारा एक हिस्सा विक्षिप्त हो गया है। यह कुछ होना ही तुम्हारी विक्षिप्तता है। और जितना कुछ होने का यह कैंसर बढ़ता जाएगा उतने ही तुम वास्तविकता से कटते जाओगे।

एक बुद्ध पुरुष ना-कुछ होता है। उसके सब द्वार खुले हैं। हवा आती है और चली जाती है, वर्षा आती है और बरस जाती है, सूर्य की किरणें आती हैं और गुजर जाती हैं, जीवन बहता चला जाता है, लेकिन वह वहां नहीं होता। जब मैं कहता हूं कि तुम्हें ध्यान घटित हुआ है तो मेरा यही अर्थ है। और यह बहुत साधारण, स्वाभाविक और वास्तविक है।

तीसरा प्रश्न :

आप अक्सर कहते हैं कि यह अच्छा है या बुरा है, यह गलत है या सही है। क्या यह भाषा आप हम लोगों के लिए ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि हम हर चीज की अखंडता को नहीं देख पाते, या कि अच्छे-बुरे जैसा कुछ होता है?

नहीं, यह तो केवल भाषा है। मेरे लिए तो न कुछ अच्छा है न बुरा। लेकिन तुम्हारे लिए यह बहुत खतरनाक होगा। सत्य खतरनाक हो सकता है। असल में, केवल सत्य ही खतरनाक हो सकता है—झूठ कभी इतने खतरनाक नहीं होते, क्योंकि उनमें कोई ताकत नहीं होती, उनमें कोई बल नहीं होता।

सत्य बहुत घबराने वाला हो सकता है। यह सत्य है कि न कुछ अच्छा है न बुरा, न कुछ सही है न गलत; सब कुछ जैसा है बस वैसा है; सारी निंदा और सारे विभाजन व्यर्थ हैं। लेकिन तुम्हारे लिए यह खतरनाक होगा। तुम्हारे लिए यह बहुत ज्यादा हो जाएगा और तुम इसे गलत समझ लोगे। तुम इसे समझ नहीं सकते; जब न कुछ अच्छा है न बुरा तो तुम समझ नहीं पाओगे और तुम अपने हिसाब से उसकी व्याख्या कर लोगे।

यदि मैं कहता हूं कि न कुछ अच्छा है न बुरा तो तुम सोचोगे कि अब तक जिस चीज को तुम बुरा समझते रहे हो, उसे अब बुरा समझने की कोई जरूरत नहीं है। तो तुम्हारे लिए यह उच्छृंखलता हो जाएगी और तुम दोहरी मानसिकता में पड़ जाओगे। तुम

सोचोगे कि तुम्हारे लिए न कुछ अच्छा है न कुछ बुरा है, लेकिन दूसरों को तुम इसकी इजाजत न दोगे। यदि तुम दूसरों को भी इसकी इजाजत दे सको तभी तुमने समझा; तब यह उच्छृंखलता न रही, मुक्ति हो गई। लेकिन मापदंड एक होना चाहिए, दोहरे मापदंड नहीं होने चाहिए।

मैं क्यों कहता हूं कि न कुछ अच्छा है न कुछ बुरा? क्योंकि अच्छाई और बुराई तो व्याख्याएं हैं, वास्तविकता नहीं हैं।

यदि बाहर बगीचे में कोई फूल खिला है तो तुम उसे सुंदर कह सकते हो और कोई दूसरा उसे कुरूप कह सकता है। फूल न सुंदर है न कुरूप। फूल अपनी वास्तविकता में जैसा है वैसा है। और उसे तुम्हारी व्याख्याओं की परवाह नहीं है। लेकिन तुम्हारे लिए वह या तो सुंदर है या नहीं है। वह सुंदरता और कुरूपता एक व्याख्या है, वास्तविकता नहीं। यह तुम्हारा मन है जो कहता है कि यह सुंदर है या कुरूप है। फूल को तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा, लेकिन तुम्हें अंतर पड़ेगा। यदि तुम उसे सुंदर कहते हो तो तुम्हारा आचरण एक तरह का होगा; यदि तुम उसे कुरूप कहते हो तो तुम्हारा आचरण अलग होगा। तुम अपनी व्याख्या से प्रभावित होओगे।

और मैं तुमसे बात कर रहा हूं तो मुझे सतत स्मरण रखना पड़ता है कि मैं जो भी कहूंगा, उससे तुम्हारा आचरण प्रभावित होगा। और जब तक तुम ऐसी स्थिति पर न पहुंच जाओ जहां सारा जोर करने से होने में बदल जाए, जब तुम कुछ करने में नहीं बस मात्र होने में ही उत्सुक रह जाओ, तब तक तुम नहीं समझ सकते कि जब मैं कहता हूं कि न कुछ अच्छा है न बुरा है तो उसका क्या तात्पर्य है। चीजें तो बस जैसी हैं वैसी हैं।

लेकिन यह समझना केवल तभी संभव है जब तुम अपने अंतस में गहरे केंद्रित हो जाओ। और यदि तुम अपने अंतस में केंद्रित हो तो तुम जो भी करोगे अच्छा ही होगा, तब कोई खतरा नहीं है। लेकिन अभी तुम अपने अंतस में केंद्रित नहीं हो, तुम अभी परिधि पर हो। तुम लगातार चुनाव कर रहे हो कि क्या करना है और क्या नहीं करना है।

असल में, तुमने कभी यह प्रश्न ही नहीं पूछा है, 'क्या होना है?' तुम सदा यही पूछते रहे हो, 'क्या करना है और क्या नहीं करना है, और यह ठीक होगा या नहीं?' तुमने कभी यह नहीं पूछा है, 'क्या होना है?' और जब तक होना करने से अधिक महत्त्वपूर्ण न हो जाए, तब तक अच्छा भी है और बुरा भी है—तुम्हारे लिए। तब तक कुछ ऐसा है जो करना है और कुछ ऐसा है जो नहीं करना है।

यह अंतर मैं कैसे करता हूं और क्यों करता हूं? यदि वास्तव में न कुछ अच्छा है और न कुछ बुरा है, तो यह अंतर क्यों और कैसे बन पाता है?

यह अंतर भी मैं तुम्हारे लिए ही करता हूं—मैं उस चीज को अच्छा कहता हूं जो तुम्हें तुम्हारे अंतस की ओर ले जाए, जहां सब कुछ अच्छा ही होता है, और उस चीज को मैं बुरा कहता हूं जो तुम्हें तुम्हारे अंतस से दूर ले जाए। यदि तुम स्वयं से दूर होते चले जाओ तो सब कुछ गलत हो जाएगा।

तुम्हें तुम तक, तुम्हारे घर तक लौटा लाने में मदद करने के लिए मैं किसी चीज को अच्छा या बुरा और ठीक या गलत कहता हूं। 'अच्छा या बुरा' शब्दों से 'ठीक या गलत' शब्दों का प्रयोग करना बेहतर है, क्योंकि तुम्हें तुम्हारे अंतस तक लौटा लाने की विधियों में मेरा अधिक रस है। तो वह विधि ठीक हो सकती है जो तुम्हें तुम्हारे अंतस पर ले जाए; और वह विधि गलत हो सकती है जो तुम्हें अंतस पर न पहुंचाए, या बाधा बन जाए और तुम्हें इधर-उधर के रास्तों पर भटकाती रहे, जो तुम्हें कहीं पहुंचाने की बजाय गोल-गोल घुमाती रहे।

लेकिन यदि तुम मुझसे पूछो तो अंततः न कुछ अच्छा है न बुरा, न ठीक है न गलत। और यदि तुम इसे अभी समझ सकते हो तो ऐसे जीना शुरू कर दो जहां न कुछ सही है न गलत। और जहां तक तुम दूसरों से संबंधित हो वहां तो यह बात है ही, दूसरे भी जहां तक तुमसे संबंधित हैं, यही बात है।

जीसस कहते हैं, 'दूसरों के साथ वही करो जो तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।'

यह एक मापदंड का मूल नियम है। और यही उन सबका संदेश है जो तुम्हें तुम तक लौटा लाने में मदद करना चाहते हैं—बस एक ही मापदंड है जहां न कुछ अच्छा है न बुरा है, न केवल तुम्हारे लिए बल्कि सब के लिए।

यदि तुम चोरी कर रहे हो तो यह कहना सरल है कि चोरी करना बुरा नहीं है, लेकिन यदि कोई और तुम्हारी कोई चीज चुरा रहा हो तो यह कहना कठिन हो जाता है कि चोरी करना बुरा नहीं है।

मैंने एक चोर के बारे में सुना है। जब चौथी बार वह पकड़ा गया तो जज ने उससे पूछा, 'तुम बार-बार पकड़े जाते हो, क्या बात है? यदि तुम इतने कुशल नहीं हो तो चोरी क्यों करते हो?' चोर ने कहा, 'कुशलता की बात ही नहीं है। मैं अकेला हूं और काम बहुत ज्यादा है।' तो जज ने कहा, 'फिर तुम कोई सहयोगी, कोई साथी क्यों नहीं ढूंढ़ लेते?' चोर ने उत्तर दिया, 'लोगों के चरित्र इतने गिर गए हैं कि किसी साथी पर भरोसा नहीं किया जा सकता।'

एक चोर भी दूसरों के लिए चरित्र की भाषा में सोचता है—'चरित्र इतने गिर गए हैं कि किसी साथी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इसलिए मुझे सारा काम अकेले करना पड़ता है और काम बहुत ज्यादा है।'

सब जानने वालों का यही गहनतम संदेश है—चुनाव करने को कुछ भी नहीं है। सब कुछ स्वीकृत है। यदि तुम इसे समग्रता से स्वीकार कर पाओ तो तुम रूपांतरित हो गए। लेकिन यदि तुम चालाक हो और स्वयं को धोखा देना चाहते हो तो यह समग्र स्वीकृति खतरनाक हो जाएगी।

तो मैं बहुत-सी चीजें केवल तुम्हारे कारण ही कहता हूं। और बीच-बीच में मैं वे बातें भी कहता जाता हूं जो मैं वास्तव में तुमसे कहना चाहता हूं। लेकिन यह बड़े अपरोक्ष ढंग से ही दिया जा सकता है। तुम इतने खतरनाक हो, इतने आत्मघाती हो, कि तुम

कुछ भी कर सकते हो जो तुम्हारे लिए हानिकारक हो सकता है।

मैं एक उच्चतर सत्य के बारे में बोल रहा हूं—न केवल उच्चतर सत्य, बल्कि परम सत्य। नरोपा अपने एक गीत में कहता है कि नर्क और स्वर्ग के बीच में केवल एक इंच का अंतर है। अच्छे और बुरे के बीच एक इंच का अंतर स्वर्ग और नर्क को अलग-अलग करता है।

और तुम्हें विषाद में रहना पड़ेगा, क्योंकि तुमने विभाजन खड़ा किया है। सारे विभाजनों को निकट से निकट लाते जाओ और उन्हें एक-दूसरे में विलीन हो जाने दो। अच्छे और बुरे को, अंधकार और प्रकाश को, जीवन और मृत्यु को एक-दूसरे में विलीन हो जाने दो। तब अद्वैत घटित होता है, तब एकरूपता घटती है। वह एकरूपता ही मुक्ति लाती है, रूपांतरण लाती है।

चौथा प्रश्न :

आत्म-सम्मोहन के द्वारा हमारी कल्पना ने ही हमको सीमा के जगत में, नाम और रूप के जगत में, सुख और दुख के जगत में प्रतिष्ठित किया है। क्या यही कुंजी असीम, परम और आनंद के जगत तक पहुंचने के लिए भी प्रयोग की जा सकती है? क्या उसी कुंजी का विपरीत दिशा में भी उपयोग किया जा सकता है?

तुम इस घर तक आए हो, जल्दी ही तुम वापस जाओगे, और फिर उसी रास्ते का उपयोग करोगे—लेकिन विपरीत दिशा में। जब तुम यहां आ रहे थे तो तुम्हारा चेहरा मेरी ओर था, जब तुम वापस जाओगे तो तुम्हारी पीठ मेरी ओर होगी। लेकिन मार्ग वही होगा। घर जाने के लिए किसी और मार्ग की जरूरत नहीं है। केवल दिशा बदल जाती है।

जो मार्ग तुमने अंधकार में आने के लिए तय किया है मार्ग तो वही होगा—वही एकमात्र मार्ग है—तुम्हें उसी मार्ग से वापस यात्रा करनी पड़ेगी। जो मार्ग तुम्हें दुख और विषाद में ले आया है, वही मार्ग तुम्हें आनंद और सुख में ले जाएगा। कोई और मार्ग ही नहीं है, न उसकी कोई जरूरत है। और स्मरण रहे, किसी और मार्ग पर जाना भी मत, नहीं तो कभी घर नहीं पहुंच सकोगे।

उसी मार्ग पर दोबारा चलने में तुम्हें थोड़ा जागरूक होना पड़ेगा। परिवर्तन केवल दिशा में होगा—बस पीछे मुड़ना है। सम्मोहन, आत्म-सम्मोहन इस संसार का निर्माण करते हैं। निर्सम्मोहन, निरात्म-सम्मोहन तुम्हें वापस यथार्थ तक पहुंचा देंगे। सीमित संसार तो कहीं है ही नहीं, केवल असीम ही है। यह तो तुम्हारी धारणा है, तुम्हारा सम्मोहन है, जो इसे सीमित बना देता है। अपना सम्मोहन हटा लो और संसार असीम हो जाता है। यह तो सदा से ही असीम है।

ध्यान की सारी विधियां सम्मोहन जैसी हैं। इससे समस्या खड़ी होती है। इससे समस्या खड़ी होती है जब लोग ध्यान और सम्मोहन के बीच अंतर पूछते हैं। कोई अंतर नहीं है। मार्ग वही है, बस दिशा विपरीत है।

सम्मोहन में तुम और नींद में चले जाते हो, और मूर्च्छित हो जाते हो; ध्यान में तुम नींद से बाहर आते हो, होश बढ़ता जाता है। मार्ग वही है। सम्मोहन में तुम स्वयं को धारणाओं में ढाल रहे हो और ध्यान में तुम स्वयं को धारणाओं से मुक्त कर रहे हो—लेकिन प्रक्रिया वही है। ध्यान विपरीत सम्मोहन है। तो जो भी तुमने किया है उसे अनकिया करना है। बस इतना ही है।

एक सरल-सा प्रयोग करके देखो जिससे तुम्हें पता चलेगा कि तुम स्वयं को सम्मोहित कर सकते हो। अपना कमरा बंद कर लो और बिलकुल अंधेरा कर दो। एक छोटी-सी मोमबत्ती ठीक अपने सामने रख लो। आंखें बिना झपकाए लौ की ओर देखते रहो और सोचते रहो कि तुम्हें नींद आ रही है, तुम्हें नींद आ रही है। गहरी निद्रा तुम पर छा रही है—इस विचार को भीतर बहने दो। मोमबत्ती की लौ को देखते रहो और इस विचार को बादल की तरह अपने ऊपर मंडराने दो—तुम सो रहे हो, सो रहे हो। जब तुम इसे करो तो तुम्हें कहना है, मैं सो रहा हूं, मुझे नींद आ रही है, मेरा अंग-अंग शिथिल हो रहा है।

अचानक तुम्हें एक सूक्ष्म परिवर्तन महसूस होगा और तीन मिनट में ही तुम्हें लगने लगेगा कि तुम्हारा शरीर भारी हो गया है। किसी भी क्षण तुम गिर सकते हो। आंखों की पलकें भारी हो गई हैं और अब लौ की ओर देखते रहना संभव नहीं है। आंखें बंद होना चाहती हैं। सब कुछ शिथिल हो गया है।

अब तुम महसूस कर सकते हो कि सम्मोहन क्या है—और अधिक सो जाना, तंद्रा में डूब जाना, बेहोश हो जाना। इस अनुभव को महसूस करो कि क्या हो रहा है, कैसे तुम्हारा मन आच्छादित हो रहा है। स्पष्टता चली गई, जीवंतता चली गई, तुम जड़ हो रहे हो, तुम्हारा शरीर अधिक बोझिल हो गया है। इस प्रयोग से तुम्हें पता चलेगा कि कैसे तुम्हारी चेतना अचेतन हो जाती है।

सात दिन तक इस प्रयोग को करो, ताकि तुम पूरी तरह से महूसस कर सको कि यह क्या है और कैसे तुम अंधेरे कुएं में उतरते चले जाते हो। बढ़ते हुए अंधकार, बढ़ती हुई नींद और बेहोशी के साथ एक ऐसा क्षण आएगा जब न तुम रहोगे और न लौ रहेगी। तुम गहन निद्रा में चले जाओगे। तुम कब्र का अनुभव कर सकोगे।

फिर सात दिन बाद दूसरा प्रयोग करो। वही कमरा हो, वही लौ हो और उसी तरह से उसको देखो, लेकिन मन में दूसरा विचार करो—'मैं अधिक जागरूक हो रहा हूं, अधिक जीवंत हो रहा हूं, अधिक सजग हो रहा हूं, शरीर हलका होता जा रहा है।' इस विचार को भीतर चलने दो और लौ की ओर देखते रहो—तुम अचानक जीवन, होश और चेतना का अनुभव करोगे। सात दिन के भीतर तुम ऐसी स्थिति में पहुंच जाओगे जहां तुम इतने जागरूक होओगे कि तुम्हें लगेगा जैसे शरीर है ही नहीं।

एक ध्रुव पर तो केवल गहन निद्रा है, जहां तुम स्वयं को पूरी तरह भूल जाते हो; दूसरे ध्रुव पर गहन जागरण है, जहां सब कुछ भूल जाता है, केवल तुम स्वयं को याद रखते हो। फिर बीच की कई स्थितियां हैं। जिस स्थिति में हम हैं वह बीच की है—आधे

सोए हुए, आधे जागे हुए। तो जो भी तुम कर रहे हो वह आधे सोए हुए और आधे जागे हुए कर रहे हो। दोनों प्रक्रियाएं एक समान हैं।

सघन विचार वास्तविकता बन जाता है; विचार घनीभूत होकर वस्तु बन जाता है। एक विचार यदि सतत तुम्हारी चेतना में चलता रहे तो तुम्हें रूपांतरित कर देता है, बीज बन जाता है। तो यदि तुम स्वयं को जागरूक बनाने के लिए संघर्ष कर रहे हो तो स्वयं को धारणाओं से मुक्त कर रहे हो और विपरीत दिशा में जा रहे हो।

गुरजिएफ इसे आत्म-स्मरण कहता है। वह कहता है, 'स्वयं को सतत स्मरंण रखो।'

बुद्ध कहते हैं, 'तुम जो भी कर रहे हो, स्वयं को मत भूलो; लगातार स्मरण करते रहो कि तुम यह कर रहे हो।' और इस बात पर उनका इतना आग्रह है कि वे अपने भिक्षुओं से कंहते हैं, 'जब तुम चलो और तुम्हारा बायां पांव ऊपर उठे, तो स्मरण रखो कि तुम्हारा बायां पांव उठ रहा है, अब पांव नीचे जा रहा है, अब दायां पांव उठ रहा है, अब दायां पांव नीचे जा रहा है। स्मरण रखो कि श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है। जो भी हो रहा है उसे सतत स्मरण रखो और हर घटना का स्मरण के लिए एक परिस्थिति की भांति उपयोग कर लो। कुछ भी बेहोशी की, निद्रा की अवस्था में मत करो।'

और बुद्ध कहते हैं कि इतना ही पर्याप्त है। यदि तुम चौबीस घंटे इसी तरह से कार्य कर सको तो देर-अबेर तुम स्वयं ही सम्मोहन से मुक्त हो जाओगे। तुम होश से भर उठोगे।

तो सम्मोहन और ध्यान एक ही प्रक्रिया की दो विपरीत दिशाएं हैं। तुम सम्मोहन का प्रयोग स्वयं के जागरण के लिए कर सकते हो; तुम सम्मोहन का प्रयोग गहरी नींद में जाने के लिए भी कर सकते हो। और यदि तुम सम्मोहन की कला के स्वामी हो जाओ तो जीवन के सभी द्वार खोलने की कुंजी तुम्हारे हाथ लग जाती है।

यदि तुम सम्मोहन की कला के स्वामी नहीं हो तो तुम बहुत-सी चीजों के शिकार होते हो। यह समझने जैसा है—यदि तुम्हें यह नहीं पता कि सम्मोहन क्या है तो तुम एक शिकार हो। हर कोई तुम्हें सम्मोहित करने की कोशिश कर रहा है—मैं कहता हूं हर कोई। हो सकता है वे जान-बूझ कर न कर रहे हों, लेकिन सभी कोशिश कर रहे हैं। अलग-अलग ढंग हैं, अलग-अलग उपाय हैं।

पूरा संसार सम्मोहन की चालबाजियों से भरा है—वही विज्ञापन होते हैं अखबार में, वही टेलीविजन पर, वही रेडियो पर। इससे चोट पड़ती चली जाती है और सम्मोहन बन जाता है। तुम मन में दोहराते रहते हो, 'लक्स सर्वोत्तम साबुन है।' तुम दोहराए चले जाते हो। तुम जहां भी जाते हो, दीवारों पर यही लिखा है, फिल्मों में तुम यही देखते हो, टेलीविजन की स्क्रीन पर यही है, रेडियो पर यही है, पत्र-पत्रिकाओं में, कहीं भी देखो—लक्स टायलेट सोप। यह चलता रहता है। तुम इससे सम्मोहित हो जाते हो। फिर तुम दुकान पर जाते हो और दुकानदार तुमसे पूछता है, 'कौन-सा साबुन चाहिए?' तो तुम कहते हो, 'लक्स टायलेट सोप।'

तुम सोए हुए हो। तुम यह जागे हुए नहीं कह रहे; बार-बार तुम्हें यह बताया गया है और अब यह तुम्हारे भीतर घर कर गया है। तुम्हें सम्मोहित करने के लिए करोड़ों रुपए विज्ञापनों पर खर्च किए जाते हैं। उन विज्ञापनों को लगातार दोहराना पड़ता है। दोहराना ही ढंग है। फिर उसकी छाप पड़ जाती है, और तुम उसे बिलकुल भूल जाते हो; फिर अचानक तुम्हारे मुंह से निकलता है, 'लक्स टायलेट सोप।' और तुम सोचते हो कि तुम चुनाव कर रहे हो। तुम चुनाव करने वाले नहीं हो।

पूरी शिक्षा प्रणाली एक सम्मोहन है। इसीलिए शिक्षक को ऊंची जगह पर बिठाना पड़ता है। इसे वैज्ञानिक ढंग से नापना चाहिए, क्योंकि एक विशेष स्थिति होती है—जिस तरह से मैं यहां बैठा हूं वह गलत है, वह ठीक नहीं है। तुम्हारी आंखें मुझे देखते समय तनाव में होनी चाहिए, विश्रांत नहीं—तब तुम सरलता से सम्मोहित हो सकते हो।

हिटलर ने हर अनुपात का प्रयोग किया। उसके पास एक विशेषज्ञ कमेटी थी जो निर्धारित करती थी कि श्रोताओं से कितनी दूरी होनी चाहिए और कितनी ऊंचाई होनी चाहिए जिससे कि आंखें ठीक इतनी तनाव से भर जाएं कि उन्हें सम्मोहित किया जा सके और सुलाया जा सके। फिर सब बत्तियां बुझा दी जाती थीं—हिटलर जहां भाषण देता था वहां सारा प्रकाश हिटलर पर ही होता था। कोई कहीं और नहीं देख पाता था, तो हिटलर की ओर ही देखना पड़ता था। एक खास परिस्थिति में एक खास तनाव पैदा किया जाता था। इस तनाव की स्थिति में वह थोड़ी देर तक कुछ-कुछ कहता रहता। जो चीजें उसे तुम्हारे दिमाग में डालनी होतीं वे बातें बाद में वह तब कहता जब श्रोता सोए-सोए से हो जाते। तब शब्द सीधे अचेतन में उतर जाते और कार्य करने लगते।

अब तो फिल्मों में त्वरित विज्ञापनों का उपयोग करने लगे हैं। जब तुम फिल्म देख रहे हो तो दो दृश्यों के बीच, केवल एक क्षण के छोटे से हिस्से के लिए विज्ञापन निकल जाता है। तुम उसे पढ़ भी नहीं पाओगे, तुम्हें पता भी नहीं लगेगा कि क्या हुआ। फिल्म देखते हुए अचानक कुछ क्षण के लिए विज्ञापन आएगा—लेकिन तुम्हें सचेतन रूप से उसका कुछ भी पता न चलेगा।

सौ में से केवल दो लोग महसूस कर सकते हैं कि कुछ हुआ है। जिनके पास बहुत सतर्क आंखें हैं केवल उन्हें लगेगा कि बीच में कुछ था। अट्ठानबे प्रतिशत को तो पता भी न चल पाएगा, लेकिन अचेतन में वे भी पढ़ लेंगे। वह तुम्हारे भीतर पहुंच जाएगा।

अमेरिकी फिल्मों में इसका एक प्रयोग किया गया। शीतल पेय के एक विशेष ब्रांड का विज्ञापन इसी तरह उन्होंने स्क्रीन पर चलाया—एक नया प्रयोग। केवल दो प्रतिशत लोगों को पता चल पाया कि कोई विज्ञापन था, अट्ठानबे प्रतिशत लोग पूरी तरह बेखबर थे, फिर भी इंटरवल में कई लोग बाहर गए और उसी शीतल पेय की मांग करने लगे। उन्हें पता नहीं था कि कोई विज्ञापन भी आया, क्योंकि वह बहुत त्वरित था।

तो चारों ओर सम्मोहन है। शिक्षा उसका उपयोग करती है, राजनीति उसका

उपयोग करती है, बाजार उसका उपयोग करता है, सभी उसका उपयोग करते हैं। और यदि तुम सचेत नहीं हो तो तुम उसके शिकार हो। जागो।

यदि तुम जाग जाओ तो उसका उपयोग कर सकते हो—दूसरों को सम्मोहित करने के लिए नहीं, बल्कि स्वयं को सम्मोहन से मुक्त करने के लिए। और यदि तुम पूरी तरह से सम्मोहन से निकल सको तो तुम स्वतंत्र हो गए, मुक्त हो गए।

और ध्यान तथा सम्मोहन में कोई विरोध नहीं है। विरोध है दिशा में, प्रक्रिया वही है।

आज इतना ही।

67

मन और पदार्थ के पार

सूत्र

94. अपने शरीर, अस्थियों, मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।

95. अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं।

सदियों से विश्वभर के दार्शनिकों में यह विवाद रहा है कि क्या है वह मूल तत्त्व जिससे यह जगत निर्मित हुआ है?

ऐसे सिद्धांत हैं, दर्शन की ऐसी व्यवस्थाएं हैं जो कहती हैं कि पदार्थ मूल सत्य है और मन बस उसका ही विकास है, पदार्थ मूल है और मन उसी का परिणाम मात्र है, मन भी पदार्थ ही है, बस जरा सूक्ष्म रूप में है। भारत में चार्वाक ने, ग्रीस में इपिकुरस ने यह धारणा दी। और आज भी मार्क्सवादी तथा दूसरे भौतिकवादी पदार्थ की भाषा में ही बात करते हैं।

इसके ठीक विपरीत एक दूसरी विचारधारा है, जो कहती है कि पदार्थ की अपेक्षा मन मूल तत्त्व है और पदार्थ मन का ही एक रूप है। वेदांत तथा अन्य आदर्शवादी दार्शनिकों ने सब कुछ मन तक ही सीमित कर दिया।

इस सदी के आरंभ में ऐसा सोचा जाता था कि भौतिकवादी जीत गए हैं, क्योंकि विज्ञान की खोजें सिद्ध कर रही थीं—या सिद्ध करती प्रतीत होती थीं—कि पदार्थ ही मूल तत्त्व है। लेकिन इन पिछले दो या तीन दशकों में सारी बात ही बदल गई। इस सदी के एक महान वैज्ञानिक एडिंगटन ने कहा है, 'अब हम कह सकते हैं कि यह संसार पदार्थ की भांति कम और एक विचार की भांति अधिक प्रतीत होता है।' और मैक्स प्लांक तथा आइंस्टीन जैसे भौतिकविदों ने गहन शोध में पाया कि जैसे-जैसे हम पदार्थ में गहरे प्रवेश करते जाते हैं उतना ही पदार्थ समाप्त होता जाता है, वहां पदार्थ से कुछ अधिक, पदार्थ के पार कुछ प्रतीत होता है। तुम उसे पदार्थ की बजाय मन अधिक सरलता से कह सकते हो, क्योंकि वह ऊर्जा का एक रूप है। एक बात निश्चित है—पुराने अर्थों में यह पदार्थ नहीं रहा।

तंत्र के लिए, योग के लिए तो कोई चुनाव ही नहीं है। तंत्र तो कभी नहीं कहता

है कि पदार्थ मूल तत्त्व है, या मन मूल तत्त्व है। तंत्र का तीसरा मत है, और मेरी दृष्टि में अंततः यही मत जीतेगा। तंत्र की मान्यता है कि पदार्थ और मन दोनों एक तीसरी वस्तु के ही दो रूप हैं जिसे हम 'एक्स' कह सकते हैं। न तो मन असली चीज है न पदार्थ, बल्कि एक तीसरी ही सत्ता है जो दोनों में मौजूद है, परंतु किसी में सीमित नहीं, दोनों ही उसकी अभिव्यक्तियां हैं। पदार्थ और मन वास्तविक नहीं हैं, बल्कि दोनों ही एक तीसरी मूलभूत सत्ता की अभिव्यक्तियां हैं, जो छिपी रहती हैं। जब भी वह स्वयं को प्रकट करती है तो या तो पदार्थ के रूप में प्रकट करती है या मन के।

तो पदार्थ और मन तथा उनके अनुयायियों के बीच सारा विवाद व्यर्थ है, क्योंकि भौतिकी को अब जिस परम तत्त्व का पता लगा है वह न तो पदार्थ जैसा है, न मन जैसा है। सारा विभाजन समाप्त हो गया, द्वैत विदा हो गया। इस मूल तत्त्व का व्यवहार बहुत बेबूझ है—कभी तो वह पदार्थ की भांति व्यवहार करता है, कभी मन की भांति।

तुम जानकर हैरान होओगे कि विज्ञान अलग-अलग अणुओं के बारे में कुछ भी नहीं कह सकता—मनुष्य की भांति उनका व्यवहार भी अनिश्चित है। किसी स्वतंत्र अणु के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह कैसा व्यवहार करेगा। ऐसा लगता है जैसे उसे पूरी स्वतंत्रता है, कोई कार्य-कारण उसके व्यवहार को निश्चित नहीं कर सकता। हम समूह के व्यवहार की तो पहले से भविष्यवाणी कर सकते हैं, लेकिन एक अणु के व्यवहार की नहीं। कभी तो वह पदार्थ की भांति कार्य-कारण की भाषा में व्यवहार करता है और कभी मन की तरह व्यवहार करने लगता है, जैसे कि उसकी मरज़ी हो, जैसे कि उसे चुनाव करने की स्वतंत्रता हो।

तंत्र के साथ विज्ञान की यह अंतर्दृष्टि पूरी तरह से मेल खाती है। लेकिन तंत्र ऐसा क्यों कहता है कि मूल सत्य तीसरी अज्ञात सत्ता एक्स है? इसलिए नहीं कि तंत्र सत्य के बारे में कोई सिद्धांत प्रतिपादित करना चाहता है। नहीं, यह तो केवल साधना में, आध्यात्मिक विकास में सहयोग के लिए कहा गया है।

सत्य यदि तीसरा ही है, मन और पदार्थ केवल उसकी दो अभिव्यक्तियां ही हैं—तो तुम सत्य में दो द्वारों से प्रवेश कर सकते हो—चाहे पदार्थ से, चाहे मन से। यदि तुम पदार्थ के द्वार से प्रवेश करना चाहो तो कुछ भिन्न विधियां हैं। पदार्थ से, शरीर से प्रवेश करने की एक विधि हठयोग है। उसमें तुम्हें शरीर को रूपांतरित करना पड़ेगा, शरीर के कुछ विशेष रासायनिक तत्त्वों को निखारना पड़ेगा, तब तुम सत्य में प्रवेश करोगे। या, तुम सीधे मन से ही प्रवेश कर सकते हो। राजयोग और दूसरी विधियां मन से प्रवेश करने के उपाय हैं। और तंत्र के लिए दोनों ही सही हैं।

तंत्र से तुम यह नहीं कह सकते कि शरीर की कोई खास मुद्रा सत्य में प्रवेश करने में कैसे सहायक हो सकती है? तंत्र कहता है, मुद्राएं सहायक हो सकती हैं। शरीर की मुद्रा मात्र शरीर की ही मुद्रा नहीं है, क्योंकि शरीर वस्तुतः सत्य का ही एक रूप है। तो जब तुम शरीर को कोई विशेष मुद्रा दे रहे हो, तब तुम सत्य को भी एक रूप दे रहे हो।

और ऐसे आसन हैं, जिनसे तुम सरलता से अपने भीतर प्रवेश कर सकते हो। कोई विशेष प्रकार का भोजन भी इसमें सहायक हो सकता है। श्वास की कोई विशेष प्रक्रिया भी तुम्हें सहयोग दे सकती है। भोजन, श्वास, शरीर, ये सब भौतिक चीजें हैं। परंतु तुम इनके द्वारा सत्य में प्रवेश कर सकते हो।

और मन के साथ भी ऐसा ही है—केवल मन पर कार्य करके भी तुम सत्य में प्रवेश कर सकते हो। कई बार तुम्हारे मन में प्रश्न उठा होगा कि शिव पार्वती को कुछ ऐसी विधियां बता रहे हैं जो कल्पनायुक्त हैं। यह प्रश्न उठना अनिवार्य ही है कि कल्पना किस प्रकार सहयोगी हो सकती है?

कल्पना भी सत्य का ही एक रूप है, क्योंकि मन भी सत्य का ही एक रूप है। और जब तुम मन में कल्पना को बदलते हो तो तुम सत्य के रूप में परिवर्तन कर रहे हो। तंत्र के लिए कुछ भी असत्य नहीं है। यहां तक कि स्वप्न की भी अपनी वास्तविकता है और वह तुम्हें प्रभावित करती है। तो एक स्वप्न भी मात्र स्वप्न ही नहीं है। स्वप्न भी उतना ही सत्य है जितनी कि कोई और चीज, क्योंकि वह भी तुम्हें प्रभावित करता है, तुम्हें बदलता है। उस स्वप्न के कारण तुम वही नहीं रह जाते जो पहले थे और कभी वही नहीं रह पाओगे।

अगर तुम सपने में चोर हो तो सुबह उठकर तुम कहोगे कि इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, यह तो केवल एक स्वप्न ही था। लेकिन तंत्र ऐसा नहीं कहता। चोरी के सपने ने तुम्हें बदल दिया। सुबह तुम्हारी वास्तविकता कुछ और ही होगी, तुम वही नहीं रह सकते। चाहे तुम इसे पहचानो या न पहचानो, उस सपने ने तुम्हें प्रभावित किया। वह तुम्हारे व्यवहार, तुम्हारे भविष्य पर प्रभाव डालेगा, वह एक बीज बन गया।

सपना भी असंगत नहीं है। और तुम सोचते हो कि सपने तो बस सपने हैं। ऐसा नहीं है, क्योंकि तुम होशपूर्वक किसी सपने का निर्माण नहीं कर सकते, तुम कोई सपना चुन नहीं सकते। तुमको वह ऐसे ही आता है जैसे और चीजें आती हैं। क्या तुम किसी सपने का चुनाव कर सकते हो? क्या तुम तय कर सकते हो कि आज रात तुम फलां सपना देखोगे? क्या तुम किसी सपने की इच्छा कर सकते हो? तुम सपने की इच्छा नहीं कर सकते, क्योंकि उसके लिए तुम्हारी वास्तविकता में परिवर्तन की जरूरत होती है। तभी कोई सपना आता है।

सपना तो एक फूल की भांति है। गुलाब का फूल गुलाब की झाड़ी पर ही लगता है, और फूल को तुम तब तक नहीं बदल सकते, जब तक कि तुम बीज से लेकर आगे की सारी-की-सारी प्रक्रिया ही न बदल डालो। तुम अकेले फूल को नहीं बदल सकते। सपना फूल की तरह ही है। यदि तुम सपने को बदल सकते हो तो सत्य को भी बदल सकते हो।

तो कई बार कई विधियां कल्पनायुक्त लगेंगी। लेकिन वे भी वास्तविक हैं। तंत्र तुम्हारी कल्पना को बदलने की चेष्टा कर रहा है। अगर कल्पना को बदला जा सके तो उसके पीछे छिपा हुआ सत्य स्वतः ही बदल जाएगा।

जिन विधियों की आज हम चर्चा करेंगे वे तुम्हारी कल्पना, तुम्हारे स्वप्न, तुम्हारे मन से शुरू होती हैं। तीन बातें स्मरण रखने जैसी हैं। एक—तुम्हारे मन में जो भी होता है वह ऊपर-ऊपर नहीं है, वह तुम्हारे कारण हो रहा है। वह इसलिए हो रहा है क्योंकि तुम एक खास परिस्थिति में हो। तो दो चीजें की जा सकती हैं—या तो परिस्थिति को बदलो, तब तुम्हें शरीर से शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि शरीर है परिस्थिति; या परिस्थिति की बजाय परिणाम को बदल डालो। यह जरा कठिन होगा, उसे बदलना सरल नहीं होगा। लेकिन यदि तुम प्रयास करो और करते ही चले जाओ तो तुम्हारा प्रयास उसे बदल देगा।

एक बात निश्चित है—चाहे तुम उस लक्ष्य को न पा सको, जिसके बाबत तुम सोच रहे थे, पर यह तथ्य कि तुमने प्रयास किया, तुम्हें बदल देगा। चाहे तुम सफल हो या असफल, लेकिन तुम बदल जाओगे। तुम्हारा प्रयास करना ही तुम्हें बदल देगा।

तीसरे, यह मत सोचो कि मन केवल मन है और स्वप्न केवल स्वप्न है। यदि तुम अपने सपने को दिशा दे सको—और पश्चिम में दिशामान स्वप्न नाम की चिकित्सा पद्धति प्रारंभ हो भी गई है—यदि तुम अपने सपने को दिशा दे सको तो तुम स्वयं को दिशा दे रहे हो। तब बहुत-सी बातें बदल जाएंगी।

एक प्राचीन तिब्बती विधि है—सिंह गर्जना। यदि तुम क्रोध में हो या कामवासना से, घृणा से, द्वेष से भरे हो तो तिब्बती गुरु तुम्हें यह विधि देगा—सिंह गर्जना। तुम्हें दर्पण के सामने बैठकर यह कल्पना करनी होती है कि तुम मनुष्य नहीं सिंह हो। तुम्हें सिंह की तरह से चेहरा बनाना होता है, जीभ बाहर लटका कर गर्जना करनी होती है। और इसका इतना अभ्यास करना होता है कि तुम भूल ही जाओगे कि तुम आदमी हो और सिंह होने की कल्पना कर रहे हो, यह एकदम सत्य प्रतीत होने लगेगा। और एक क्षण आता है जब तुम अपनी ही कल्पना के शिकार हो जाते हो और सिंह बन जाते हो। अचानक तुमसे एक गर्जना उठती है और तुम रूपांतरित हो जाते हो। उस गर्जना में सब काम, क्रोध और घृणा समाप्त हो जाती है। उसके साथ ही तुम ऐसे गहन मौन का अनुभव करते हो जो अपूर्व है।

प्राचीन तिब्बती मठों में विशेष कक्ष होते थे जिनमें दर्पण ही दर्पण लगे होते थे। जब भी कोई क्रोध, घृणा या द्वेष जैसे किसी मनोवेग से पीड़ित होता तो उसे तब तक के लिए उस कक्ष में भेज दिया जाता, जब तक कि वह चरम सीमा तक न पहुंच जाए। और जब वह चरम सीमा पर पहुंच जाता तो पूरे मठ को पता लग जाता, क्योंकि भीतर से भयंकर सिंह-गर्जना उठती। तब सारा मठ इकट्ठा होकर उस व्यक्ति का स्वागत करता और वह व्यक्ति दूसरा ही होकर बाहर आता।

इसमें तीन दिन भी लग सकते हैं, सात दिन भी लग सकते हैं। भोजन उसे पहुंचा दिया जाता था, मगर उसे बाहर नहीं आने दिया जाता था। उसे तब तक सिंह होने की कल्पना पर दृढ़ रहना पड़ता जब तक कि अचेतन के गहनतम तल से गर्जना न उठे। उस गर्जना में पूरा शरीर भाग लेता, उसकी एक-एक कोशिका, शरीर का एक-एक कोष्ठ गरजता। और उस गर्जना में सब कुछ बाहर फिंक जाता है।

यह गहनतम रेचन है। इसके बाद वह व्यक्ति कभी क्रोधित नहीं होगा, क्योंकि अब वह विष ही उसमें नहीं है, पहली बार उसका चेहरा मानवीय होगा।

तुम्हारा चेहरा मानवीय नहीं हो सकता, क्योंकि बहुत कुछ तुममें दबा हुआ है। द्वेष, घृणा, क्रोध, जो भी तुमने दबाया है सब वहां छिपा पड़ा है। चमड़ी के नीचे पर्त दर पर्त दबी हुई हैं। उन सब से तुम्हारे चेहरे का निर्माण हो रहा है। यदि उन सबको बाहर निकाला जाए···। और यह मात्र दिवास्वप्न है, एक दिशामान दिवास्वप्न!

पश्चिम में अब एक और चिकित्सा पद्धति प्रचलित हो रही है जिसे वे कहते हैं, साइकोड्रामा। वह प्राचीनतम बौद्ध विधियों में से एक है—कि तुम नाटक के हिस्से बन जाओ, इतनी समग्रता से इसे करो कि तुम भूल जाओ कि तुम केवल अभिनय कर रहे हो। अभिनय तब कृत्य बन जाता है और तुम कर्ता बन जाते हो। यही तुम्हें रूपांतरित कर देता है।

तंत्र कहता है कि यदि तुम अपने स्वप्न को, अपनी कल्पना को, अपने मन को बदल सको तो उसके पीछे छिपा सत्य भी बदल जाएगा। मन क्योंकि सत्य से गहरा जुड़ा हुआ है इसलिए तुम उससे शुरू कर सकते हो। ये विधियां उस ढंग और शैली को बदलने के लिए हैं जिसमें तुम्हारा मन अब तक कार्य करता रहा है।

अपने को भरा हुआ अनुभव करो

पहली विधि :

94. अपने शरीर, अस्थियों, मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।

सरल प्रयोगों से शुरू करके देखो। सात दिन के लिए एक सरल सा प्रयोग करो—अपने खून, अपनी हड्डियों, अपने मांस, अपने शरीर को उदासी से भरा अनुभव करो। तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं उदास हो जाए, एक काली रात तुम्हारे चारों ओर छा जाए, बोझिल और विषादयुक्त हो जाओ, जैसे कि प्रकाश की एक किरण भी दिखाई न पड़ती हो, कोई आशा न बचे, घनी उदासी हो, जैसे कि तुम मरने वाले हो। तुममें जीवन नहीं धड़क रहा, तुम बस मरने की प्रतीक्षा कर रहे हो, जैसे कि मृत्यु आ ही गई है या धीरे-धीरे आ रही है।

सात दिन तक भाव करते रहो कि मृत्यु पूरे शरीर में हड्डी-मांस-मज्जा तक प्रवेश कर गई है। बिना इस भाव को तोड़े, इसी तरह सोचते चले जाओ। फिर सात दिन के बाद देखो कि तुम कैसा अनुभव करते हो।

तुम केवल एक मृत बोझ रह जाओगे। सब संवेदनाएं समाप्त हो जाएंगी, शरीर में कोई जीवन अनुभव नहीं होगा। और तुमने किया क्या है? तुमने खाना भी खाया और तुमने वह सब भी किया जो तुम हमेशा से करते रहे हो, एकमात्र अंतर वह कल्पना ही थी—तुम्हारे चारों ओर कल्पना की एक नई शैली खड़ी हो गई।

यदि तुम इसमें सफल हो जाओ…और तुम सफल हो जाओगे। असल में तुम इसमें सफल हो ही चुके हो, तुम ऐसा कर ही रहे हो, अनजाने ही तुम इसे करने में निष्णात हो। इसीलिए मैं कहता हूं कि निराशा से शुरू करो। यदि मैं कहूं कि आनंद से भर जाओ तो वह बहुत कठिन हो जाएगा। तुम ऐसा सोच भी नहीं सकते। लेकिन यदि निराशा के साथ तुम यह प्रयोग करते हो तो तुम्हें पता लगने लगेगा कि इस तरह यदि निराशा आ सकती है तो सुख क्यों नहीं आ सकता? यदि तुम अपने चारों ओर एक निराशापूर्ण मंडल तैयार करके एक मृत वस्तु बन सकते हो तो तुम एक जीवंत मंडल तैयार करके जीवंत और नृत्यपूर्ण क्यों नहीं हो सकते।

दूसरे, तुम्हें इस बात का पता चलेगा कि जो दुख तुम भोग रहे थे वह वास्तविक नहीं था। तुमने उसे पैदा किया था, रचा था; अनजाने में तुम उसे पैदा कर रहे थे। इस पर विश्वास करना बड़ा कठिन लगता है कि तुम्हारा दुख तुम्हारी ही कल्पना है, क्योंकि उससे सारा उत्तरदायित्व तुम पर ही आ जाता है, तब दूसरा कोई उत्तरदायी नहीं रह जाता। और तुम कोई उत्तरदायित्व किसी परमात्मा पर, भाग्य पर, लोगों पर, समाज पर, पत्नी पर या पति पर नहीं फेंक सकते; किसी अन्य पर उत्तरदायित्व नहीं लाद सकते। तुम ही निर्माता हो, जो कुछ भी तुम्हारे साथ हो रहा है वह तुम्हारा ही निर्माण है।

तो सात दिन के लिए सजगता से इसका प्रयोग करो। और मैं कहता हूं, उसके बाद तुम कभी भी दुखी नहीं होओगे, क्योंकि तुम्हें तरकीब का पता लग जाएगा।

फिर सात दिन के लिए आनंद की धारा में होने का प्रयास करो, उसमें बहो, अनुभव करो कि हर श्वास तुम्हें आनंद-विभोर कर रही है। सात दिन के लिए दुख से शुरू करो और फिर सात दिन के लिए उसके विपरीत चले जाओ। और जब तुम बिलकुल विपरीत ध्रुव पर प्रयोग करोगे तो तुम उसे बेहतर अनुभव करोगे, क्योंकि उसमें स्पष्ट अंतर नजर आएगा। उसके बाद ही तुम यह प्रयोग कर सकते हो, क्योंकि यह सुख से भी गहन है। दुख परिधि है, सुख मध्य में है और यह अंतिम तत्त्व है, अंतरतम बिंदु है—ब्रह्मांडीय सार।

'अपने शरीर, अस्थियों, मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।'

शाश्वत जीवन, दिव्य ऊर्जा, ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो। लेकिन इसे सीधे ही मत शुरू करो, नहीं तो तुम इतने गहरे स्पर्श न कर पाओगे। दुख से शुरू करो, फिर सुख पर आओ, उसके बाद ही जीवन के स्रोत, ब्रह्मांडीय सार, पर जाओ। और स्वयं को उससे भरा हुआ अनुभव करो।

शुरू में तो बार-बार तुम्हें लगेगा कि तुम केवल कल्पना कर रहे हो, लेकिन रुको नहीं। कल्पना करना भी अच्छा है। यदि तुम किसी मूल्यवान बात की कल्पना भी कर सको तो अच्छा है। तुम कल्पना कर रहे हो और कल्पना करने से ही तुम बदलने लगते हो। तुम ही तो कल्पना कर रहे हो! कल्पना करते रहो; और धीरे-धीरे तुम भूल जाओगे कि तुम इसकी कल्पना कर रहे हो, यह एक वास्तविकता बन जाएगी।

बौद्ध ग्रंथ लंकावतार सूत्र महानतम ग्रंथों में एक है। बार-बार बुद्ध अपने शिष्य महामती से कहते हैं, वे कहे चले जाते हैं, 'महामती, यह केवल मन है। नर्क भी मन है और स्वर्ग भी मन है। संसार मन है, बुद्धत्व मन है।' महामती बार-बार पूछता है, 'मन है? केवल मन है? यहां तक कि निर्वाण, जागरण, केवल मन?' और बुद्ध कहते हैं, 'केवल मन, महामती।'

और जब तुम समझते हो कि सब कुछ मन ही है, तुम मुक्त हो जाते हो। तब कोई बंधन नहीं, तब कोई कामना नहीं। लंकावतार सूत्र में बुद्ध कहते हैं कि पूरा संसार गंधर्व-नगरी है, जादू-नगरी है, जैसे किसी जादूगर ने एक संसार रचा हो। हर चीज ऐसे भासती है कि है, लेकिन वह विचार के कारण ही है।

लेकिन बाह्य सत्य से प्रारंभ मत करो, वह बहुत दूर है। वह भी मन है, लेकिन बहुत दूर है। बहुत पास से, अपनी ही भावदशा से शुरू करो। और यदि तुम देख लो, जान लो कि वे तुम्हारा ही निर्माण हैं तो तुम उनके मालिक हो गए।

जब भी तुम दुख की भाषा में सोचने लगते हो, तुम दुखी हो जाते हो और अपने चारों ओर के दुख के प्रति ग्रहणशील हो जाते हो। फिर हर कोई तुम्हें दुखी होने में सहयोग देने लगता है। हर कोई सहयोग देता है, पूरा संसार तुम्हें सहयोग देने को तैयार रहता है, तुम चाहे जो भी करो। जब तुम दुखी होना चाहते हो तो पूरा संसार दुखी होने में तुम्हारी मंदद करता है, सहयोग करता है। तुम सब ओर से दुख ग्रहण करने लगते हो। असल में तुम ऐसी भाव दशा में पहुंच जाते हो जहां केवल दुख ही ग्रहण किया जा सकता है।

तो यदि कोई तुम्हें प्रसन्न करने के लिए भी आता है, वह तुम्हें और दुखी कर जाएगा। वह तुम्हें मित्रवत नहीं दिखाई पड़ेगा, समझदार नहीं लगेगा, तुम्हें लगेगा कि वह तुम्हारा अपमान कर रहा है क्योंकि तुम दुखी हो और वह तुम्हें प्रसन्न करने की कोशिश कर रहा है। वह सोच रहा है कि तुम्हारा दुख व्यर्थ है। वह तुम्हें गंभीरता से नहीं ले रहा है।

और जब तुम सुखी होने को तैयार होते हो तो तुम एक अलग भाव-दशा में पहुंच जाते हो। अब तुम सारे सुख के प्रति खुल जाते हो जो संसार दे सकता है, हर ओर फूल खिलने लगते हैं, हर ध्वनि, हर कोलाहल संगीतमय हो जाता है—और हुआ कुछ भी नहीं है। पूरा संसार वही है, पर तुम बदल गए। तुम्हारा देखने का ढंग, तुम्हारा दृष्टिकोण, तुम्हारा नजरिया अलग हो गया; उस दृष्टिकोण से एक अलग ही संसार तुम्हारे सामने प्रकट होता है।

लेकिन दुख से शुरू करो, क्योंकि उसमें तुम निष्णात हो। मैं एक प्राचीन हसीद संत का एक वाक्य पढ़ रहा था, मुझे वह बहुत अच्छा लगा। वह कहता है कि ऐसे लोग होते हैं, जिनका पूरा जीवन भी अगर फूलों की सेज हो जाए तो वे तब तक खुश नहीं होंगे जब तक कि उन्हें फूलों से कोई पीड़ा न होने लगे। गुलाब उन्हें खुश नहीं कर सकते जब तक उन्हें उनसे एलर्जी न हो जाए। अगर उनसे कोई पीड़ा होने लगे केवल तभी

वे जीवित अनुभव करेंगे। वे केवल दुख, पीड़ा और रोग ही ग्रहण कर सकते हैं, कुछ और नहीं। वे दुख ही खोजते रहते हैं। वे कोई गलती, कोई दुख, कोई विषाद या अंधकार ही खोजने में लगे रहते हैं। वे मृत्यु-उन्मुख होते हैं।

मैं सैकड़ों-सैकड़ों लोगों से बहुत गहराई से, बहुत आत्मीयता से, बहुत निकट से मिला हूं। जब वे अपने दुख के बारे में बताने लगते हैं तो मुझे गंभीर होना पड़ता है, नहीं तो उन्हें लगेगा कि मैं सहानुभूतिपूर्ण नहीं हूं, यह उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। फिर वे लौटकर मेरे पास न आएंगे। मुझे उनके दुख के साथ दुखी और उनकी गंभीरता के साथ गंभीर होना पड़ता है, ताकि वे उससे बाहर निकल सकें। और यह सब उनका ही निर्माण है, उसे निर्मित करने के लिए वे हर संभव प्रयास कर रहे हैं। और जब मैं उन्हें दुख से बाहर निकालने की कोशिश करता हूं तो वे हर तरह की बाधा खड़ी करते हैं। निश्चित ही, वे नहीं जानते कि बाधा खड़ी कर रहे हैं, जान-बूझकर तो कोई भी ऐसा नहीं करेगा।

इसे ही उपनिषद अज्ञान कहते हैं। अनजाने ही तुम अपने जीवन को अस्तव्यस्त किए जाते हो, समस्याएं और संताप खड़े करते जाते हो, चाहे कुछ भी हो जाए उससे तुममें कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि तुम्हारा एक ढर्रा बन गया है। मेरे पास लोग आते हैं, कहते हैं, 'हम अकेले हैं।' इसलिए वे दुखी हैं। अगले ही क्षण कोई और आता है और कहता है कि उसे ऐसी जगह नहीं मिल रही जहां वह अकेले हो सके, इसलिए वह दुखी है। फिर कुछ ऐसे लोग हैं जो इस बात से दुखी हैं कि उनके सिर पर काम का बहुत बोझ है। और कुछ लोग हैं जो इस बात से दुखी हैं कि उनके पास करने को कुछ नहीं है। कोई विवाह करके दुखी है तो कोई विवाह न होने से दुखी है। ऐसा लगता है कि मनुष्य के लिए सुखी होना असंभव ही है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम दुखी होने के उपाय खोजने में निष्णात हो। और हमेशा तुम सफल होते हो। तो दुख से शुरू करो और सात दिन के लिए पहली बार पूरी सजगता से दुखी हो जाओ। यह प्रयोग तुम्हें पूर्णतया रूपांतरित कर देगा। एक बार तुम जान जाओ कि होशपूर्वक तुम दुखी हो सकते हो तो जब भी तुम दुखी होओगे तभी तुम जाग जाओगे। फिर तुम्हें पता होगा कि तुम क्या कर रहे हो। यह तुम्हारा ही कृत्य है। और यदि तुम अपनी मरज़ी से दुखी हो सकते हो तो सुखी क्यों नहीं हो सकते? उसमें कोई अंतर नहीं है, विधि तो वही है। फिर तुम इस विधि का प्रयोग करो।

'अपने शरीर, अस्थियों, मांस और रक्त को ब्रह्मांडीय सार से भरा हुआ अनुभव करो।'

ऐसे अनुभव करो जैसे कि परमात्मा तुममें बह रहा हो—तुम नहीं हो, बल्कि ब्रह्मांडीय तत्त्व तुममें भरा है, परमात्मा तुममें विराजमान है। जब तुम्हें भूख लगती है तो उसे भूख लगती है—फिर शरीर को भोजन देना पूजा बन जाता है। जब तुम्हें प्यास लगती है तो तुममें विराजमान ब्रह्मांडीय तत्त्व को प्यास लगती है। जब तुम्हें नींद आती है तो उसे नींद आती है, वह सोना, आराम करना चाहता है। जब तुम युवा हो तो तुममें वही युवा है। जब तुम प्रेम में पड़ते हो तो वही प्रेम में पड़ता है।

उससे भरो और पूरी तरह उससे भर जाओ। कोई भेद न करो। अच्छा या बुरा, जो भी हो रहा है वह उसे ही हो रहा है। तुम तो बस एक ओर हट जाओ, अब तुम नहीं हो, वही है। तो अच्छा या बुरा, स्वर्ग या नर्क, जो भी होता है उसको ही होता है। सारा उत्तरदायित्व उस पर आ गया, तुम तो रहे ही नहीं। यह तुम्हारा न होना, धर्म की परम अनुभूति है।

यह विधि तुम्हें पहुंचा सकती है, लेकिन तुम्हें उससे बिलकुल भर जाना होगा। और तुम्हें तो किसी प्रकार भरने का पता ही नहीं है, तुम्हें लगता ही नहीं कि तुम्हारे शरीर में खुले हुए श्वास छिद्र हैं और महान जीवन-ऊर्जा तुम्हारे शरीर में बह रही है। तुम्हें तो लगता है कि तुम ठोस हो, बंद हो।

जीवन केवल तभी घटित हो सकता है जब तुम बंद नहीं हो, बल्कि खुले और संवेदनशील हो। जीवन-ऊर्जा तुमसे बहती है, और जो भी होता है वह जीवन-ऊर्जा के साथ ही होता है, तुम्हारे साथ नहीं—तुम तो बस एक अंश हो। और जो भी सीमाएं तुमने अपने चारों ओर बना ली हैं वे वास्तविक नहीं हैं, झूठी हैं।

तुम अकेले जीवित नहीं रह सकते। यदि तुम पृथ्वी पर अकेले हो जाओ तो क्या तुम जी सकोगे? तुम अकेले नहीं जी सकते। तुम तारों के बिना नहीं जी सकते। एडिंगटन ने कहीं कहा है कि पूरा अस्तित्व मकड़ी के जाले की तरह है। मकड़ी के जाले को तुम कहीं से भी छुओ तो सारा जाला हिलता है। अस्तित्व को तुम कहीं से भी छुओ, पूरा अस्तित्व तरंगायित होता है। पूरा अस्तित्व एक है। अगर तुमने एक फूल को छुआ तो तुमने सारे ब्रह्मांड को छू लिया। तुमने अपने पड़ोसी की आंखों में झांका तो तुमने ब्रह्मांड में झांक लिया, क्योंकि पूरा अस्तित्व एक है। तुम पूर्ण को छुए बिना अंश को नहीं छू सकते और अंश पूर्ण के बिना नहीं हो सकता।

जब तुम्हें यह अनुभव होने लगेगा तो अहंकार समाप्त हो जाएगा। अहंकार तभी पैदा होता है जब तुम अंश को पूर्ण की तरह लेते हो। जब तुम्हें ठीक-ठीक पता लगना शुरू होता है कि अंश अंश है और पूर्ण पूर्ण है तो अहंकार गिर जाता है। अहंकार केवल एक नासमझी है।

और स्वयं को ब्रह्मांडीय तत्त्व से भरा हुआ अनुभव करने की यह विधि तो बहुत अद्‌भुत है। सुबह से ही, जब तुम्हें लगे कि जीवन जाग रहा है, नींद समाप्त हो चुकी है, तो यह पहला विचार होना चाहिए कि तुम नहीं परमात्मा जाग रहा है, परमात्मा नींद से वापस आ रहा है।

इसीलिए तो हिंदू जो कि संसार में धर्म के आयाम में सर्वाधिक गहरे उतरने वाली जाति रही है, सुबह अपनी पहली श्वास परमात्मा के नाम के साथ लेते हैं। अब तो यह मात्र एक औपचारिकता रह गई है और असली बात खो गई है, लेकिन इसका मूल भाव यही था कि सुबह जिस क्षण तुम जागो तो स्वयं को नहीं परमात्मा को स्मरण करो। परमात्मा तुम्हारा पहला स्मरण बन जाए, और रात जब सोने लगो तो तुम्हारा अंतिम स्मरण भी वही हो। परमात्मा का स्मरण बना रहे; वही पहला हो और वही अंतिम। और

यदि सच में ही वह सुबह सबसे पहले और रात सबसे अंतिम स्मरण हो तो दिनभर भी वह तुम्हारे साथ होगा।

रात सोते समय तुम्हें उसी से भरे हुए सोना चाहिए। तुम हैरान होओगे कि तुम्हारी नींद का गुणधर्म ही बदल गया। आज रात सोते हुए कृपया स्वयं मत सोओ, परमात्मा को ही सोने दो। जब बिस्तर बिछाओ तो परमात्मा के लिए ही बिछाओ, अतिथि आ रहा है। और जब बिस्तर में लेटो तो तुम मत लेटो, उसी को लेटने दो—अपना अतिथि की तरह सत्कार करो। और नींद आते-आते यही अनुभव करते रहो कि परमात्मा ही है, हर श्वास उससे भरी हुई है, वही हृदय में धड़क रहा है। अब वह पूरे दिन काम करके थक गया है और सोना चाहता है।

और सुबह तुम अनुभव करोगे कि रात तुम अलग ही ढंग से सोए हो। नींद का पूरा गुणधर्म ही ब्रह्मांडीय हो जाएगा, क्योंकि उससे गहरे तल पर मिलन होगा।

जब तुम स्वयं को दिव्य अनुभव करते हो तो तुम अतल गहराइयों में डूब जाते हो, क्योंकि तब कोई भय नहीं रहता। वरना तो रात जब तुम सो भी रहे होते हो तब भी गहरे जाने से डरते हो। कई लोग अनिद्रा से पीड़ित हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें कोई तनाव है, बल्कि इसलिए कि वे सोने से भयभीत हैं, क्योंकि नींद उन्हें गहरी खाई की तरह प्रतीत होती है, जिसकी कोई थाह नहीं दिखती। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो सोने से डरते हैं।

एक वृद्ध मेरे पास आए और कहने लगे कि वे भय के कारण सो नहीं सकते। मैंने पूछा, 'आप डरते क्यों हैं?'

तो वे बोले, 'मुझे डर है कि कहीं मैं सोते हुए ही मर गया तो मुझे तो पता ही न चलेगा। और मैं नींद में मरना नहीं चाहता। कम-से-कम मुझे होश तो रहे कि क्या हो रहा है।'

तुम कुछ पकड़े रहते हो जिसके कारण तुम सो नहीं सकते, लेकिन जब तुम्हें लगता है कि अब तो परमात्मा ही है तो तुम स्वीकार कर लेते हो। फिर तो अतल गहराइयां भी दिव्य हैं, फिर तुम अपनी आत्मा के मूल स्रोत में गहरे उतर जाते हो और सारा गुणधर्म बदल जाता है। और जब तुम सुबह उठते हो और तुम्हें लगता है कि नींद जा रही है तो स्मरण रखो कि परमात्मा ही उठ रहा है। तुम्हारा पूरा दिन भी बदल जाएगा।

और पूरी तरह उसी से भरे रहो। जो भी तुम करो, या न करो, परमात्मा को ही करने दो। जो हो बस उसे होने दो। खाओ, सोओ, काम करो, लेकिन सब परमात्मा को ही करने दो। केवल तभी तुम पूरी तरह उससे भर सकते हो, उससे एक हो सकते हो। और एक बार तुम्हें अनुभव हो जाए एक क्षण के लिए भी—मैं कहता हूं एक क्षण के लिए भी—कि ऐसा शिखर का क्षण आ गया कि तुम न बचे, दिव्य ने तुम्हें पूरी तरह से भर दिया, तभी तुम बुद्ध हो जाते हो। उस एक समयातीत क्षण में तुम्हें जीवन के रहस्य का ज्ञान हो जाएगा। फिर न तो कोई भय है, न कोई मृत्यु। अब तुम स्वयं जीवन

ही हो गए। फिर यह एक अनंत प्रवाह है, न इसका कोई अंत है, न आदि। तब जीवन परम आनंद हो जाता है।

मोक्ष और स्वर्ग की धारणाएं तो एकदम बचकानी हैं, क्योंकि वे कोई भौगोलिक स्थान नहीं हैं। वे तो उस अवस्था के लिए प्रतीक हैं जब व्यक्ति ब्रह्मांड में डूब जाता है अथवा ब्रह्मांड को स्वयं में डूब जाने देता है; जब दो एक हो जाते हैं, जब मन और पदार्थ दोनों ही अभिव्यक्तियां तीसरे पर, मूल स्रोत पर लौट आती हैं। सारी खोज ही उसके लिए है। यही एकमात्र खोज है, और जब तक तुम इसको न पा लो, तृप्त नहीं होओगे। इसका कोई विकल्प नहीं हो सकता। चाहे जन्मों-जन्मों तक तुम भटकते रहो, पर जब तक यह न पा लो, तुम्हारी खोज पूरी नहीं होगी। तुम विश्राम नहीं कर सकते।

यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। और इसमें कोई खतरा नहीं है, इसको तुम बिना किसी गुरु के कर सकते हो। इसे स्मरण रखो—वे सब विधियां जो शरीर से शुरू होती हैं, बिना गुरु के खतरनाक हो सकती हैं। क्योंकि शरीर बहुत-बहुत जटिल संरचना है। शरीर एक जटिल यंत्र है और इसके साथ कुछ भी शुरू करना खतरनाक हो सकता है, जब तक कि कोई ऐसा व्यक्ति न हो जो कि जानता हो कि क्या हो रहा है। हो सकता है तुम यंत्र को खराब कर दो और उसे ठीक करना कठिन हो जाए।

वे सब विधियां जो सीधे मन से शुरू होती हैं, कल्पना पर आधारित होती हैं और खतरनाक नहीं होतीं, क्योंकि उनमें शरीर का बिलकुल भी सहयोग नहीं होता। वे बिना किसी सदगुरु के भी की जा सकती हैं। निश्चित ही, यह थोड़ा कठिन होगा, क्योंकि तुममें आत्मविश्वास नहीं है। सदगुरु कुछ करता नहीं, लेकिन एक उत्प्रेरक माध्यम, कैटालिस्ट बन जाता है। वह कुछ भी नहीं करता—और सच में तो कुछ किया भी नहीं जा सकता—लेकिन मात्र उसकी उपस्थिति से ही तुम्हारा आत्मविश्वास और श्रद्धा जग जाती है। और इससे मदद मिलती है। केवल इस भाव से ही कि गुरु साथ है, तुममें भरोसा आ जाता है। क्योंकि वह साथ है तो तुम अज्ञात में प्रवेश कर सकते हो।

लेकिन शारीरिक विधियों में गुरु नितांत आवश्यक है, क्योंकि शरीर एक यंत्र है और उसके साथ तुम ऐसा कुछ कर ले सकते हो जिसे अनकिया नहीं किया जा सकता। तुम स्वयं को नुकसान पहुंचा सकते हो।

मेरे पास एक युवक आया, वह शीर्षासन कर रहा था, घंटों अपने सिर पर खड़ा रहता था। शुरू-शुरू में तो सब बिलकुल ठीक था और सारे दिन वह विश्रांति और शीतलता अनुभव करता था। लेकिन फिर मुसीबत होने लगी, क्योंकि जब शीतलता समाप्त होती तो सारे शरीर में गर्मी लगने लगती, जो उसे बेचैन कर देती। वह करीब-करीब पागल-सा हो गया। और फिर उसने सोचा कि शीर्षासन से शुरू-शुरू में उसे इतनी शीतलता, इतनी शांति, इतना आराम मिला था तो वह और शीर्षासन करने लगा। उसने सोचा कि और शीर्षासन से उसे मदद मिलेगी, जब कि शीर्षासन ही बीमारी की जड़ थी।

मस्तिष्क के यंत्र में केवल एक निश्चित मात्रा में ही रक्त-संचार की जरूरत होती

है। यदि रक्त-संचार कम हो तो तुम्हें कठिनाई होगी, यदि रक्त-संचार अधिक हो तो कठिनाई होगी। और हर एक व्यक्ति के लिए यह मात्रा अलग होती है। यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है। इसीलिए तो तुम तकिए के बिना नहीं सो सकते। यदि तुम तकिए के बिना सोने की कोशिश करो तो या तो सो ही नहीं पाओगे या कम सो पाओगे, क्योंकि सिर की ओर अधिक रक्त दौड़ेगा। तकिए तुम्हें मदद देते हैं। तुम्हारा सिर ऊंचा हो जाता है, इसलिए कम रक्त सिर की ओर दौड़ता है, इससे नींद आ जाती है। यदि अधिक रक्त दौड़ता है तो मस्तिष्क जागा रहता है, विश्राम नहीं कर पाता।

यदि तुम बहुत अधिक शीर्षासन करो तो हो सकता है कि तुम्हारी नींद पूरी तरह उड़ जाए, हो सकता है कि तुम बिलकुल भी सो न पाओ। फिर और भी खतरे हैं। अभी खोजों से पता लगा है कि अधिक से अधिक सात दिन तक तुम बिना सोए रह सकते हो। सात दिन के बाद तुम पागल हो जाओगे, क्योंकि मस्तिष्क की बहुत सूक्ष्म कोशिकाएं हैं, जो कि टूट जाएंगी, फिर आसानी से वे जुड़ नहीं सकतीं। जब तुम शीर्षासन में सिर के बल खड़े होते हो तो सारा का सारा रक्त सिर की ओर दौड़ने लगता है। मैंने ऐसा एक भी शीर्षासन करने वाला नहीं देखा जो किसी भी तरह से प्रतिभाशाली हो। यदि कोई व्यक्ति बहुत शीर्षासन करता है तो वह जड़बुद्धि हो जाएगा, क्योंकि मस्तिष्क की सूक्ष्म कोशिकाएं नष्ट हो जाएंगी। अत्यधिक रक्त-संचार के कारण वे कोमल कोशिकाएं नहीं बच सकतीं।

तो यह सब एक गुरु ही निर्धारित कर सकता है, जो जानता है कि कौन-सी विधि कितना समय तुम्हारे लिए सहयोगी होगी, कुछ सेकेंड या कुछ मिनट। और यह तो केवल एक उदाहरण है। सारी शारीरिक मुद्राएं, आसन, विधियां, गुरु की देख-रेख में ही करनी चाहिए। कभी भी उन्हें अकेले नहीं करना चाहिए, क्योंकि तुम अपने शरीर को नहीं जानते। तुम्हारा शरीर इतनी बड़ी घटना है कि तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम्हारे छोटे से मस्तिष्क में सात करोड़ तंतु हैं। वे सब तंतु आपस में एक-दूसरे से संबंधित हैं, जुड़े हुए हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि उनका आपसी संबंध इस ब्रह्मांड जितना ही जटिल है।

प्राचीन हिंदू ऋषियों ने कहा है कि पूरा ब्रह्मांड लघु रूप से मस्तिष्क में विराजमान है। जगत की सारी जटिलता लघु रूप से मस्तिष्क में है। यदि इन सारे तंतुओं का संबंध तुम्हें समझ आ जाए तो पूरे जगत की जटिलता समझ में आ जाए। न तो तुम्हें किन्हीं तंतुओं का पता है, न ही उनके किसी आपसी संबंधों का। और अच्छा है कि तुम्हें पता नहीं है, नहीं तो इतने महत कार्य को चलते देख तुम तो पागल ही हो जाओ। यह सब केवल बिना पता लगे ही हो सकता है।

रक्त दौड़ता रहता है, लेकिन तुम्हें पता नहीं लगता। केवल तीन शताब्दी पहले ही यह पता चल पाया कि शरीर में रक्त दौड़ता है। इससे पहले ऐसा माना जाता था कि रक्त दौड़ता नहीं, भरा हुआ है। रक्त-संचार तो बहुत नई धारणा है। और लाखों वर्षों से मनुष्य है, लेकिन किसी को नहीं लगा कि रक्त दौड़ता है। तुम इसे महसूस नहीं

कर सकते। भीतर बहुत गति से बहुत-सा काम चल रहा है। तुम्हारा शरीर एक बहुत बड़ी और बहुत नाजुक फैक्ट्री है। शरीर हर समय स्वयं को ताजा और नया करने में लगा है। यदि तुम कोई उपद्रव न खड़ा करो तो सत्तर वर्ष तक यह आराम से चलेगा। अभी तक हम कोई ऐसा यंत्र नहीं बना पाए हैं जो सत्तर वर्ष तक अपनी देख-भाल कर सके।

तो जब भी तुम अपने शरीर पर कोई कार्य शुरू करो तो इस बात का स्मरण रखो कि ऐसे गुरु के पास होना जरूरी है जो जानता हो कि वह तुम्हें क्या करवा रहा है। वरना कुछ मत करो। लेकिन कल्पना में तो कोई कठिनाई नहीं है। यह बड़ी सरल बात है। इसे तुम शुरू कर सकते हो।

स्तनों पर अवधान को केंद्रित करो

दूसरी विधि :

95. अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं।

इससे पहले कि मैं इस विधि में प्रवेश करूं, कुछ महत्त्वपूर्ण बातें।

शिव पार्वती से, देवी से, अपनी संगिनी से बात कर रहे हैं, इसलिए यह विधि विशेषतः स्त्रियों के लिए है। कुछ बातें समझने जैसी हैं। एक, पुरुष देह और स्त्री देह एक जैसी हैं, लेकिन फिर भी उनमें कई भेद हैं। और उनका भेद एक-दूसरे का परिपूरक है। पुरुष देह में जो नकारात्मक है, स्त्री देह में वही सकारात्मक होगा; और स्त्री देह में जो सकारात्मक है, वह पुरुष देह में नकारात्मक होगा।

यही कारण है कि जब वे दोनों गहन संभोग में मिलते हैं तो एक इकाई बन जाते हैं। ऋणात्मक धनात्मक से मिलता है, धनात्मक ऋणात्मक से मिलता है, और दोनों एक हो जाते हैं, एक विद्युत वर्तुल बन जाते हैं। इसीलिए तो यौन में इतना आकर्षण है। यह आकर्षण इसलिए नहीं है कि मनुष्य पापी है, कि आधुनिक मनुष्य बहुत स्वच्छंद हो गया है, कि अश्लील फिल्में और साहित्य इसका कारण हैं। इसका कारण बहुत गहरा है, जागतिक है।

यह आकर्षण इसलिए है क्योंकि पुरुष और स्त्री दोनों ही अधूरे हैं, और जो भी अधूरा है उसके पार जाना, पूर्ण होना अस्तित्व की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पूर्णता की ओर गति करने की प्रवृत्ति परम नियमों में से एक है। जहां भी तुम्हें लगता है कि कुछ कमी है, तुम उसे भरना चाहते हो, पूरा करना चाहते हो। प्रकृति किसी भी तरह के अधूरेपन को नहीं पसंद करती। पुरुष भी अधूरा है, स्त्री भी अधूरी है। और वे पूर्णता का केवल एक ही क्षण पा सकते हैं जब उनका विद्युत वर्तुल एक हो जाए, जब दोनों विलीन हो जाएं।

इसीलिए तो सभी भाषाओं में प्रेम और प्रार्थना दोनों बड़े महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। प्रेम

में तुम किसी व्यक्ति के साथ एक हो जाते हो और प्रार्थना में तुम समष्टि के साथ एक हो जाते हो। जहां तक आंतरिक प्रक्रिया का सवाल है, प्रेम और प्रार्थना समान हैं।

पुरुष और स्त्री देह समान हैं, लेकिन उनके ऋणात्मक और धनात्मक ध्रुव भिन्न हैं। जब बच्चा मां के गर्भ में होता है तो मैं सोचता हूं, कम से कम छः सप्ताह के लिए वह मध्य स्थिति में रहता है—न तो वह पुरुष होता है न स्त्री होता है। उसका एक ओर झुकाव जरूर होता है, लेकिन फिर भी शरीर अभी मध्य में ही होता है। फिर छः सप्ताह बाद शरीर या तो स्त्री का हो जाता है या पुरुष का। यदि शरीर स्त्री का है तो काम-ऊर्जा का ध्रुव स्तनों के निकट होगा, वह उसका धनात्मक ध्रुव होगा, क्योंकि स्त्री की योनि ऋणात्मक ध्रुव है। यदि बच्चा नर है तो काम-केंद्र, शिश्न, उसका धनात्मक ध्रुव होगा और स्तन ऋणात्मक ध्रुव होंगे। पुरुष के शरीर में भी स्तन होते हैं—सारा का सारा यंत्र वही है—लेकिन उसके स्तन ऋणात्मक होते हैं। स्त्री के शरीर में शिश्न का प्रतिरूप क्लाइटोरिस होता है, लेकिन वह निष्क्रिय है। पुरुष के स्तनों की भांति ही स्त्री का क्लाइटोरिस भी निष्क्रिय है।

शरीर-शास्त्री यह प्रश्न उठाते रहे हैं कि पुरुष के शरीर में स्तन क्यों होते हैं, जब कि उनकी कोई आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती? क्योंकि पुरुष को बच्चे को दूध तो पिलाना नहीं है, फिर उनकी क्या आवश्यकता है? वे ऋणात्मक ध्रुव हैं। इसीलिए तो पुरुष के मन में स्त्री के स्तनों की ओर इतना आकर्षण है, वे धनात्मक ध्रुव हैं। इतने काव्य, साहित्य, चित्र, मूर्तियां, सब कुछ स्त्री के स्तनों से जुड़े हैं। ऐसा लगता है जैसे पुरुष को स्त्री के पूरे शरीर की अपेक्षा उसके स्तनों में अधिक रस है। और यह कोई नई बात नहीं है। गुफाओं में मिले प्राचीनतम चित्र भी स्तनों के ही हैं, स्तन उनमें महत्त्वपूर्ण हैं, बाकी का सारा शरीर ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे स्तनों के चारों ओर बनाया गया हो। स्तन आधारभूत हैं।

यह विधि स्त्रियों के लिए है। क्योंकि स्तन उनके धनात्मक ध्रुव हैं, और जहां तक योनि का प्रश्न है वह करीब-करीब संवेदनरहित है। स्तन उनके सबसे संवेदनशील अंग हैं। और स्त्री देह की सारी सृजन क्षमता स्तनों के आस-पास ही है।

यही कारण है कि हिंदू कहते रहे हैं कि जब तक स्त्री मां नहीं बन जाती, वह तृप्त नहीं होती। पुरुष के लिए यह बात सत्य नहीं है, कोई नहीं कहेगा कि पुरुष जब तक पिता न बन जाए तृप्त नहीं होगा। पिता होना तो मात्र एक संयोग है। कोई पिता हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। यह कोई बहुत आधारभूत सवाल नहीं है, एक पुरुष बिना पिता बने रह सकता है और उसका कुछ नहीं खोएगा। लेकिन बिना मां बने स्त्री कुछ खो देगी, क्योंकि उसकी पूरी सृजनात्मकता, उसकी पूरी प्रक्रिया तभी जागती है जब वह मां बन जाती है। जब उसके स्तन उसके अस्तित्व के केंद्र बन जाते हैं तब वह पूर्ण होती है। और वह स्तनों तक नहीं पहुंच सकती यदि उसे पुकारने वाला कोई बच्चा न हो।

तो पुरुष स्त्रियों से विवाह करते हैं ताकि उन्हें पत्नियां मिल सकें और स्त्रियां पुरुषों

से विवाह करती हैं ताकि वे मां बन सकें, इसलिए नहीं कि उन्हें पति मिल सकें। उनका पूरा का पूरा मौलिक रुझान ही एक बच्चा पाने में है जो उनके स्त्रीत्व को पुकारे।

तो वास्तव में सभी पति भयभीत रहते हैं, क्योंकि जैसे ही बच्चा पैदा होता है वे स्त्री के आकर्षण की परिधि पर आ जाते हैं, बच्चा केंद्र हो जाता है। इसलिए पिता हमेशा ईर्ष्या करते हैं, क्योंकि बच्चा बीच में आ जाता है। और स्त्री अब बच्चे के पिता की अपेक्षा बच्चे में अधिक उत्सुक हो जाती है। पुरुष गौण हो जाता है—जीने के लिए उपयोगी, परंतु अनावश्यक। अब मूलभूत आवश्यकता पूर्ण हो गई।

पश्चिम में बच्चों को सीधे स्तन से दूध न पिलाने का फैशन हो गया है। यह बहुत खतरनाक है, क्योंकि इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री कभी अपनी सृजनात्मकता के केंद्र पर नहीं पहुंच सकेगी। जब एक पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है तो वह उसके स्तनों को प्रेम कर सकता है, लेकिन उन्हें मां नहीं कह सकता। केवल एक छोटा बच्चा ही उन्हें मां कह सकता है। या फिर प्रेम इतना गहन हो कि पति भी बच्चे की तरह हो जाए तो यह संभव हो सकता है। तब स्त्री पूरी तरह भूल जाती है कि वह केवल एक संगिनी है, वह अपने प्रेमी की मां बन जाती है। तब बच्चे की आवश्यकता नहीं रह जाती, तब वह मां बन सकती है और स्तनों के निकट उसके अस्तित्व का केंद्र सक्रिय हो सकता है।

यह विधि कहती है, 'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं।'

स्त्रैण अस्तित्व की पूरी सृजनात्मकता मातृत्व पर ही आधारित है। इसीलिए तो स्त्रियां अन्य किसी तरह के सृजन में इतनी उत्सुक नहीं होतीं। पुरुष सर्जक हैं, स्त्रियां सर्जक नहीं हैं। न उसने चित्र बनाए हैं, न महान काव्य रचे हैं, न कोई बड़ा ग्रंथ लिखा है, न कोई बड़े धर्म बनाए हैं, वास्तव में उसने कुछ नहीं किया है। लेकिन पुरुष सृजन किए चला जाता है, वह पागल है। वह आविष्कार कर रहा है, सृजन कर रहा है, भवन निर्माण कर रहा है।

तंत्र कहता है, ऐसा इसलिए है क्योंकि पुरुष नैसर्गिक रूप से सर्जक नहीं है, इसलिए वह अतृप्त और तनाव में रहता है। वह मां बनना चाहता है, वह सर्जक बनना चाहता है। तो वह काव्य का सृजन करता है, वह पुस्तकों का सृजन करता है, वह कई चीजों का सृजन करता है, एक तरह से वह उनकी 'मां' हो जाएगा। लेकिन स्त्री तनाव-रहित होती है। यदि वह मां बन सके तो तृप्त हो जाती है, फिर किसी और चीज में उत्सुक नहीं रहती।

स्त्री कुछ और करने की तभी सोचती है यदि वह मां बन सके, प्रेम न कर सके, अपनी सृजनात्मकता के शिखर पर न पहुंच पाए। तो वास्तव में असृजनात्मक स्त्रियां बन जाती हैं कवि-चित्रकार, लेकिन वे सदा दूसरी दर्जे की रहेंगी, कभी प्रथम कोटि की नहीं हो पाएंगी। स्त्रियों के लिए काव्य और चित्रों का सृजन उतना ही असंभव है जितना पुरुष के लिए बच्चे का सृजन है। वह मां नहीं बन सकता, यह जैविकीय तल पर असंभव

है। और इस कमी को वह अनुभव करता है। इस कमी को पूरा करने के लिए वह कई कार्य करता है। लेकिन कभी भी कोई महान से महान सर्जक भी इतना परितृप्त नहीं हो पाया, या कभी कोई विरला ही इतना परितृप्त हो सकता है, जितना कि एक स्त्री मां बनकर हो जाती है।

एक बुद्ध पुरुष परितृप्त होता है, क्योंकि वह अपना ही सृजन कर लेता है। वह द्विज हो जाता है, वह स्वयं को दूसरा जन्म दे देता है, नया मनुष्य हो जाता है। अब वह अपनी मां भी हो जाता है, पिता भी हो जाता है। वह पूर्णतया परितृप्त अनुभव करता है।

एक स्त्री अधिक सरलता से तृप्ति अनुभव कर सकती है। उसकी सृजनात्मकता स्तनों के आस-पास ही होती है। इसीलिए तो विश्वभर में स्त्रियां अपने स्तनों के बारे में इतनी चिंतित रहती हैं जैसे कि उनका पूरा अस्तित्व ही वहीं केंद्रित हो। वे सदा अपने स्तनों के बारे में इतनी सजग होती हैं; दिखाएं चाहें उघाड़ें, पर उनके विषय में चिंतित रहती हैं। स्तन उनके सबसे गुप्त अंग हैं, उनका खजाना हैं, उनके अस्तित्व के, मातृत्व के, सृजनात्मकता के केंद्र हैं।

शिव कहते हैं, 'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म धारण कर रहे हैं।'

स्तनों पर अवधान को एकाग्र करो, उन्हीं के साथ एक हो जाओ, बाकी सारे शरीर को भूल जाओ। अपनी पूरी चेतना को स्तनों पर ले जाओ। और कई घटनाएं तुम्हारे साथ घटेंगी। यदि तुम ऐसा कर सको, यदि पूरी तरह से स्तनों पर अपने अवधान को केंद्रित कर सको, तो सारा शरीर भार-मुक्त हो जाएगा और एक गहन माधुर्य तुम्हें घेर लेगा। माधुर्य की एक गहन अनुभूति तुम्हारे भीतर-बाहर, चारों ओर धड़केगी।

जो भी विधियां विकसित की गई हैं वे करीब-करीब सब पुरुष द्वारा ही विकसित की गई हैं। तो उनमें ऐसे ही केंद्रों का उल्लेख होता है जो पुरुष के लिए सरल होते हैं। जहां तक मैं जानता हूं, केवल शिव ने ही कुछ ऐसी विधियां दी हैं जो मौलिक रूप से स्त्रियों के लिए हैं। कोई पुरुष इस विधि को नहीं कर सकता। वास्तव में यदि कोई पुरुष अपने स्तनों पर अवधान को केंद्रित करने लगे तो उलझन में पड़ जाएगा।

करके देखो। पांच मिनट में ही तुम्हारा पसीना बहने लगेगा और तुम तनाव से भर जाओगे, क्योंकि पुरुष के स्तन ऋणात्मक हैं, वे तुम्हें नकारात्मकता ही देंगे। तुम्हें कुछ गड़बड़, कुछ अटपटापन महसूस होगा, जैसे शरीर में कोई गड़बड़ हो गई हो।

लेकिन स्त्री के स्तन धनात्मक हैं। यदि स्त्रियां स्तनों के पास अवधान केंद्रित करें तो बहुत आनंदित अनुभव करेंगी, एक माधुर्य उनके प्राणों पर छा जाएगा और उनका शरीर गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो जाएगा। उन्हें इतना हलकापन महसूस होगा जैसे कि वे उड़ सकती हों। और इस एकाग्रता से बहुत से परिवर्तन होंगे—तुम अधिक मातृत्व-भाव अनुभव करोगी। चाहे तुम मां न बनो, फिर भी मातृत्वमय बन जाओगी। हर किसी से तुम्हारा संबंध ममतामय हो जाएगा, अधिक करुणा, अधिक प्रेम तुमसे बहेगा।

लेकिन स्तनों पर अवधान की यह एकाग्रता बहुत विश्रांत होकर करनी चाहिए, तनाव से भरकर नहीं। यदि तुम तनाव से भर गईं तो तुम्हारे और स्तनों के बीच एक विभाजन हो जाएगा। तो विश्रांत होकर उन्हीं में घुल जाओ और अनुभव करो कि तुम नहीं केवल स्तन ही बचे हैं।

यदि पुरुष को यही करना हो तो स्तनों के साथ नहीं काम-केंद्र के साथ करना पड़ेगा। इसीलिए हर कुंडलिनी योग में पहले चक्र का महत्त्व है। पुरुष को अपना अवधान जननेंद्रिय की जड़ पर केंद्रित करना होता है, उसकी सृजनात्मकता, उसकी विधायकता वहां पर है। और इसे सदा स्मरण रखो—कभी भी किसी नकारात्मक चीज पर अवधान को केंद्रित मत करो, क्योंकि सभी नकारात्मक चीजें उसके साथ चली आती हैं। ऐसे ही विधायक के साथ सभी कुछ विधायक चला आता है।

जब स्त्री और पुरुष के दो ध्रुव मिलते हैं तो पुरुष का ऊपर का भाग ऋणात्मक और नीचे का भाग धनात्मक होता है, जब कि स्त्री में नीचे का भाग ऋणात्मक और ऊपर का भाग धनात्मक होता है। ऋणात्मक और धनात्मक के ये दो ध्रुव मिलते हैं तो एक वर्तुल निर्मित हो जाता है। वह वर्तुल बहुत आनंदपूर्ण है, परंतु यह कोई साधारण घटना नहीं है। साधारणतया काम-कृत्य में यह वर्तुल नहीं बनता। इसीलिए तो तुम काम के प्रति जितने आकर्षित होते हो, उतने ही उससे विकर्षित भी होते हो। उसके लिए तुम कितनी कामना करते हो, कितनी तुम्हें उसकी तलाश होती है, पर जब तुम्हें मिलता है तो तुम निराश हो जाते हो, कुछ भी होता नहीं।

यह वर्तुल केवल तभी संभव है जब दोनों शरीर शांत हों और बिना किसी भय या प्रतिरोध के एक-दूसरे के लिए खुले हों। तब मिलन इतना पूर्ण होता है कि विद्युत धाराएं एक-दूसरे में मिलकर एक वर्तुल बन सकती हैं।

फिर एक बड़ी अद्‌भुत घटना घटती है—तंत्र में इसका उल्लेख है, लेकिन तुमने शायद इसके बारे में सुना भी न हो—यह घटना बड़ी अद्‌भुत है। जब दो प्रेमी वास्तव में मिलते हैं और एक वर्तुल बन जाते हैं तो एक बिजली की कौंध जैसी घटना घटती है। एक क्षण के लिए प्रेमी प्रेयसी बन जाता है और प्रेयसी प्रेमी बन जाती है—और अगले ही क्षण प्रेमी फिर प्रेमी बन जाता है और प्रेयसी फिर प्रेयसी बन जाती है। एक क्षण के लिए पुरुष स्त्री हो जाता है और स्त्री पुरुष हो जाती है, क्योंकि ऊर्जा गति कर रही है और एक वर्तुल बन गया है।

तो ऐसा होगा कि कुछ मिनट के लिए पुरुष सक्रिय होगा, और फिर वह विश्राम करेगा और स्त्री सक्रिय हो जाएगी। इसका अर्थ है कि अब पुरुष ऊर्जा स्त्री के शरीर में चली गई, और जब स्त्री सक्रिय होगी तो पुरुष निष्क्रिय रहेगा। और ऐसा चलता रहेगा। साधारणतया तुम स्त्री और पुरुष हो। गहन प्रेम में, गहन संभोग में कुछ क्षण के लिए पुरुष स्त्री हो जाएगा और स्त्री पुरुष हो जाएगी। और यह अनुभव होगा, निश्चित ही अनुभव होगा कि निष्क्रियता बदल रही है।

जीवन में एक लय है, हर चीज में एक लय है। जब तुम श्वास लेते हो तो श्वास

भीतर जाती है, फिर कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है, उसमें कोई गति नहीं होती। फिर चलती है, बाहर आती है, और फिर रुक जाती है, एक अंतराल पैदा होता है। गति, रुकाव, गति। जब तुम्हारा हृदय धड़कता है तो एक धड़कन होती है, फिर अंतराल है, फिर धड़कता है, फिर अंतराल है। धड़कन का अर्थ है सक्रियता, अंतराल का अर्थ है निष्क्रियता। धड़कन का अर्थ है पुरुष, अंतराल का अर्थ है स्त्री।

जीवन एक लय है। जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं तो एक वर्तुल बन जाता है— दोनों के लिए ही अंतराल होंगे। तुम एक स्त्री हो तो अचानक एक अंतराल होगा और तुम स्त्री नहीं रहोगी पुरुष बन जाओगी। तुम स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री बनती रहोगी।

जब यह अंतराल तुम्हें महसूस होगा तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम एक वर्तुल बन गए हो। शिव के प्रतीक शिवलिंग में इसी वर्तुल को दिखाया गया है। यह वर्तुल देवी की योनि और शिव के लिंग से दिखाया गया है। यह एक वर्तुल है। यह दो उच्च तल पर ऊर्जाओं के मिलन की शिखर घटना है।

यह विधि अच्छी रहेगी—'अनुभव करो कि सृजन के शुद्ध गुण तुम्हारे स्तनों में प्रवेश करके सूक्ष्म रूप धारण कर रहे हैं।'

विश्रामपूर्ण हो जाओ। स्तनों में प्रवेश करो और अपने स्तनों को ही अपना पूरा अस्तित्व हो जाने दो। पूरे शरीर को स्तनों के होने के लिए मात्र एक परिस्थिति बन जाने दो, तुम्हारा पूरा शरीर गौण हो जाए, स्तन महत्त्वपूर्ण हो जाएं। और तुम उनमें ही विश्राम करो, प्रवेश करो। तब तुम्हारी सृजनात्मकता जगेगी। स्त्रैण सृजनात्मकता तभी जगती है जब स्तन सक्रिय हो जाते हैं। स्तनों में डूब जाओ, और तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारी सृजनात्मकता जाग रही है।

सृजनात्मकता के जागने का क्या अर्थ है? तुम्हें बहुत कुछ दिखने लगेगा। बुद्ध और महावीर ने अपने पूर्व जन्मों में कहा था कि जब वे पैदा होंगे तो उनकी माताओं को कुछ विशेष दृश्य, कुछ विशेष स्वप्न दिखाई पड़ेंगे। उन कुछ विशेष स्वप्नों के कारण ही बताया जा सकता था कि बुद्ध पैदा होने वाले हैं। सोलह स्वप्न एक-दूसरे का अनुसरण करते हुए आएंगे।

इस पर मैं प्रयोग करता रहा हूं। यदि कोई स्त्री वास्तव में ही अपने स्तनों में विलीन हो जाती है तो एक विशेष क्रम में कुछ विशेष दृश्य दिखाई देंगे। कुछ चीजें उसे दिखाई पड़ने लगेंगी। अलग-अलग स्त्रियों के लिए अलग-अलग चीजें होंगी, लेकिन कुछ मैं तुम्हें बताता हूं।

एक तो कोई आकृति, मानव आकृति दिखाई पड़ेगी। और यदि स्त्री बच्चे को जन्म देने वाली है तो बच्चे की आकृति नजर आएगी। यदि स्तनों में स्त्री पूरी तरह विलीन हो गई है तो उसे यह भी दिखाई देगा कि किस तरह के बच्चे को वह जन्म देने वाली है। उसकी आकृति नजर आएगी। यदि वह गर्भवती है तो आकृति और भी स्पष्ट होगी। यदि अभी वह मां नहीं बनने वाली है और गर्भवती नहीं है, तो उसके आस-पास कोई अज्ञात सुगंध छाने लगेगी। स्तन ऐसी मधुर सुगंधों के स्रोत बन सकते हैं जो कि इस

संसार की नहीं हैं, जो रसायन से नहीं बनाई जा सकतीं। मधुर स्वर, लयबद्ध ध्वनियां सुनाई देंगी। सृजन के सारे आयाम बहुत से नए रूपों में प्रकट हो सकते हैं। महान कवियों और चित्रकारों को जो घटित हुआ है वह उस स्त्री को हो सकता है, यदि वह अपने स्तनों में डूब जाए।

और यह इतना वास्तविक होगा कि उसके पूरे व्यक्तित्व को बदल देगा। वह स्त्री और ही हो जाएगी। और यदि ये अनुभव उसे होते रहते हैं तो धीरे-धीरे वे खो जाएंगे और एक क्षण आएगा जब शून्यता घटित होगी। यह शून्यता ध्यान की परम स्थिति है।

तो इसको स्मरण रखो—यदि तुम स्त्री हो तो अपने शिव-नेत्र पर एकाग्रता मत करो। तुम्हारे लिए स्तनों पर, ठीक दोनों स्तनों के चुचुओं पर अवधान को केंद्रित करना बेहतर रहेगा। और दूसरी बात, एक ही स्तन पर अवधान केंद्रित मत करो, एक साथ दोनों स्तनों पर करो। यदि तुम एक ही स्तन पर अवधान केंद्रित करोगी तो तत्क्षण तुम्हारा शरीर व्यथित हो जाएगा। एक ही स्तन पर एकाग्रता होने पर पक्षाघात भी हो सकता है।

तो दोनों पर एक साथ ही अवधान को केंद्रित करो, उनमें विलीन हो जाओ; और जो हो, उसे होने दो। बस साक्षी बनी रहो और किसी भी लय से मत जुड़ो, क्योंकि हर लय बड़ी सुंदर, स्वर्गतुल्य मालूम होगी। उनसे मत जुड़ो। उनको देखती रहो और साक्षी बनी रहो। एक क्षण आएगा जब वे समाप्त होने लगेंगी और एक शून्यता घटित होती है, कुछ नहीं बचता। बस खुला आकाश रह जाता है और स्तन खो जाते हैं। तब तुम बोधिवृक्ष के नीचे हो।

आज इतना ही।

68

लक्ष्य की धारणा ही बंधन है

प्रश्न-सार

1. *क्या कल्पना भी कामना नहीं है?*
2. *कल आपने कहा कि मन सत्य है, लेकिन फिर सभी गुरु मन को बाधा क्यों कहते हैं?*
3. *केंद्र के रूपांतरण पर इतना जोर क्यों है?*
4. *स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग विधियां क्यों हैं?*

पहला प्रश्न :

ऐसा कहा गया है कि कोई भी कामना, चाहे सांसारिक हो अथवा धार्मिक, मुक्ति की ओर नहीं ले जा सकती। लेकिन सुख और आनंद की विधायक कल्पना भी तो एक तरह की कामना ही है। इसलिए क्या यह सत्य नहीं है कि कल्पना भी कामना है अतः तनाव पैदा करती है?

कल्पना कामना नहीं है, मात्र एक खेल है। कामना तो बिलकुल अलग बात है। लेकिन तुम अपनी कल्पना को कामना पर आधारित कर सकते हो, तुम अपनी कामना को कल्पना द्वारा प्रक्षेपित कर सकते हो, तब वह बंधन हो जाएगी। यदि तुम कल्पना के साथ बिना किसी कामना के खेलते हो—न कहीं पहुंचने के लिए, न कुछ पाने के लिए, बस एक खेल की तरह उसे लेते हो—तब तुम्हारी कल्पना न कामना होती है, न बंधन।

कल्पना की ये विधियां केवल तभी सहयोगी हो सकती हैं यदि तुम उनके साथ खेलो। यदि तुम गंभीर हो गए तो सारी बात ही चूक गए।

लेकिन प्रश्न संगत है। क्योंकि वास्तव में, तुम सोच ही नहीं सकते कि बिना कामना के कुछ किया जा सकता है। तुम तो अगर खेलते भी हो तो कहीं पहुंचने के लिए, कुछ पाने के लिए, जीतने के लिए। यदि भविष्य में कुछ भी मिलने वाला न हो तो तुम्हारा सारा रस खो जाएगा। तुम कहोगे, 'फिर खेलें ही क्यों?'

हम इतने परिणाम-उन्मुख हैं कि हर चीज को साधन बना लेते हैं। इसे स्मरण रखना चाहिए; ध्यान तो परम लीला है, कुछ पाने के लिए, साधन नहीं है, ध्यान बुद्धत्व पाने के लिए साधन नहीं है। ध्यान से बुद्धत्व घटता है, लेकिन ध्यान उसके लिए साधन नहीं है।

न ही ध्यान मोक्ष के लिए साधन है। मोक्ष उससे घटता है, लेकिन ध्यान उसके लिए साधन नहीं है। तुम ध्यान का किसी फल की प्राप्ति के लिए उपयोग नहीं कर सकते।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि जिन्होंने भी जाना है, वे सदियों से ध्यान के लिए ही ध्यान करने पर जोर देते रहे हैं। उससे कुछ पाने की कामना मत करो, उसका आनंद लो, उससे बाहर कोई लक्ष्य मत बनाओ—और बुद्धत्व उसका परिणाम होगा। स्मरण रखो, परिणाम, फल नहीं। ध्यान कोई कारण नहीं, लेकिन ध्यान में तुम गहरे डूबते हो तो बुद्धत्व घट जाता है। असल में, इस खेल में गहरे डूब जाना ही बुद्धत्व है।

लेकिन मन हर चीज को कार्य बना लेता है। मन कहता है, कुछ करो क्योंकि उससे यह लाभ होगा। काल्पनिक या वास्तविक, मन को कुछ चाहिए जिससे सहारा मिल सके, जिसे मन प्रक्षेपित कर सके। केवल तभी मन चल सकता है। मन भविष्य के लिए वर्तमान में काम करता है। भविष्य चाहे काल्पनिक ही हो, चाहे कभी आए ही न, लेकिन मन केवल भविष्य की आशा में ही काम कर सकता है। भविष्य के लिए वर्तमान में काम करने को ही कामना कहते हैं। साधन अभी और यहीं है, साध्य बहुत दूर है। साधन और साध्य का यह विभाजन, यह दूरी ही कामना है।

यदि तुम खेल रहे हो तो वह कोई कामना नहीं है, क्योंकि उसमें साधन भी यहीं है और साध्य भी यहीं है। खेलते समय कोई भविष्य नहीं होता; तुम उसमें इतने लीन हो जाते हो कि भविष्य समाप्त हो जाता है।

खेलते हुए बच्चों को देखो। उनके चेहरों को, उनकी आंखों को देखो। इस समय वे शाश्वत में हैं। वे सुखी हैं, क्योंकि वे खेल रहे हैं। सुख कोई बाद में नहीं आएगा, सुख अभी और यहीं है। क्षण-क्षण वे सुखी हैं। इसलिए नहीं कि बाद में कोई महान घटना घटने वाली है, वह घट ही रही है। इस समय वे शाश्वत में हैं।

लेकिन उनके मन अभी विकसित नहीं हैं। हम उन्हें विकसित होने को बाध्य करेंगे, क्योंकि यह खेल संसार में कोई बहुत सहयोग न दे सकेगा। उन्हें कुछ कार्य सीखना पड़ेगा। उन्हें साधन और साध्य को विभाजित करना पड़ेगा। उन्हें इस क्षण और भविष्य के बीच भेद खड़ा करना पड़ेगा। और हम उन्हें भविष्य के लिए वर्तमान की बलि देना सिखा देंगे, यह मार्ग है संसार का, बाजार का, कामना का। कामना सब कुछ को उपयोगिता में बदल देती है।

ध्यान में तुम पुनः एक बच्चे हो जाओगे—खेलते हुए, भविष्य के किसी विचार के बिना, इसी क्षण में आनंदित होते हुए, कृत्य मात्र का आनंद लेते हुए। फिर कल्पना कामना नहीं रहती। तब तुम कल्पना के साथ खेल सकते हो, तब वह सुंदरतम घटनाओं में से एक हो जाती है। और यह खेल, यह पूरी तन्मयता से इस क्षण में होना ही बुद्धत्व है। जिस क्षण यह घटित होता है तुम रूपांतरित हो जाते हो।

तो बुद्धत्व कभी भविष्य में नहीं होता, सदा वर्तमान में होता है; और वह कोई कार्य नहीं है जिसे करना है, वह तो खेल है जिसे खेलना है।

भारतीय धारणा लीला का यही अर्थ है। परमात्मा खेल रहा है; वह किसी कार्य

में नहीं लगा है। यह संसार किसी साध्य के लिए साधन नहीं है, यह तो मात्र ऊर्जा का एक खेल है। ऊर्जा स्वयं से खेलने में आनंदित है; स्वयं को विभाजित करती है और फिर लुका-छिपी का खेल खेलती है।

तो स्वभावतः, भारतीय मनीषियों ने कभी नहीं कहा कि परमात्मा स्रष्टा है, वे कहते हैं परमात्मा लीलाधर है। क्योंकि सृष्टि शब्द में अपनी एक गंभीरता है, जैसे कि कोई साध्य हो और कुछ करना हो। यह व्यर्थ की बात है कि परमात्मा संसार का सृजन कर रहा है! क्योंकि इसका अर्थ तो यह हुआ कि कोई कमी है और उसे पूरा करने के लिए परमात्मा संसार का सृजन कर रहा है। या इसका अर्थ हुआ कि कोई भविष्य है, तो परमात्मा भी कामना में जीता है।

जैन और बौद्ध, हिंदुओं की लीला की धारणा नहीं समझ पाए, इसलिए उन्होंने परमात्मा को मानने से इनकार कर दिया। क्योंकि यदि परमात्मा संसार को बनाता है तो वह कामना करता है। जैन और बौद्ध कहते हैं कि अगर परमात्मा कामना करता है तो वह संसार का ही हिस्सा हो गया। वह स्वयं भी स्वतंत्र नहीं है, स्वयं भी मुक्त नहीं है।

तो उन्होंने परमात्मा की धारणा से बिलकुल इनकार कर दिया। क्योंकि वे कहते हैं कि परमात्मा का अर्थ है जो कामना के पार हो। वे कहते हैं कि महावीर भगवान हैं, क्योंकि वे कामना के पार हैं। लेकिन ब्रह्मा भगवान नहीं हैं, क्योंकि वह संसार का सृजन करते हैं, संसार की कामना करते हैं।

वे लीला की अवधारणा को नहीं समझ पाए। लीला की धारणा सृजन की धारणा से बिलकुल भिन्न है। परमात्मा बस खेल रहा है। और तुम यह नहीं पूछ सकते कि क्यों? क्योंकि खेल में किसी क्यों का उत्तर नहीं होता। यदि बच्चे खेल रहे हों तो क्या तुम पूछ सकते हो कि तुम क्यों खेल रहे हो? वे कहेंगे, 'हम खेल रहे हैं तो बस खेल रहे हैं।' खेल स्वयं में ही पर्याप्त है, ऊर्जा गतिमान हो रही है, प्रचुर ऊर्जा अतिरेक में बह रही है।

जितने तुम बड़े होते जाते हो उतना तुम्हारा खेल कम होता जाता है। क्यों? क्योंकि अब तुम्हारी ऊर्जा इतने अतिरेक में नहीं बह रही। अब तुम कंजूस हो गए हो। अब तुम जानते हो कि तुम्हारे पास ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा है और उस ऊर्जा को तुम्हें कार्य में, कुछ प्राप्त करने के लिए लगाना है। बच्चों के पास तो ऊर्जा अतिरेक में है। उनके पास इतनी ऊर्जा है कि उन्हें खेलना पड़ता है। खेल तो बस अतिरेक से बहती हुई ऊर्जा की गति है।

फिर बच्चे उसी क्षण में आनंदित हैं। एक बच्चा कूद रहा है, दौड़ रहा है, लेकिन किसी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए नहीं। दौड़ना तो स्वयं में ही एक अनुभव है जीवंत ऊर्जा का, जीवंतता का, जीवित होने का, इतने अतिरेक से भर उठने का कि तुम बिना हिसाब-किताब लगाए ऊर्जा को बाहर फेंक सकते हो।

परमात्मा का अर्थ है पूर्ण ऊर्जा, अनंत ऊर्जा। परमात्मा हिसाबी-किताबी नहीं हो

सकता। उसके पास इतना है, अनंत रूप से इतना है कि वह केवल खेल ही सकता है। और यह खेल चलता ही रहता है, कोई इसका अंत नहीं आता। अंत कभी आ भी नहीं सकता, क्योंकि ऊर्जा अनंत है। और तुम यह नहीं पूछ सकते कि क्यों? ऊर्जा गति करती है, उसके लिए कोई क्यों नहीं है।

यदि परमात्मा ने संसार बनाया होता तो तुम पूछ सकते थे, 'क्यों? तुमने संसार क्यों बनाया?' लेकिन यदि वह बस खेल रहा है, तो तुम नहीं पूछ सकते, 'क्यों?' जब तुम भी खेल में सम्मिलित हो जाते हो तो तुम दिव्य हो जाते हो। यदि तुम कर्ता हो तो तुम मनुष्य हो; और यदि खेल रहे हो तो तुम दिव्य हो। तब तुम खेल में भागीदार हो।

इसीलिए तो कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा है। हमने राम को पूर्णावतार नहीं कहा, उनको हम अंशावतार कहते हैं, वे दिव्य का एक आंशिक अवतरण हैं। लेकिन कृष्ण को हम पूर्णावतार कहते हैं। अंतर यही है कि राम गंभीर हैं। वे अभी भी उपयोगितावादी हैं, साध्य की ओर उन्मुख हैं, कि यह सही है, वह गलत है। सही और गलत केवल कार्य में ही होते हैं, कि यह करना चाहिए और वह नहीं करना चाहिए, कि वह अच्छा है और वह बुरा है। कृष्ण के लिए सब कुछ खेल बन गया है। तो हर चीज गैर-गंभीर है, बस खेल के अपने नियम हैं।

यदि तुम नियमों का पालन करते हो, यह जानते हुए कि यह खेल है और इसके नियमों का पालन करना है, तो ठीक है। लेकिन यदि तुम नियमों का पालन नहीं करते हो तो उसमें कोई गलती नहीं है, असल में, तब तुम नियम पालन न करने का विपरीत खेल खेल रहे हो। यदि तुम नियमों का पालन करते हो तो आज्ञाकारिता का खेल खेल रहे हो, और यदि तुम नियमों का पालन नहीं करते तो तुम विद्रोह का खेल खेल रहे हो। लेकिन कुछ भी गलत नहीं है। तुम जो खेल खेलना चाहो, तुम्हारी मरज़ी है। और यदि तुम गंभीर नहीं होते, तुम जो भी करते हो उसी में आनंदित होते हो, तो तुम बुद्ध हो।

नियम होते ही इसलिए हैं क्योंकि खेल को दूसरों के साथ खेलना है। यदि तुम अकेले ही खेल रहे हो तो नियमों का कोई प्रश्न ही नहीं है; तब तुम अपने नियम जब चाहे बदल सकते हो। लेकिन क्योंकि तुम दूसरों के साथ खेल रहे हो तो नियमों का पालन करना पड़ेगा, ताकि तुम उनके साथ खेल सको। इसके पीछे और कोई कारण नहीं है। नैतिकता एक नियम है, प्रेम एक नियम है, समाज भी एक नियम मात्र है—नियमों पर सहमति हो गई है कि हम एक खेल खेल रहे हैं तो सहमत हो जाते हैं।

यदि तुम इस खेल को नहीं खेलना चाहते तो विद्रोही हो सकते हो, लेकिन इसके बाबत गंभीर मत हो जाओ। फिर विद्रोही होने का खेल खेलो। और अगर कोई तुम्हें मार देता है, तुम्हारी हत्या कर देता है या सूली पर लटका देता है, तो तुम जानते हो कि तुम विद्रोही नेता का खेल खेल रहे थे, इसीलिए तुम्हें मारा जा रहा है। उसमें कुछ भी निंदनीय नहीं है। तुम प्रतिस्थापित नियमों के साथ नहीं थे इसलिए वे नियम तुम्हारे

विरुद्ध थे—बिलकुल ठीक। इसमें कुछ भी गलती नहीं है और न तुम्हें कोई शिकायत करनी है।

एक बार तुम्हें पता लग जाए कि कार्य की, उपयोगिता की, कहीं पहुंचने की, किसी लक्ष्य की धारणा ही बंधन है, तो इसका अर्थ है यह नहीं है कि तुम बाजार का खेल बंद कर दोगे, तुम खेल जारी रखोगे। लेकिन तुम यह जानोगे कि यह खेल है। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम अपनी पत्नी को तलाक दे दो। तुम विवाह का खेल खेलते रहो। लेकिन भलीभांति जानते हुए कि यह एक खेल है। इसके प्रति गंभीर मत हो जाओ। और यदि तुम तलाक का खेल खेलना चाहो तो खेल सकते हो, लेकिन स्मरण रखो कि उसके प्रति गंभीर नहीं होना है। तलाक या विवाह, ये सब वैकल्पिक खेल हैं; संसारी होना या संन्यासी बन जाना, सब वैकल्पिक खेल हैं। लेकिन इनके प्रति गंभीर मत होओ। प्रफुल्लित रहो, उत्सवपूर्ण रहो। और जो भी तुम चुनो वह खेल खेल सकते हो; फिर जो भी परिणाम आए, उसका स्वागत करो, क्योंकि उसमें कुछ भी गंभीर बात नहीं है।

एक बार यह बात तुम्हारी चेतना में गहरी उतर जाए—और यदि तुम ध्यान से खेलना शुरू कर दो तो बात गहरी उतरती जाएगी, यह ठीक शुरुआत होगी, क्योंकि ध्यान में तुम अकेले ही खेलने वाले हो। इसीलिए यह ठीक शुरुआत हो सकती है, एक उचित प्रारंभ। तुम क्योंकि अकेले खेल रहे हो इसलिए तुम समाज को भूल सकते हो, और समाज तुम्हें बाधा डालने न आएगा। ध्यान अकेले का खेल है। तुम अकेले ही खेलते हो।

तो जो भी तुम खेलना चाहते हो खेलो, लेकिन परिणाम को भूल जाओ। यदि परिणाम आ गया तो तुमने ध्यान को भी कार्य बना लिया। ध्यान को तो बस खेलो, उसका आनंद लो, उससे प्रेम करो। ध्यान अपने आप में ही सुंदर है। इसे सुंदर बनाने के लिए किसी और परिणाम की आवश्यकता नहीं है।

लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं, 'हमें ध्यान में बहुत आनंद आ रहा है, लेकिन हमें बताइए कि इससे होगा क्या? अंतिम परिणाम क्या होगा?' मैं उन्हें कहता हूं, 'यही है अंतिम परिणाम कि तुम आनंदित हो रहे हो। और आनंद लो?' लेकिन वे कहे चले जाते हैं, 'हमें इसके बारे में कुछ तो बताइए। अंतिम परिणाम क्या होगा? हम पहुंचेंगे कहां?'

उन्हें इससे कुछ लेना-देना नहीं है कि वे कहां हैं। उन्हें सदा इसी बात की चिंता है कि वे कहां पहुंचेंगे। मन वर्तमान में नहीं रह सकता इसीलिए भविष्य में जाने के बहाने ढूंढ़ता रहता है। वे बहाने ही कामनाएं हैं।

तो यदि तुम भगवान होना चाहो, बुद्ध होना चाहो, तो तुम्हारा ध्यान कामना ही है ध्यान नहीं। यदि तुम्हारी कोई कामना न हो, तुम बस होने में आनंदित हो, बस जीवित होने का उत्सव मना सको, यदि अपनी आंतरिक ऊर्जा के खेल का आनंद ले सको—चाहे वह कल्पनाओं के साथ हो, दृश्यों के साथ हो, शून्य के साथ हो—और यदि इस आनंद के क्षण में पूरे हो सको, तभी समझना कि ध्यान हुआ। तब कोई कामना नहीं रहती।

और कामना के न रहने पर संसार छूट जाता है। कामना-रहित और खेलपूर्ण मन से तुम ध्यान में प्रवेश कर जाते हो।

तुम उसमें हो ही। लेकिन बार-बार तुम्हें यह समझाना पड़ता है, क्योंकि तुम्हारा मन बड़ा अद्‌भुत है। वह किसी भी चीज को कामना में बदल लेता है—किसी भी चीज को—वह कामना-रहितता को भी कामना में बदल लेता है। लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं, 'कामना-रहित स्थिति को कोई कैसे प्राप्त करता है? कामना-रहितता को कैसे प्राप्त करें?' अब यह भी एक कामना बन गई। तुम्हारा मन एक अद्‌भुत यंत्र है : कुछ भी उसमें डालो, कामना बनकर बाहर आ जाता है।

तो इसके प्रति सावधान रहो और वर्तमान क्षण का इतना आनंद लो कि भविष्य में गति करने के लिए कोई ऊर्जा शेष न रहे। तब, किसी भी दिन, किसी भी क्षण तुम्हारा सारा अंधकार मिट जाएगा; अचानक सब बोझ विदा हो जाएगा; अचानक तुम मुक्त हो जाओगे। लेकिन खेल पर, वर्तमान में होने पर, अभी और यहीं होने पर अधिक ध्यान होना चाहिए—भविष्य पर कम से कम।

दूसरा प्रश्न :

कल आपने कहा कि मन और स्वप्न दोनों सत्य हैं। फिर क्यों आप जैसे गुरु यह सिखाने के लिए इतना श्रम करते हैं कि मन ही एकमात्र बाधा है, मन ही एकमात्र रुकावट है?

गुरु और शिष्य केवल मन का खेल हैं। तुम्हारे मन को गुरुओं की जरूरत है इसीलिए गुरु हैं। तुम्हीं उनका निर्माण करते हो। क्योंकि तुम चाहते हो कि तुम्हें कोई सिखाए, इसीलिए शिक्षक हैं। तुम्हारे कारण उनकी जरूरत है।

यह एक खेल है। जब मैं कहता हूं कि विवाह एक खेल है तो यह मत सोचना कि मैं कहूंगा कि गुरु और शिष्य खेल नहीं है। यह भी खेल है। कुछ लोगों को इसमें मजा आता है इसलिए खेलते हैं। यदि तुम्हें इसमें मजा आता है तो गहरे से इसे खेलो; और यदि मजा नहीं आता तो इसे भूल ही जाओ। लेकिन यह खेल बड़ा सुंदर है। यह विवाह से भी गहरा जाता है।

यह बड़ा सुंदर, बड़ा परिष्कृत खेल है। और जब कोई संस्कृति शिखर पर पहुंचती है, तभी यह खेल विकसित होता है, उससे पहले नहीं। असल में केवल भारत में ही यह खेल विकसित हुआ। गुरु और शिष्य का यह खेल यहीं पैदा हुआ। अब पहली बार पश्चिम इसकी खोज कर रहा है, क्योंकि अब पश्चिम शिखर पर पहुंच रहा है। यह सबसे ऐश्वर्यपूर्ण खेल है। यह कोई साधारण खेल नहीं है, इसलिए केवल वही लोग इसे खेल सकते हैं जिनमें क्षमता है। और यदि तुम जानते हो कि यह एक सुंदर खेल है और तुम इसका मजा लेते हो तो तुम इसे खेल सकते हो।

लेकिन इसके प्रति गंभीर मत होओ। और यदि शिष्य गंभीर हों तो क्षमा भी किए

जा सकते हैं, लेकिन जब शिक्षक गंभीर होते हैं तो बहुत अटपटा लगता है। यदि उन्हें इतना भी पता नहीं है कि यह खेल है तो उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता।

सत्य में सब खेल समाप्त हो जाते हैं, लेकिन मन के लिए तो खेलों का अस्तित्व है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम खेलना छोड़ दो, मैं केवल इतना कह रहा हूं कि तुम्हें पता होना चाहिए कि यह एक खेल है, फिर खेलना जारी रखो यदि तुम्हें मजा आता है। यदि तुम्हें मजा नहीं आ रहा हो तो इसे छोड़ दो।

एक बार तुम्हें पता लग जाए कि इस जीवन में सभी संबंध एक न एक तरह के खेल ही हैं तो तुम मुक्त हो जाते हो, क्योंकि केवल गंभीरता के कारण ही तुम बंधन में हो। तुम बंधन में हो, क्योंकि तुम सोचते हो कि सब कुछ बहुत गंभीर है। कुछ भी गंभीर नहीं है। लेकिन इस संपूर्ण जीवन को खेल समझ पाना बहुत कठिन है।

यह इतना कठिन क्यों है? क्योंकि इससे अहंकार को चोट लगती है। यदि सब कुछ खेल ही है तो अहंकार खड़ा नहीं रह सकता। अहंकार को भोजन की जरूरत है। गंभीरता है उसका भोजन। अहंकार उसी से पोषित होता है। तो जब तुम शिष्य बनते हो और इसे खेलपूर्ण ढंग से लेते हो तो तुम्हारा अहंकार मजबूत नहीं हो सकता, क्योंकि तुम जानते हो कि यह बस खेल ही है।

इतना अहंकारी होने का क्या प्रयोजन है? लोग सोचने लगते हैं कि वे बड़े महान गुरु के शिष्य हैं। गुरु चाहे महान हो या न हो, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता, लेकिन शिष्य सोचता है, मैं महानतम गुरु का शिष्य हूं। यही बात विटामिन बन जाती है और अहंकार इससे पोषित होता है, मजबूत होता है।

इसीलिए तो शिष्य गुरुओं के बारे में लड़ते रहते हैं। कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि उसका गुरु नंबर दो है, वह नंबर एक ही होता है। और असली बात यह नहीं है कि तुम्हारा गुरु नंबर एक है या नहीं–यह बात ही नहीं है–असली बात तो यह है कि तुम नंबर एक केवल तभी हो सकते हो जब तुम्हारा गुरु नंबर एक हो। शिष्य का अहंकार गुरु की ऊंचाई पर निर्भर करता है। यदि कोई तुम्हारे गुरु के विरुद्ध कुछ कहता है तो तुम्हें इतनी चोट क्यों लगती है? चोट तुम्हारे अहंकार को लगती है। तुम्हारे गुरु का अर्थ है, साकार रूप में तुम्हारा अहंकार। और यदि तुम्हारे गुरु के विरुद्ध कोई कुछ कहे तो तुम सहन नहीं कर सकते। उसे सहन करना असंभव है, क्योंकि वह तुम्हारे अहंकार पर सीधी चोट है।

लेकिन शिष्यों को तो क्षमा किया जा सकता है। वे अज्ञानी हैं और वे जो भी करेंगे गलत ही होगा। वह तो ठीक है। लेकिन तथाकथित गुरु भी खेल को बहुत गंभीरता से ले लेते हैं। वे हंस नहीं सकते; इस पूरे खेल पर हंसना उनके लिए असंभव है।

कोई गुरु वास्तव में केवल तभी गुरु हो सकता है यदि वह जानता हो कि यह एक खेल ही है, कि इस पूरे खेल में वह तुम्हें जागने में सहयोग दे रहा है। और एक क्षण आएगा जब तुम भी हंस सकोगे और पीछे मुड़कर देख सकोगे। और तब तुम अहोभाव से भर जाओगे कि तुम्हारे लिए सब कुछ कितना गंभीर था और गुरु के लिए

यह कुछ भी नहीं था। वह तो बस खेल को पूरी ईमानदारी से खेल रहा था और हर तरह से प्रयास कर रहा था, जैसे कि वह तुम्हें कहीं लिए जा रहा हो।

इस 'जैसे कि' को स्मरण रखना, क्योंकि तुम्हें कहीं नहीं ले जाना है। तुम्हें यहीं होना है। तो वे सब प्रयास जो लगते हैं कि तुम्हें कहीं लिए जा रहे हैं, केवल विधियां हैं। तुम्हें कहीं नहीं ले जाया जा सकता। तुम अपने घर में ही हो, घर से बाहर तुम कभी गए नहीं। तुम्हारी जड़ें यथार्थ में, सत्य में जमी हुई हैं। तो नेतृत्व के, मार्ग-निर्देश के, गुरु होने के ये सब खेल केवल तुम्हें ऐसी परिस्थितियों में लाने के लिए हैं जहां तुम जाग सको। और तब तुम हंसोगे, क्योंकि तुम पाओगे कि जो भी तुम खोज रहे थे वह तुम्हारे पास ही था।

लेकिन तुम गैर-गंभीरता को नहीं समझ सकते। अहंकार वह भाषा ही नहीं जानता। हर धर्म खेल की तरह पैदा होता है और अंततः एक गंभीर चर्च बन जाता है। हर धर्म एक नृत्य, एक गीत, एक उत्सव की तरह जन्म लेता है और अंततः सब कुछ मुर्दा और गंभीर हो जाता है। वास्तव में धर्म गंभीर हो ही नहीं सकता। धर्म को तो आनंदपूर्ण होना चाहिए, आनंद की परम अवस्था होना चाहिए। वह गंभीर कैसे हो सकता है।

ईसाई मानते हैं कि जीसस कभी नहीं हंसे। कृष्ण को देखो—तुम दोनों के बीच कोई समानता नहीं खोज सकते। ऐसा नहीं है कि जीसस ऐसे थे, लेकिन ईसाइयों ने उन्हें गंभीर बना दिया है, क्योंकि गंभीर जीसस के आस-पास ही गंभीर चर्च संभव है। और फिर पोप का यह गंभीर और बोझिल खेल शुरू होता है। जीसस जरूर एक प्रफुल्लित, हंसते, आनंद मनाते, खाते, पीते, नाचते व्यक्ति रहे होंगे। उन्होंने अवश्य ही जीवन से गहरा प्रेम किया होगा।

यही उनका पाप था। यही कारण था कि उन्हें सूली पर लटकाया गया। जिन्होंने उन्हें सूली पर लटकाया वे बड़े गंभीर लोग थे। वे पुराने स्थापित चर्च थे। असल में उन्होंने जीसस को नहीं, उनके उत्सव को सूली पर लटकाया। और यदि उन्हें सूली पर न लटकाया गया होता तो ईसाइयत पैदा नहीं हो सकती थी, क्योंकि वह तो बड़े आनंदित व्यक्ति थे।

जिस क्षण यहूदियों ने उन्हें सूली पर लटकाया, सब कुछ बहुत गंभीर हो गया। मृत्यु प्रमुख हो उठी। और क्रास पर लटकी हुई आकृति निश्चित ही बहुत गंभीर है, मृत है। और इस लाश व क्रास के आस-पास ईसाइयत खड़ी हो गई। और क्रास उनका प्रतीक बन गया। न तो गांव में हंसते हुए जीसस प्रतीक बन पाए, न किसी पार्टी में शराब पीते हुए, न मित्रों के संग भोजन करते हुए, न वेश्या के घर में ठहरे हुए।

नहीं, यह सब प्रतीक न बन सके। क्रास प्रतीक बन गया, और क्रास के साथ गंभीरता, मृत गंभीरता प्रतीक बन गई। उस क्रास और क्रास पर लटके हुए जीसस के कारण ईसाइयत जीवन के विरोध में हो गई। सब कुछ जो जीवंत है, पाप हो गया।

लेकिन हर धर्म अपने-अपने तरीके से ऐसा ही कर रहा है। जो लोग बहुत होशियार

हैं वे इस तरह से नहीं करते, वे दूसरा उपाय करते हैं। हमने कृष्ण का स्वरूप नहीं बदला—भारत बड़ी परिष्कृत भूमि है, यह ऐसा नहीं कर सकती—लेकिन कृष्ण को हमने कभी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। वे मात्र एक सुंदर पौराणिक कथानक हैं।

गीता भागवत से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई। हिंदुओं के लिए कृष्ण का जीवन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि युद्ध-भूमि में दिया गया उनका संदेश महत्त्वपूर्ण है। क्यों? क्योंकि वह गंभीर बात है। युद्ध-भूमि जीवन की अपेक्षा मृत्यु के अधिक निकट है। कृष्ण का जीवन तो बहुत जीवंत है, लेकिन वह कहानी बन गया है और कोई उसकी फिक्र नहीं करता। युद्ध-भूमि में कहे गए उनके थोड़े से शब्द उनके पूरे जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। और ऐसे पंडित हैं जो समझाते हैं कि उनका जीवन तो केवल प्रतीक मात्र है, वास्तविक नहीं। गोपियों के साथ उनका रास रचना कोई सच्ची घटना नहीं है, गोपियां तो बस इंद्रियों की प्रतीक हैं। वे मांस-मज्जा वाली वास्तविक नारियां नहीं हैं, बस प्रतीक हैं। और ऐसी चालबाजियां करने में पंडित बहुत होशियार हैं। वे कहते हैं, कृष्ण हैं आत्मा और शरीर की इंद्रियां हैं गोपियां, इंद्रियां आत्मा के चारों ओर नाच रही हैं।

यह एक परिष्कृत देश है। यहां कृष्ण की हत्या की गई, कृष्ण को सूली पर लटकाया गया, परंतु बड़े सुसंस्कृत तरीके से। उनके उत्सव की हत्या कर दी गई, वह प्रतीक मात्र हो गया और निरर्थक हो गया। उनके पूरे वास्तविक जीवन को एक ओर धकेल दिया गया।

वह सचमुच की स्त्रियों के साथ नाचते थे, लेकिन हमारे लिए यह सोच पाना बहुत कठिन है कि कृष्ण स्त्रियों के साथ नाचते थे। हम उन्हें प्रतीक स्त्रियों के साथ नाचने की आज्ञा तो दे सकते हैं परंतु वास्तविक स्त्रियों के साथ नहीं। उससे हम चौंक जाएंगे। जीवन हमें चौंका देता है। हम इतने मुर्दा हो गए हैं कि कोई भी जीवंत चीज हमें चौंका देती है।

हर धर्म उत्सव में पैदा होता है। और जब उत्सव मर जाए तो जानना कि धर्म मर चुका। जब भी कोई नया धर्म पैदा होता है, पुराने धर्म उसके विरुद्ध हो जाएंगे, क्योंकि उसमें उत्सव है। ऐसे ही जैसे जब कोई बच्चा पैदा होता है तो खेलता हुआ, उत्सव मग्न, जीवंत होता है। वह भविष्य में नहीं, अभी और यहीं जीता है। पूरा समाज उसके विरुद्ध होगा; सारा समाज उसको सही रास्ते पर लगाने का प्रयास करेगा। इससे पहले कि वह भटक जाए उसे सही रास्ते पर लाना ही होगा। ऐसा ही हर नए धर्म के साथ होता है।

तो जब मैं ध्यान को एक नृत्य कहता हूं और संन्यास को मैं एक आंतरिक उत्सव और उल्लास कहता हूं तो स्वभावतः पुराने ढंग के संन्यासी कहेंगे कि यह क्या है? आप इसे संन्यास कहते हैं? और एक तरह से वे सही भी हैं, क्योंकि जिस सबको वे संन्यास मानते रहे हैं, यह संन्यास वह नहीं है। वे लोग मुर्दा मनुष्य में विश्वास करते रहे हैं। जितना अधिक कोई मुर्दा हो, उतना ही वे कहेंगे कि अब हुआ असली त्याग! जीवन

के त्याग को वे संन्यास कहते हैं। लेकिन मैं जीवन को समग्रता में जीने को संन्यास कहता हूं।

लेकिन ऐसा हमेशा ही होगा। जब मैं नहीं रहूंगा तो तुम इस सबको गंभीर बना लोगे, तुम व्याख्याएं करोगे कि असली अर्थ क्या है। लेकिन असली अर्थ तो सदा स्पष्ट होता है। उसके लिए किसी व्याख्या की जरूरत नहीं होती। हर व्याख्या का मतलब होता है, वह अर्थ देना जो उसके मूल में नहीं था।

गुरु-शिष्य, ज्ञानी-अज्ञानी, यह सब एक विराट खेल है, जागतिक खेल है। अज्ञानियों को ज्ञानियों की आवश्यकता है; न ही ज्ञानी अकेले खेल सकते हैं, उन्हें अज्ञानियों की आवश्यकता है। पर गुरु जानता है यह एक खेल है और वह इसके प्रति गंभीर नहीं होता।

तीसरा प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि बाह्य और आंतरिक तथा शारीरिक और मानसिक आयामों में परिवर्तन, चेतना में परिवर्तन ला सकता है। इसका अर्थ हुआ कि परिधि पर हुए परिवर्तन भी चेतना पर प्रभाव डालते हैं, जो कि केंद्र है। लेकिन फिर आप बाह्य परिधि की अपेक्षा केंद्र को बदलने पर क्यों जोर देते हैं?

यह कठिनाई है, तुम शब्दों को पकड़ लेते हो और अर्थ को चूकते चले जाते हो।

परिधि भी तुम्हारी ही है; केंद्र का ही एक अंग है। परिधि केंद्र का ही अंग है, उसका बाह्य भाग है, लेकिन उससे भिन्न नहीं है। केंद्र के बिना क्या तुम परिधि पैदा कर सकते हो? या तुम परिधि के बिना केंद्र पैदा कर सकते हो? दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, एक ही हैं। परिधि है बाहर की ओर से देखा गया केंद्र। यदि तुम अपनी परिधि को बदलो तो केंद्र पर भी दो कारणों से प्रभाव पड़ेगा—पहला, परिधि केंद्र का ही अंग है; और दूसरा, परिधि को केंद्र के सिवाय कौन बदल सकता है? परिधि को कौन बदलेगा? परिधि को केंद्र ही बदलेगा।

लेकिन केंद्र से कार्य शुरू करने पर अभी भी मेरा जोर है, क्योंकि यदि परिधि को बदलना शुरू करते हो तो केंद्र तक पहुंचने में थोड़ा अधिक समय लगेगा। जो एक क्षण में हो सकता है उसमें कई जन्म लग सकते हैं, क्योंकि तुम्हें परिधि से केंद्र तक की यात्रा करनी होगी, सतह से गहराई की ओर जाना पड़ेगा। यदि तुम केंद्र से कार्य शुरू करते हो तो परिधि स्वतः ही बदल जाती है। जब केंद्र रूपांतरित होगा तो परिधि उसका अनुसरण करेगी, क्योंकि परिधि तुमसे अन्यथा नहीं जा सकती।

उदाहरण के लिए, मैं तुम्हें परिधि पर अहिंसा साधने को नहीं कहूंगा, यह समय और ऊर्जा का अपव्यय है। हृदय से अहिंसक होओ, हृदय को प्रेम और करुणा से भरो—और परिधि अनुसरण करेगी। परिधि को तो तुम बिलकुल भूल सकते हो, क्योंकि वहां जो भी होता है वह केंद्र से ही आता है। यदि केंद्र करुणा से भरा है तो परिधि

उसका अनुसरण करेगी। और यह करुणा बिलकुल भिन्न होगी। क्योंकि परिधि को पता ही नहीं होगा कि यह करुणा है, परिधि इस करुणा के कारण गर्व से न भर जाएगी; वह तो आनंदित होगी और अनभिज्ञ होगी, करुणा छाया की भांति अनुसरण करेगी। यह सरलतम मार्ग है।

मेरा अर्थ यह है कि यदि तुम किसी वृक्ष को बदलना चाहते हो तो उसकी जड़ों को बदल दो। निश्चित ही, वृक्ष की पत्तियां भी वृक्ष हैं और तुम पत्तियों को बदलने का प्रयास भी कर सकते हो। यदि तुम पत्तियों को बदलो तो जड़ों पर भी प्रभाव पड़ेगा, लेकिन यह बहुत लंबी प्रक्रिया हो जाएगी। क्योंकि ऊर्जा का प्रवाह जड़ों से पत्तियों की ओर है, पत्तियों से जड़ों की ओर नहीं। तुम प्रकृति से विपरीत दिशा की ओर चल रहे हो। यदि तुम पत्तियों को बदलते ही चले जाओ तो जन्मों-जन्मों में हो सकता है तुम वृक्ष को बदल पाओ, परंतु यह व्यर्थ ही इतनी लंबी प्रक्रिया होगी। यदि तुम जड़ों को बदल दो तो वही काम इसी क्षण कर सकते हो। पत्तियां स्वयं ही बदल जाएंगी और भिन्न हो जाएंगी।

तो जब मैं केंद्र पर जोर देता हूं तो मेरा यह अर्थ नहीं है कि केंद्र परिधि से अलग है। और जब मैं केंद्र पर जोर देता हूं तो मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम केंद्र को प्रभावित नहीं कर सकते—कर सकते हो, लेकिन यह बहुत लंबा मार्ग है। यदि तुम लंबा मार्ग चुनना चाहते हो तो तुम्हारी मरज़ी है। उसमें कुछ भी गलत नहीं है। यदि तुम्हें यात्रा में आनंद आता है तो लंबा मार्ग भी ठीक है। यदि तुम मार्ग के दृश्यों का आनंद लेना चाहते हो तो लंबा मार्ग सही है। वरना केंद्र से ही शुरू करो।

यह ऐसे है, तुम यहां बैठे हो और मुझे सुन रहे हो; तो इस कमरे में एक केंद्र निर्मित हो गया है—तुम परिधि बन गए, मैं केंद्र बन गया। एक समूह-आत्मा बन गई। तुम मेरी ओर केंद्रित हो। यदि कोई इस कमरे को और इस समूह-आत्मा को प्रभावित करना चाहता है तो बेहतर होगा कि वह तुम्हारी अपेक्षा मुझसे शुरू करे। क्योंकि यदि मेरा मन बदलता है तो प्रभाव जल्दी होगा, लेकिन यदि कोई तुमसे आरंभ करे तो बहुत लंबा प्रयास होगा। क्योंकि पहली बात तो यह है कि तुम कई हो और उसे एक-एक करके पहले तुम सबको बदलना पड़ेगा, और फिर वह तुम्हारे द्वारा मुझे बदलने का प्रयास करेगा। यह बहुत लंबा भी हो सकता है और हो सकता है कि कभी सफल भी न हो। दूसरी बात अधिक सरल है। यदि वह मुझे बदल दे और तुम केंद्र की तरह मुझसे जुड़े हो तो तुरंत प्रभाव होने लगेंगे।

तुम्हारे शरीर में, तुम्हारे मूल स्वरूप में भी यही हो रहा है। वहां केंद्र भी है और तुम्हारे जीवन की परिधि भी है। केंद्र पर सीधी चोट पड़ते ही परिधि अनुसरण करेगी, उसे अनुसरण करना ही पड़ेगा और कोई उपाय ही नहीं है। परिधि को बदलना बड़ा फुटकर कार्य है। तुम एक खंड को बदल लेते हो और निन्यानबे खंड पुराने ही रहते हैं; फिर जब तुम दूसरे खंड की ओर बढ़ोगे तो वे निन्यानबे मिलकर पहले को बदल लेंगे, वे उसे फिर पुराने ढर्रे में लौटा लेंगे। सारा ढंग ही उसके विरुद्ध होगा।

मैं तुम्हारी एक आदत को बदल सकता हूं—उसमें भी बहुत प्रयास की जरूरत होगी—लेकिन सारा ढांचा नहीं बदला जा सकता, क्योंकि केंद्र तुम्हारी पुरानी आदतें दिए चला जाता है। मैंने एक आदत बदल भी ली तो और हजारों आदतें हैं। यह बदली हुई आदत केवल ऊपर से थोपी हुई है। जिस क्षण तुम अचेत होते हो दूसरी सब आदतें और सारे ढांचे मिलकर उसे वापस पुराने ढर्रे में लौटा लाएंगे। तो परिधि पर कार्य करने में बहुत-सा प्रयास व्यर्थ जाता है।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो छोटी-छोटी चीजों पर जीवनभर लगे रहते हैं। उदाहरण के लिए, कोई जीवनभर धूम्रपान छोड़ने की कोशिश ही करता रहता है, वही उसका एकमात्र लक्ष्य है, फिर भी वह उसमें सफल नहीं हो पाता। ऐसे लोगों से मैं पूछता हूं कि यदि तुम इसमें सफल भी हो गए तो क्या पाया? पूरा जीवन धूम्रपान छोड़ने में ही व्यर्थ हो गया, इतना तो उसका मूल्य नहीं। जब तुम उस परम स्रोत, परमात्मा, के पास पहुंचोगे तो केवल यही कह पाओगे कि तुमने धूम्रपान छोड़ दिया है। यह तो कुछ बताने जैसा न होगा। और सारा जीवन तुमने धूम्रपान छोड़ने में बिताया, फिर भी छोड़ न पाए।

यह फुटकर कार्य है। और समस्या धूम्रपान की नहीं है। तुम एक छोटी-सी लहर को बदलकर पूरी नदी से लड़ रहे हो, और पूरी नदी बहती चली जाती है। यदि तुम एक लहर को बदल भी लो तो पूरी धारा उस लहर को वापस अपने जैसा बना लेगी, क्योंकि एक स्वभावगत ढांचा, एक अंतर्निहित संरचना निरंतर केंद्र से परिधि की ओर प्रवाहित हो रही है। यह अंतर्निहित प्रक्रिया है। परिधि पर जो भी हो रहा है, वह केंद्र पर पहले ही हो चुका है। इसी कारण परिधि पर कुछ हो रहा है। परिधि तक उन चीजों की सूचना पहुंचती है जो बहुत गहरे में घटित हो रही हैं।

तो कारण की तलाश करो और लक्षणों की अधिक चिंता न लो। यह वैज्ञानिक है। केंद्र को बदलो। यह प्रयास मत करो कि धूम्रपान छूट जाए, यह छूट जाए, वह छूट जाए—गहरे में उतरो। धूम्रपान क्यों है? काम के प्रति यह मोह क्यों है? धन के प्रति यह मोह क्यों है? तुम कंजूस क्यों हो? तुम मुर्दा धन से क्यों चिपके हो? तुम उसे दान दे सकते हो, उससे कोई अंतर न पड़ेगा। दान देने से कुछ हल न होगा। तुम फिर इकट्ठा कर लोगे। और दान देना ही भविष्य के लिए तुम्हारी पूंजी हो जाएगा, तुम्हारे बैंक बैलेंस का हिस्सा हो जाएगा। तुम खेल-खेल में नहीं दे सकते; या कि दे सकते हो? तुम बड़ी गंभीरता से दान दे सकते हो। जब तुम्हें कहा जाए कि दान से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, तब तुम दान दे सकते हो।

मेरे देखे, जो व्यक्ति भविष्य में स्वर्ग पाने की चाह के कारण दान दे रहा है वह उस व्यक्ति से भी अधिक धन से जुड़ा है जो ताश के खेल में अपना भाग्य दांव पर लगा रहा है। वह व्यक्ति कम लालची है। वह धन से खेल सकता है, और उसकी उपलब्धि अधिक गहरी है। हो सकता है वह अनैतिक लगे, क्योंकि नैतिकता तो दानियों ने बनाई है। वे कहेंगे, 'तुम धन व्यर्थ गंवा रहे हो।'

वे कभी धन व्यर्थ नहीं गंवाते, वे पूंजी में लगाते हैं। और यह व्यक्ति पागल है,

पापी है, धन व्यर्थ गंवा रहा है। लेकिन यह व्यक्ति कम लालची है, और यह उस लालची व्यक्ति से अधिक सरलता से गहराई में उतर सकता है जो स्वर्ग पाने के लिए दान दे रहा है।

तो तुम बाहरी चीजें बदल सकते हो, लेकिन उस बदलाव का भी गहराई में ढांचा वही रहेगा। उस ढांचे को ही उखाड़ देना है, रूपांतरित कर देना है। इसीलिए मैं केंद्र से शुरुआत करने पर जोर देता हूं। लेकिन ऐसा मत सोचो कि मेरा यह अर्थ है कि यदि तुम केंद्र से शुरू नहीं कर सकते तो परिधि से भी शुरू मत करो। मेरा यह अर्थ नहीं है। यदि तुम केंद्र से शुरू नहीं कर सकते तो कृपया परिधि से ही शुरू करो। कुछ न करने से तो कुछ करना बेहतर ही है। हालांकि इसमें बहुत समय लगेगा और हो सकता है कि तुम उसे कभी न कर पाओ, पर प्रयास का अपना ही सौंदर्य है।

मुझे एक घटना का स्मरण आता है। एक हवाई अड्डे के प्रतीक्षालय में एक युवती लगातार रो रही थी। आस-पास के सभी लोग देख रहे थे पर कोई समझ नहीं पा रहा था कि क्या करें। फिर एक आदमी ने साहस किया। वह उस युवती के पास पहुंचा, उसको सांत्वना देते हुए भली-भली बातें कहने लगा। फिर वह उसके गले में हाथ डालकर बोला, 'तुम्हें चुप कराने के लिए क्या मैं कुछ कर सकता हूं?' लेकिन वह सुनी नहीं, वह रोती रही। उसने थोड़ा और कसकर दबाकर कहा, 'तुम्हारा रोना बंद करने के लिए क्या मैं कुछ कर सकता हूं?' अंततः वह युवती बोली, 'मुझे नहीं लगता है कि आप कुछ कर सकते हैं, क्योंकि मुझे जुकाम है। फिर भी कृपया कोशिश करते रहिए!'

यही मैं भी तुमसे कहता हूं। ऊपर से तो कठिन लगेगा, क्योंकि यह भी जुकाम जैसा ही है। चाहे यह करीब-करीब असंभव ही है, लेकिन प्रयास करते रहो। हो सकता है कुछ हो जाए। कौन जानता है? लेकिन यदि तुम सच में ही उत्सुक हो तो केंद्र से शुरू करो।

चौथा प्रश्न :

स्त्रियों और पुरुषों की विधियों में कोई अंतर क्यों होना चाहिए?

क्योंकि वे दोनों भिन्न हैं। दोनों पूरी तरह भिन्न हैं। विपरीत ध्रुव हैं। असल में, अधिक सही प्रश्न तो यह होगा—स्त्रियों और पुरुषों के लिए एक-सी विधियां क्यों हैं?

ऐसी विधियां हैं जो स्त्री और पुरुष दोनों उपयोग करते हैं, इसलिए नहीं क्योंकि वे स्त्रियों के अनुकूल हैं, बल्कि इसलिए कि उनके लिए कोई विशेष विधियां विकसित ही नहीं हुईं। वे सदा से मनुष्यता का उपेक्षित अंग रही हैं। सब विधियां पुरुषों द्वारा विकसित हुई थीं। मूलतः पुरुष अपने ऊपर ही प्रयोग कर रहा था—वह अपनी ऊर्जा के प्रारूप, ऊर्जा-पथ के विषय में जानता था। उस पर उसने कार्य किया। और फिर वह दूसरे पुरुषों से बोल रहा था। तो सारी विधियां पुरुषों द्वारा ही विकसित की गईं, स्त्रियों के बाबत कभी नहीं सोचा गया।

स्त्रियां मस्जिद में प्रवेश नहीं कर सकतीं। असल में वे इस्लाम का हिस्सा ही नहीं हैं—मस्जिद पुरुषों के लिए है। कई वर्षों तक बुद्ध आग्रहपूर्वक स्त्रियों को दीक्षित करने से मना करते रहे। महावीर ने कई स्त्रियों को दीक्षित किया, उन्होंने कभी दीक्षा देने से इनकार तो नहीं किया, पर स्त्रियों के लिए अलग से कोई विधि विकसित नहीं की। सभी विधियां पुरुषों के लिए थीं। स्त्रियां उन्हीं से प्रयोग करती रहीं। इसीलिए तो उनके कभी चमत्कारिक प्रभाव नहीं हुए। बस जैसे-तैसे ही, ऐसा तो होना ही था।

असल में तीन सौ धर्मों की इस संसार में कोई जरूरत नहीं है, केवल दो धर्मों की जरूरत है—एक पुरुषों के लिए और एक स्त्रियों के लिए। और इन दोनों धर्मों में आपस में किसी संघर्ष की कोई आवश्यकता नहीं है, दोनों का आपस में परिणय हो सकता है। वे दोनों एक हो जाएंगे, संघर्ष की कोई जरूरत ही नहीं है। जब स्त्री और पुरुष प्रेम में पड़कर एक इकाई की तरह जी सकते हैं तो ये दोनों धर्म भी प्रेम में पड़ सकते हैं—पड़ना ही चाहिए।

स्त्रैण चेतना की सारी तहें, सारा मनोविज्ञान, सारी मानसिकता पुरुष से भिन्न है; भिन्न ही नहीं, बल्कि विपरीत है। उदाहरण के लिए, कुंडलिनी योग। यह स्त्रियों के लिए बिलकुल नहीं है। लेकिन जब मैं यह कहूंगा तो बहुत लोग चौंकेंगे। और खासकर तो स्त्रियां चौंकेंगी। वे सोचेंगी उनके हाथ से जैसे कुछ छिन गया। कुंडलिनी योग स्त्रियों के लिए नहीं है, क्योंकि वह पुरुष के धनात्मक केंद्र पर आधारित है। वह केंद्र शिश्न के ठीक नीचे है। यह पुरुषों के लिए है, स्त्रियों के लिए नहीं। स्त्रियों के लिए तो वह केंद्र ऋणात्मक है और ऋणात्मक केंद्र से ऊर्जा नहीं ऊर्ध्वगमन नहीं होता, ऋणात्मक केंद्र से ऊर्जा नहीं उठ सकती।

तो करीब-करीब हमेशा ही ऐसा होता है—ऐसा मेरा अनुभव है—कि जब भी स्त्रियां कहती हैं कि वे कुंडलिनी को उठता हुआ अनुभव कर रही हैं तो केवल कल्पना कर रही होती हैं। ऐसा हो तो नहीं सकता, लेकिन वे बहुत कल्पनाशील होती हैं, पुरुषों से अधिक कल्पनाशील होती हैं। तो यदि मैं दस स्त्रियों और दस पुरुषों के साथ प्रयोग करूं तो नौ स्त्रियों को ऊर्जा उठती हुई अनुभव होगी, जब कि केवल एक ही पुरुष को यह अनुभव होगा। यह चमत्कार है, क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता! मेरे पास वे आ जाती हैं और मैं कहता हूं, 'ठीक है, हो रहा है।' क्या कर सकते हैं? यह असंभव है, वैज्ञानिक रूप से असंभव है, क्योंकि ऊर्जा धनात्मक ध्रुव से ही गति करती है।

तो बिलकुल भिन्न विधियां विकसित होनी चाहिए, बिलकुल भिन्न! लेकिन पुरुष और स्त्रियां इतने पास-पास रहते हैं कि वे भूल जाते हैं कि वे भिन्न हैं। दोनों में कुछ भी समान नहीं है। और अच्छा है कि कुछ भी समान नहीं है, इसी कारण तो वे ऊर्जा का एक वर्तुल बन पाते हैं, दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं, एक-दूसरे में समा जाते हैं। लेकिन इस समा जाने का अर्थ यह नहीं है कि वे समान हैं, वे इसीलिए समा पाते हैं क्योंकि वे समान नहीं हैं।

और जब भी दो समान तरह के शरीर और मन एक-दूसरे में समाने का प्रयास

करते हैं तो वह विकृति हो जाती है। इसीलिए मैं समलैंगिकता को विकृति कहता हूं। पश्चिम में अव यह बहुत प्रचलित हो गई है। अब समलैंगिकता स्वयं को बड़े विकासशील समझते हैं--उनके अपने क्लब हैं, पार्टियां हैं, संस्थान हैं, पत्रिकाएं हैं, प्रचार इत्यादि के साधन हैं। और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। कई देशों में तो उनकी संख्या चालीस प्रतिशत तक हो गई है। देर-अबेर समलैंगिकता सभी जगह एक आम बात हो जाएगी, सामान्य जीवन-शैली हो जाएगी।

अब तो अमेरिका के कई राज्यों में समलैंगिक विवाहों को मान्यता भी मिलने लगी है। यदि लोग आग्रह करें तो सरकार को स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि उसे तो लोगों की सेवा करनी है। यदि दो पुरुष आपस में विवाह करना चाहते हैं तो किसी को व्यवधान डालने की क्या पड़ी है! ठीक है। यदि दो स्त्रियां विवाह करके एक साथ रहना चाहती हैं तो किसी को क्या पड़ी है! उनकी अपनी बात है।

लेकिन मूलतः यह बात अवैज्ञानिक है। उनकी अपनी बात है, पर अवैज्ञानिक है। यह उनकी अपनी बात है और किसी को हस्तक्षेप करने की जरूरत भी नहीं है, परंतु वे मानव ऊर्जा और उसकी गति के मौलिक प्रारूप से अनजान हैं। समलैंगिक कभी आध्यात्मिक विकास नहीं कर सकते। यह बहुत कठिन है। उनकी ऊर्जा-प्रवाह की पूरी संरचना ही बिगड़ गई है, पूरी प्रक्रिया विकृत हो गई है। और अब यदि संसार में समलैंगिकता अधिक बढ़ती है तो उन्हें ध्यान की ओर ले जाने के लिए ऐसी विधियां विकसित करनी पड़ेंगी जैसी पहले कभी नहीं थीं।

जब मैं कहता हूं कि पुरुष और स्त्री एक पूर्ण के दो विपरीत अंग हैं तो मेरा यह अभिप्राय है कि वे दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं। और उनका परिपूरक होना केवल तभी संभव है जब उनके विपरीत ध्रुव मिलें। इसको इस तरह देखो—स्त्री के शरीर में योनि ऋणात्मक ध्रुव है और स्तन धनात्मक ध्रुव हैं। यह एक चुंबक है—स्तनों के निकट धनात्मक ध्रुव और योनि के निकट ऋणात्मक ध्रुव। पुरुष के लिए ऋणात्मक ध्रुव स्तनों पर होता है और जननेंद्रिय पर विधायक ध्रुव होता है। तो जब पुरुष और स्त्री के स्तन मिलते हैं तो ऋणात्मक और धनात्मक ध्रुवों का मिलन होता है; और जब काम-केंद्रों का संभोग में मिलन होता है तो भी ऋणात्मक और धनात्मक ध्रुवों का मिलन होता है। अब दोनों चुंबक अपने विपरीत ध्रुवों पर मिल रहे हैं, अब वर्तुल बन गया—ऊर्जा बह सकती है, गति कर सकती है।

लेकिन यह वर्तुल केवल तभी बन पाएगा जब स्त्री और पुरुष प्रेम में हैं। यदि वे प्रेम में नहीं हैं तो केवल उनके काम-केंद्रों का मिलन होगा, एक धनात्मक ध्रुव दूसरे ऋणात्मक ध्रुव से मिलेगा। ऊर्जा का आदान-प्रदान तो होगा, परंतु वह रेखाबद्ध होगा, वर्तुल नहीं बन पाएगा।

यही कारण है कि प्रेम के बिना तुम कभी तृप्त नहीं हो पाते। बिना प्रेम के संभोग केवल व्यर्थ का खेल रह जाता है। कोई गहरी गति नहीं हो पाती। ऊर्जा गति करती है, लेकिन एक सीधी रेखा में—ऊर्जा का वर्तुल नहीं बनता। और जब तक वर्तुल न बने

तुम एक नहीं हो सकते। जब तुम गहन प्रेम में डूबकर संभोग में उतरते हो तो स्तनों का भी मिलन होता है, अन्यथा नहीं।

इसलिए संभोग तो बहुत सरल है, लेकिन प्रेम जरा कठिन बात है। संभोग तो बस शारीरिक है, दो ऊर्जाएं मिलती हैं और शक्ति का अपव्यय होता है। इसलिए यदि केवल कामवासना हो तो देर-अबेर तुम ऊब जाओगे : बस शक्ति व्यर्थ जाती है और मिलता कुछ भी नहीं। मिलता तो कुछ तभी है जब वर्तुल बनता है। यदि परिपूर्ण वर्तुल बन जाए तो दोनों प्रेमी संभोग के बाद अधिक ऊर्जावान, अधिक जीवंत और अधिक शक्ति-पूरित हो जाएंगे। यदि केवल संभोग ही हो तो दोनों ही स्खलित और क्षीण अनुभव करेंगे। उनकी ऊर्जा नष्ट हुई है। उनको नींद आ जाएगी, क्योंकि वे कमजोरी महसूस करेंगे।

इस एक ध्रुवीय मिलन में पुरुषों को स्त्रियों से अधिक नुकसान होता है। इसी कारण तो स्त्रियां वेश्याएं बन सकती हैं, क्योंकि पुरुष धनात्मक ध्रुव है और स्त्री ऋणात्मक ध्रुव है। ऊर्जा पुरुष से स्त्री की ओर बहती है, स्त्री से पुरुष की ओर नहीं। तो एक स्त्री एक रात में बीस से तीस बार संभोग में उतर सकती है, पुरुष नहीं, पुरुष तो दो बार भी नहीं उतर सकता। यह उम्र पर निर्भर करता है कि कैसे उसकी ऊर्जा बह रही है, क्योंकि मिल तो कुछ भी नहीं रहा।

तो मेरे देखे यदि वेश्यावृत्ति बुरी है तो वेश्यावृत्ति के कारण नहीं, बल्कि इसलिए बुरी है कि उसमें वर्तुल नहीं बन पाता। तुम ऊर्जा से नहीं भर पाते। तुम्हारी शक्ति का ह्रास होता है। यदि प्रेम है तो पुरुष और स्त्री दो ध्रुवों पर मिलते हैं। पुरुष स्त्री को देता है और स्त्री पुरुष को वापस लौटा देती है। यह पारस्परिक आदान-प्रदान है।

स्त्रियों के लिए वह ध्यान अच्छा होगा जो स्तनों से शुरू हो, वह उनका धनात्मक ध्रुव है। इसके कारण बहुत कुछ अद्‌भुत एवं असंभावित घटित होता है। पुरुष सदा एकदम से स्त्री में प्रवेश करना चाहता है। वह पूर्व-क्रीड़ा में, फोर-प्ले में उत्सुक नहीं होता, क्योंकि उसका धनात्मक ध्रुव सदा तैयार रहता है। और स्त्रियां सदा ही बिना किसी पूर्व-क्रीड़ा के संभोग में उतरने से झिझकती हैं, क्योंकि उनका ऋणात्मक ध्रुव तैयार नहीं होता। और वह तैयार हो भी नहीं सकता। जब तक पुरुष स्त्री के स्तनों से प्रेम करना शुरू नहीं करता, ऋणात्मक ध्रुव तैयार नहीं होगा। वे राजी तो हो जाती हैं, लेकिन उसका सुख नहीं ले पातीं।

और पुरुष सोचता है कि संभोग का कृत्य, रतिक्रिया बड़ी सरल है। समय क्यों व्यर्थ करना? स्त्री में एकदम से प्रवेश करके कुछ ही पलों में वह स्खलित हो जाता है। लेकिन उसमें स्त्री सम्मिलित न हो सकी, वह तैयार ही नहीं थी।

इसीलिए तो स्त्रियों को चाह होती है कि उनके प्रेमी उनके स्तनों को स्पर्श करें। यह एक गहन चाह है। जब उनके स्तन ऊर्जा से भर उठते हैं, केवल तभी उनके चुंबकीय दंड का दूसरा ध्रुव जो कि धनात्मक है, प्रतिसंवेदित होता है। तब वे इसमें जीवंत हो सकती हैं, भाग ले सकती हैं, तब संप्रेषण हो सकता है--और तब दोनों विलीन हो सकते हैं। पूर्व-क्रीड़ा अत्यंत आवश्यक है।

विवाह रसहीन हो जाते हैं, क्योंकि शुरू-शुरू में तो जब तुम एक नई स्त्री से मिलते हो तो पहले उसके शरीर के साथ खेलते हो, तुम्हें पक्का नहीं होता कि वह सीधे ही तुम्हें प्रवेश करने देगी या नहीं, इसलिए तुम खेलते हो। तुम केवल उसे तैयार करने के लिए भूमिका बनाते हो। लेकिन जब वह तुम्हारी पत्नी हो जाती है तो तुम समझने लगते हो कि वह तो सदा ही उपलब्ध है, पूर्व-क्रीड़ा की कोई जरूरत नहीं है। पत्नियां अपने पतियों से इतनी अतृप्त इसलिए नहीं होतीं क्योंकि वे उन्हें प्रेम नहीं करते, बल्कि इसलिए होती हैं क्योंकि वे उन्हें गलत तरीके से प्रेम करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि स्त्री बिलकुल अलग ढंग से जीती है, उसका शरीर उनसे बिलकुल भिन्न, उनसे बिलकुल विपरीत ढंग से व्यवहार करता है।

स्तनों पर यह अवधान, उनमें विलीन हो जाना, स्त्री को ध्यान में नया अनुभव देगा, अपने शरीर के प्रति एक नया अनुभव होगा, क्योंकि अब वह उस केंद्र से पूरे शरीर को स्पंदित होता हुआ अनुभव कर सकेगी। केवल स्त्री के स्तनों को प्रेम करके ही उसे एक गहन आर्गाज्म, सुख के शिखर अनुभव पर लाया जा सकता है, क्योंकि ऋणात्मक ध्रुव स्वतः प्रतिसंवेदित हो जाता है।

और भी कई बातें हैं। यदि तुम स्तनों पर ध्यान एकाग्र करना शुरू करो तो उस मार्ग का अनुसरण मत करो जो तुमने किताबों में पढ़ा है, क्योंकि वह पुरुषों के लिए है। किसी नक्शे का अनुसरण मत करो, ऊर्जा को स्वयं ही गति करने दो। यह इस प्रकार घटित होगा—केवल थोड़े से सुझाव से ही तुम्हारे स्तन ऊर्जा से भर उठेंगे, ऊर्जा संप्रेषित करने लगेंगे, ऊष्ण हो जाएंगे और तत्क्षण तुम्हारी योनि प्रतिसंवेदित होगी। और तुम्हारी योनि के प्रतिसंवेदना से स्पंदित होने के बाद ही तुम्हारी कुंडलिनी कार्य करना शुरू करेगी। मार्ग अलग होगा और कुंडलिनी अलग तरह से जगेगी।

पुरुष में कुंडलिनी बड़े सक्रिय रूप से, बलपूर्वक जागती है। इसी कारण तो वे इसे सर्प का जागना कहते हैं। बलपूर्वक अचानक एक झटके से सर्प अपनी कुंडली खोल लेता है और कई बिंदुओं पर इसका अनुभव होता है। उन बिंदुओं को चक्र कहते हैं। जब भी कहीं प्रतिरोध होता है तो सर्प बलपूर्वक अपना मार्ग बनाता है। जैसे शिश्न योनि में प्रवेश करता है, वैसा ही मार्ग पुरुष के भीतर है। जब ऊर्जा उठती है तो वह ऐसी है मानो शिश्न भीतर गति कर रहा है।

और सर्प लिंग का प्रतीक है। वास्तव में, सीधे-सीधे इसे पुरुष जननेंद्रिय न बोलना पड़े, इसलिए उन्होंने इसे सर्प कहा है। तुमने कहानी सुनी होगी कि अदन के बगीचे में सर्प ने ईव को ज्ञान का फल खाने के लिए फुसलाया था। अब अनुसंधानकर्ता इस बात पर खोज कर रहे हैं कि वह सर्प भी बस जननेंद्रिय का ही प्रतीक है, जिसका उपयोग केवल इसलिए किया गया है कि सीधा-सीधा न कहना पड़े। तो असल में यह ज्ञान का फल खाने का सवाल नहीं है; यह कामुकता का प्रश्न है।

यही प्रतीक भारत में प्रयोग हुआ है—सर्प ऐसे जगता है जैसे जननेंद्रिय जाग्रत होती है, झटके से, और भीतर गति करती है।

स्त्री को ऐसा अनुभव नहीं होगा। उसका अनुभव बिलकुल विपरीत होगा, उसे ऐसा अनुभव होगा जैसा उसे पुरुष जननेंद्रिय के योनि में प्रवेश करने पर होता है—विलीन होने की अनुभूति, स्वागत का भाव, योनि खुलती हुई, स्पंदित होती, माधुर्य, ग्राहकता और प्रेमपूर्ण स्वागत—ऐसी ही घटना भीतर घटेगी। जब ऊर्जा जगती है तो वह ग्रहणशील और विश्रांत होगी, जैसे कि कोई मार्ग खुल रहा हो—वह सर्प के जागने जैसी घटना नहीं होगी, बल्कि एक मार्ग, एक द्वार के खुलने और मार्ग देने जैसी घटना होगी। यह पैसिव और निगेटिव घटना होगी। पुरुषों के साथ ऐसा होता है जैसे कुछ प्रवेश कर रहा हो; स्त्रियों के साथ ऐसा नहीं होता जैसे कि कुछ प्रवेश कर रहा हो, बल्कि ऐसा होता है जैसे कि कुछ खुल रहा हो।

लेकिन पहले किसी ने इस पर कार्य नहीं किया, क्योंकि किसी ने स्त्रियों को कोई महत्त्व ही नहीं दिया। लेकिन भविष्य के लिए, मैं सोचता हूं कि अब यह अत्यंत आवश्यक है कि स्त्री के शरीर की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, बहुत कार्य और शोध की जरूरत है, लेकिन नैतिकतावादी और आदर्शवादी बकवासों के कारण वह कार्य कठिन है। स्त्रैण शरीर इस घटना में किस प्रकार प्रतिसंवेदित होगा, इस पर कार्य करना और इसकी एक रूप-रेखा तैयार करना बड़ा दुरूह कार्य है।

लेकिन मैं सोचता हूं कि ऐसा ही यह होगा—सब कुछ बिलकुल विपरीत होगा। ऐसा ही होना चाहिए। एक समान तो हो ही नहीं सकता। लेकिन आत्यंतिक घटना एक ही होगी।

आज इतना ही।

69

एकांत दर्पण बन जाता है

सूत्र

96. किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो, वृक्षों, पहाड़ियों, प्राणियों से रहित हो। तब मन के भारों का अंत हो जाता है।

97. अंतरिक्ष को अपना ही आनंद-शरीर मानो।

मनुष्य अकेला पैदा होता है और अकेला ही मरता है, लेकिन इन दोनों बिंदुओं के बीच वह समाज में, दूसरों के साथ रहता है। एकांत उसका मूल सत्य है; समाज केवल एक संयोग है। और जब तक मनुष्य अकेला न जी सके, जब तक अपने एकांत को उसकी पूरी गहराई से न जान ले, तब तक वह स्वयं से परिचित नहीं हो सकता। समाज में जो कुछ भी होता है वह बाहरी है, वह तुम नहीं हो, वह दूसरों के साथ तुम्हारे संबंध हैं। तुम तो अज्ञात ही रह जाते हो, बाहर से तुम प्रकट नहीं हो सकते।

लेकिन हम दूसरों के साथ रहते हैं, इसलिए आत्मज्ञान बिलकुल भूल गया है। तुम अपने बारे में जो जानते हो वह दूसरों ने तुम्हें बताया है। कितनी अजीब, बेतुकी बात है कि दूसरे तुम्हें तुम्हारे बारे में बताएं! जो भी तुम्हारा परिचय है वह दूसरों ने तुम्हें दिया है; वह परिचय वास्तविक नहीं है, केवल एक लेबल है।

तुम्हें एक नाम दे दिया गया है। वह नाम तुम्हें एक लेबल की तरह दे दिया गया है, क्योंकि समाज के लिए एक अनाम व्यक्ति से संबंध बनाना बहुत कठिन होगा। न केवल तुम्हारा नाम दूसरों का दिया हुआ है, बल्कि जो तुम सोचते हो कि तुम्हारा व्यक्तित्व है वह भी दूसरों का ही दिया हुआ है—कि तुम अच्छे हो, बुरे हो, सुंदर हो, प्रतिभाशाली हो, नैतिक हो, संत हो, या कुछ भी हो—वह व्यक्तित्व भी तुम्हें दूसरों के द्वारा ही दिया गया है। और तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो, न तो तुम्हारा नाम ही कुछ प्रकट करता है और न दूसरों द्वारा दिया गया तुम्हारा व्यक्तित्व ही कुछ प्रकट करता है, तुम स्वयं से अपरिचित ही रह जाते हो।

यही तो मूल व्यथा है। तुम हो, लेकिन स्वयं से अनजान हो। स्वयं से परिचय की यह कमी ही अज्ञान है और यह अज्ञान किसी ऐसे ज्ञान से नष्ट नहीं हो सकता जो दूसरे तुम्हें दे सकते हैं। वे कह सकते हैं कि तुम न तो यह नाम हो, न यह व्यक्तित्व,

तुम शाश्वत आत्मा हो, लेकिन वह भी दूसरे ही तुम्हें कह रहे हैं, वह भी तुम्हारा अपना नहीं है। जब तक तुम सीधे ही अपना साक्षात्कार नहीं करते, तुम अज्ञान में ही रहोगे; और अज्ञान विषाद पैदा करता है।

तुम दूसरों से ही भयभीत नहीं हो, स्वयं से भी भयभीत हो। क्योंकि तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो और क्या तुममें छिपा है। तुम्हारी क्या संभावना है, अगले ही क्षण क्या तुमसे प्रकट हो जाएगा, तुम नहीं जानते। तुम कंपते रहते हो और जीवन एक गहन संताप बन जाता है। कई समस्याएं हैं जो संताप पैदा करती हैं, लेकिन वे सब गौण हैं। यदि तुम गहरे जाओ तो हर समस्या से यही स्पष्ट होगा कि मूल संताप, मूल वेदना यही है कि तुम स्वयं से अनभिज्ञ हो—उस स्रोत से जहां से तुम आए हो, उस गंतव्य से जहां तुम जा रहे हो, उस सत्ता से जो तुम अभी हो।

इसीलिए हर धर्म कहता है कि निर्जन में, एकांत में जाओ, ताकि कुछ समय के लिए समाज और उसका दिया हुआ सब कुछ पीछे छोड़कर अपना साक्षात्कार कर सको।

महावीर बारह वर्ष तक जंगल में अकेले रहे। इस दौरान उन्होंने एक भी शब्द नहीं बोला, क्योंकि जिस क्षण तुम बोलते हो तुम समाज के हिस्से हो जाते हो। भाषा समाज है। वह बिलकुल मौन रहे, बोले ही नहीं, मूल सेतु ही काट दिया, ताकि वह अकेले हो सकें। जब तुम नहीं बोलते तो तुम अकेले हो जाते हो, गहन रूप से अकेले हो जाते हो, दूसरे से संपर्क करने का उपाय ही नहीं रहता।

बारह वर्ष तक अकेले, बिना बोले, वह क्या कर रहे थे? वह यह जानने का प्रयास कर रहे थे कि वह कौन हैं। यह अच्छा है कि तुम सारे लेबल उतार फेंको, दूसरों से दूर हो जाओ, ताकि किसी सामाजिक छवि की जरूरत न पड़े। महावीर अपनी सामाजिक छवि को नष्ट कर रहे थे। वह उस सब कचरे को फेंक रहे थे जो समाज ने दिया है; वह बिना किसी नाम के, बिना किसी विशेषण के पूर्णतया नग्न होने की चेष्टा कर रहे थे।

महावीर की नग्नता का यही अर्थ है। यह मात्र कपड़ों का गिरा देना भर नहीं था, उनकी नग्नता गहरी थी। वह पूर्णतया एकाकी हो जाने की नग्नता थी। तुम समाज के लिए कपड़े पहनते हो, कपड़े तुम्हारे शरीर को छिपाने के लिए या दूसरों की आंखों से तुम्हें ढांकने के लिए हैं, क्योंकि समाज तुम्हारे पूरे शरीर से सहमत नहीं है। तो समाज जिस भी चीज से सहमत नहीं होता, तुम्हें वह छिपानी पड़ती है। शरीर के केवल कुछ अंग ही खुले रह सकते हैं। समाज तुम्हें हिस्सों में चुनता है, तुम्हारी पूर्णता स्वीकृत नहीं है।

शरीर के साथ ही नहीं, मन के साथ भी यही हो रहा है। तुम्हारा चेहरा स्वीकृत है, तुम्हारे हाथ स्वीकृत हैं, लेकिन तुम्हारा पूरा शरीर स्वीकृत नहीं है। विशेषतः वे अंग जो तुम्हें यौन का विचार दे सकते हैं अस्वीकृत हैं। इसीलिए कपड़ों का महत्त्व है। और मन के साथ भी ऐसा ही किया जा रहा है। तुम्हारा पूरा मन नहीं, केवल उसके कुछ अंश ही स्वीकृत हैं।

इसलिए तुम्हें अपने मन को छिपाना और दबाना पड़ता है। तुम अपने मन को

खोल नहीं सकते, अपने गहरे से गहरे मित्र के सामने भी अपने मन को खोल नहीं सकते, क्योंकि वह भी तुम्हारे बारे में निर्णय करने लगेगा। वह कहेगा, 'अच्छा तो तुम यही सोचते रहते हो? यही तुम्हारे दिमाग में चलता रहता है?' तो तुम उसको केवल वही थोड़ी सी बातें बताते हो जो स्वीकृत हैं, बाकी सब कुछ तुम्हें अपने भीतर ही छिपाना पड़ता है। वह छिपा हुआ हिस्सा कई बीमारियां पैदा करता है।

फ्रायड का पूरा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण छिपे हुए मनोभावों को बाहर लाने से संबंधित है। इससे व्यक्ति के ठीक होने में वर्षों लगते हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिक कुछ करता नहीं है, वह तो बस तुम्हारे दमित हिस्से को बाहर निकाल देता है। और वह बाहर निकालना ही उपचार की शक्ति बन जाता है।

इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि दमन बीमारी है, एक भारी बोझ है, तुम किसी को बताना चाहते थे, किसी को कहना चाहते थे; तुम चाहते थे कि कोई तुम्हें पूरा का पूरा स्वीकार कर ले।

यही तो प्रेम का अर्थ है कि तुम अस्वीकृत नहीं होओगे। तुम जो भी हो—अच्छे, बुरे, पापी, पुण्यात्मा—कोई तुम्हें तुम्हारी पूर्णता में स्वीकार कर लेगा, तुम्हारे किसी हिस्से को भी अस्वीकृत नहीं करेगा। इसीलिए तो प्रेम महानतम निदान है। प्रेम पुराने से पुराना मनोविश्लेषण है। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो तुम उसके प्रति खुल जाते हो। और खुलने मात्र से ही तुम्हारे टूटे हुए और विभाजित अंग जुड़ने लगते हैं, तुम एक हो जाते हो।

लेकिन प्रेम भी असंभव हो गया है। अपनी पत्नी से भी तुम सच नहीं कह सकते, अपने प्रेमी के साथ भी तुम पूरी तरह प्रामाणिक नहीं हो सकते। क्योंकि उसकी आंखें भी निर्णय करने में लगी रहती हैं, वह भी चाहता है कि तुम एक प्रतिमा का अनुसरण करो। तुम्हारी वास्तविकता महत्त्वपूर्ण नहीं है, आदर्श अधिक महत्त्वपूर्ण है। तुम जानते हो कि तुमने स्वयं को पूरी तरह अभिव्यक्त किया तो तुम अस्वीकृत हो जाओगे, तुम्हें प्रेम नहीं मिलेगा। तुम डरते हो, और इस डर के कारण प्रेम असंभव हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक छिपे हुए भावों को बाहर निकालता है। लेकिन वह कुछ करता नहीं है, वह बस बैठकर तुमको सुनता है। ऐसा लगता है कोई तुम्हारी बात नहीं सुनता, इसीलिए तुम्हें सुनने वाले व्यावसायिक व्यक्ति की मदद चाहिए। कोई तुम्हें सुनने को तैयार नहीं है, किसी के पास समय ही नहीं है। किसी को तुममें उत्सुकता नहीं है। इसीलिए व्यावसायिक आवश्यकता पैदा हो रहीं है, तुम अपनी बात सुनाने के लिए किसी को पैसे देते हो। फिर वर्षों तक रोज या सप्ताह में दो-तीन बार वह तुम्हारी बातें सुनता है और तुम ठीक हो जाते हो।

यह तो चमत्कार है! बात सुनाने भर से ही क्यों तुम ठीक हो जाते हो? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कोई तुम्हारे बारे में बिना कोई निर्णय लिए तुम पर ध्यान देता है और उसको तुम अपनी सब बातें कह सकते हो। और बताने भर से ही बात ऊपर आ जाती है और तुम्हारे चेतन मन का हिस्सा हो जाती है। जब तुम किसी बात को

अस्वीकार करते हो, प्रतिबंधित करते हो, दबाते हो, तो तुम चेतन और अचेतन के बीच, स्वीकृत और अस्वीकृत के बीच विभाजन खड़ा कर लेते हो। इस विभाजन को दूर करना है।

महावीर इसीलिए एकांत में चले गए, ताकि वे ऐसे रह सकें जैसे किसी का भय न हो। क्योंकि उन्हें किसी को भी अपना चेहरा नहीं दिखाना था, इसलिए वे सारे मुखौटे उतारकर फेंक सके। तब वह अकेले हो सके, पूरी तरह नग्न हो सके, जैसे कि तारों के नीचे, नदी के किनारे, वन में वह अकेले हों। वहां किसी ने एतराज न किया होगा, वहां किसी ने न कहा होगा कि ऐसे होने की तुम्हें आज्ञा नहीं है, अपने को सुधारो, ऐसे बनो। समाज को छोड़ने का अर्थ है उस परिस्थिति को छोड़ना जहां दमन अनिवार्य हो गया है।

तो नग्नता का अर्थ है जैसे हो वैसे ही हो जाना—बिना किसी बाधा के, बिना किसी दमन के। महावीर मौन में, एकांत में चले गए। उन्होंने कहा, 'जब तक मैं स्वयं को न जान लूं, मैं समाज में वापस नहीं लौटूंगा। मैं उस व्यक्तित्व को जानना नहीं चाहता जो दूसरों ने मुझे दिया है, वह तो झूठा है। लेकिन जिस स्व को मैं लेकर पैदा हुआ हूं, मैं उसे जानना चाहता हूं। जब तक मैं अपनी वास्तविकता का साक्षात्कार न कर लूं, जब तक मैं अपने मूल तत्त्व को न जान लूं, मैं बोलूंगा नहीं, क्योंकि बोलना व्यर्थ है।'

तुम सांयोगिक हो; जो कुछ भी तुम सोचते हो कि तुम हो, संयोग मात्र है। जैसे, तुम भारत में पैदा हुए हो। तुम इंग्लैंड में, या फ्रांस में, या जापान में भी पैदा हो सकते थे। यह केवल संयोग है। लेकिन भारत में पैदा होने से तुम्हारी अलग पहचान है, तुम हिंदू हो, तुम स्वयं को हिंदू समझते हो। लेकिन जापान में तुम अपने को बौद्ध समझते, इंग्लैंड में ईसाई समझते और रूस में कम्युनिस्ट समझते। हिंदू होने के लिए तुमने कुछ किया नहीं है, वह बस संयोग है। तुम जहां भी होते परिस्थिति से स्वयं को जोड़ लेते। तुम खुद को धार्मिक समझते हो, लेकिन तुम्हारा धर्म संयोग मात्र है। यदि तुम किसी कम्युनिस्ट देश में पैदा हुए होते तो वहां उतने ही अधार्मिक होते, जितने यहां धार्मिक हो।

तुम जैन परिवार में पैदा हुए हो तो मानते हो कि परमात्मा नहीं है—बिना इस बात की खोज किए कि परमात्मा नहीं है। लेकिन तुम्हारे घर के पास ही दूसरा बच्चा पैदा होता है और वह हिंदू हो जाता है, वह परमात्मा में विश्वास करता है और तुम नहीं करते। यह सब संयोग है, वास्तविकता नहीं। यह सब परिस्थिति पर निर्भर करता है। तुम हिंदी बोलते हो, कोई गुजराती बोलता है, कोई फ्रेंच बोलता है—यह सब संयोग है। भाषा संयोग है, मौन है वास्तविकता। भाषा तो संयोग ही है। तुम्हारी आत्मा वास्तविक है, तुम्हारा मन संयोग है। और वास्तविक को खोजना ही एकमात्र खोज है।

वास्तविक को कैसे खोजें? बुद्ध छः वर्ष के लिए मौन में चले गए। जीसस भी एक सघन वन में चले गए। उनके शिष्य उनके साथ जाना चाहते थे, वे जीसस के पीछे चलते रहे। और एक क्षण आया जब जीसस ने कहा, 'रुक जाओ। तुम्हें मेरे साथ नहीं आना चाहिए। अब मुझे अपने प्रभु के साथ अकेला होना है।' वह निर्जन एकांत में चले

गए। जब वह वापस आए तो वह दूसरे ही व्यक्ति थे; वह स्वयं को जान चुके थे।

एकांत दर्पण बन जाता है, समाज भ्रम में रखता है। इसीलिए तुम अकेले होने से डरते हो। क्योंकि तब तुम्हें स्वयं को जानना पड़ेगा, स्वयं को अपनी पूरी नग्नता में जानना पड़ेगा। तुम डरते हो। अकेले होना कठिन है। जब भी तुम अकेले होते हो तो कुछ-न-कुछ करने लगते हो, ताकि अकेले न रहो—या तो अखबार पढ़ने लग जाओगे, या टेलीविजन चला लोगे, या दोस्तों से मिलने किसी क्लब में या किसी के घर चले जाओगे—कुछ-न-कुछ जरूर करोगे। क्यों? क्योंकि जब भी तुम अकेले होते हो तो तुम्हारी पहचान मिटने लगती है, अपने बारे में तुम जो भी जानते हो वह झूठ हो जाता है और वास्तविकता उभरने लगती है।

सब धर्म कहते हैं कि स्वयं को जानने के लिए मनुष्य को एकांत में चले जाना चाहिए। वहां हमेशा रहने की जरूरत नहीं है, वह व्यर्थ है, लेकिन थोड़े समय के लिए तो एकांत में जाना ही होगा। और कितना समय उचित होगा, यह अलग-अलग व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। मोहम्मद, जीसस, महावीर, बुद्ध सभी एकांत में थे। मोहम्मद कुछ महीनों के लिए एकांत में रहे; जीसस कुछ दिन ही रहे; महावीर बारह वर्ष और बुद्ध छः वर्ष रहे। यह निर्भर करता है, लेकिन एकांत में जाना नितांत आवश्यक है, जब तक कि तुम यह न कह सको कि मैं मूल तत्त्व को जान गया।

अनंत विस्तार में देखते रहो

यह विधि एकांत से संबंधित है :

96. किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो, वृक्षों, पहाड़ियों, प्राणियों से रहित हो। तब मन के भारों का अंत हो जाता है।

इससे पहले कि हम इस विधि में प्रवेश करें, एकांत के विषय में कुछ बातें समझ लेने जैसी हैं। एक, अकेले होना मौलिक है, आधारभूत है। तुम्हारे अस्तित्व का यही स्वभाव है। मां के गर्भ में तुम अकेले थे, पूरी तरह अकेले थे।

और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि निर्वाण की, बुद्धत्व की, मुक्ति की या स्वर्ग की आकांक्षा मां के गर्भ की गहन स्मृति के कारण ही है। पूर्ण एकांत को और उसके आनंद को तुमने जाना है। तुम अकेले थे, तुम परमात्मा थे, वहां और कोई न था। न कोई तुमको परेशान कर रहा था, न कोई बाधा डाल रहा था। अकेले तुम ही मालिक थे, कोई संघर्ष नहीं था, पूर्ण शांति थी, मौन था, कोई भाषा नहीं थी। तुम अपने अंतरतम में थे। तुम्हें पता नहीं है, लेकिन वह स्मृति तुम्हारे गहन में, तुम्हारे अचेतन में अंकित है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इसीलिए सब सोचते हैं कि बचपन बहुत सुंदर था। हर देश और हर जाति यह सोचती है कि अतीत में कभी स्वर्ण-युग था, जीवन सुंदर था। हिंदू उसे सतयुग कहते हैं। अतीत में, बहुत पहले, इतिहास के भी शुरू होने से पूर्व सब कुछ सुंदर और आनंदपूर्ण था। न कोई झगड़ा था, न कोई फसाद, न कोई हिंसा, केवल

प्रेम ही प्रेम था। वह स्वर्ण-युग था। ईसाई कहते हैं, 'आदम और ईव अदन के बगीचे में बड़ी निर्दोषता और आनंद से रहते थे, फिर पतन हुआ।' तो स्वर्ण-युग उस पतन से पहले था। हर देश, हर जाति, हर धर्म यह सोचता है कि स्वर्ण-युग कहीं अतीत में था। और बड़ी अजीब बात यह है कि तुम अतीत में कितने ही पीछे चले जाओ, हमेशा ऐसा ही सोचा जाता था।

मैसोपोटामिया में एक शिला मिली है जो छः हजार वर्ष पुरानी है। उस पर एक लेख खुदा हुआ है। उसे यदि तुम पढ़ो तो तुम्हें लगेगा कि तुम आज के किसी अखबार का संपादकीय पढ़ रहे हो। वह शिलालेख कहता है कि यह युग पाप का युग है। सब कुछ गलत हो गया है। बेटे बाप की नहीं मानते, पत्नी पति में विश्वास नहीं करती, अंधकार छा गया है। अतीत के वे स्वर्णिम दिन कहां गए? यह शिलालेख छः हजार वर्ष पुराना है।

लाओत्से कहता है कि अतीत में, पूर्वजों के जमाने में सब ठीक था; तब ताओ का साम्राज्य था, तब कोई गलती न थी। और क्योंकि कोई कमी न थी इसलिए कोई सिखाने वाला न था; कोई कमी न थी जिसे सुधारना पड़े, इसलिए कोई पंडित, कोई शिक्षक, कोई धर्मगुरु न था। लाओत्से कहता है कि उन दिनों में, उन पुराने दिनों में कोई धर्म न था। उसकी कोई जरूरत न थी, क्योंकि ताओ का साम्राज्य था और सभी इतने धार्मिक थे कि किसी धर्म की जरूरत न थी। उस समय कोई संत न था, क्योंकि पापी नहीं थे, हर कोई इतना संत था कि किसी को खबर ही नहीं थी कि कौन संत है और कौन पापी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह अतीत कभी नहीं था। यह अतीत तो हर व्यक्ति के गहन में छिपी हुई गर्भ की स्मृति है। वह अतीत असल में गर्भ में था। ताओ गर्भ में था और वहां सब कुछ ठीक था, सुंदर था। संसार से पूर्णतया अनजान, बच्चा आनंद में तैर रहा था।

गर्भ में बच्चा ऐसे ही था जैसे शेषनाग पर लेटे विष्णु। हिंदू मानते हैं कि विष्णु अपनी नाग-शय्या पर लेटे हुए आनंद के सागर में तैर रहे हैं। गर्भ में बच्चा ऐसे ही होता है। बच्चा भी तैरता है। मां का गर्भ भी सागर के जैसा है। और तुम हैरान होओगे कि मां के गर्भ में बच्चा जिस जल में तैरता है उसके सभी लवण वही होते हैं जो सागर के जल में होते हैं—वही लवण, वही अनुपात। वह सागर का ही सुखद जल होता है।

और गर्भ में सदा बच्चे के लिए उचित तापमान रहता है। मां चाहे सर्दी से कांप रही हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बच्चे के लिए गर्भ में सदा एक-सा तापमान रहता है। वह ऊष्ण रहता है, आनंद से तैरता है, कोई चिंता, कोई दुख उसे नहीं होता, कोई उत्तरदायित्व उस पर नहीं होता, वह अकेला होता है। उसे मां का भी पता नहीं होता, मां उसके लिए जैसे होती ही नहीं।

यह संस्कार, यह छाप तुम्हारे साथ रहती है। यही मूल सत्य है, समाज में प्रवेश करने से पहले तुम ऐसे ही थे। और मरकर जब तुम समाज से बाहर जाओगे तब भी

यही सत्य होगा, तुम फिर अकेले हो जाओगे। और एकाकीपन के इन दो छोरों के बीच तुम्हारा जीवन तमाम घटनाओं से भरा होता है। लेकिन वे सब घटनाएं सांयोगिक हैं, गहरे में तुम अकेले ही रहते हो क्योंकि वही मूल सत्य है। उस एकांत के चारों तरफ बहुत कुछ घटता है। तुम्हारा विवाह होता है, तुम दो हो जाते हो, फिर तुम्हारे बच्चे हो जाते हैं और तुम कई हो जाते हो। सब कुछ होता रहता है, लेकिन केवल परिधि पर, गहन अंतरतम अकेला ही रहता है। वह तुम्हारी वास्तविकता है। तुम उसे अपनी आत्मा कह सकते हो, अपना सार कह सकते हो।

गहन एकांत में इस सार को दोबारा प्राप्त कर लेना है। तो जब बुद्ध कहते हैं कि उन्हें निर्वाण उपलब्ध हो गया है, तो असल में उन्हें यह एकांत, यह आधारभूत सत्य उपलब्ध हो गया है। महावीर कहते हैं कि उन्हें कैवल्य उपलब्ध हो गया है। कैवल्य का अर्थ ही है एकांत, एकाकीपन। घटनाओं के झंझावात के नीचे ही यह एकांत मौजूद है।

यह एकांत तुममें ऐसे ही है जैसे माला में धागा। मनके दिखाई पड़ते हैं, धागा नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन मनके धागे से ही सम्हले हुए हैं। मनके तो अनेक हैं लेकिन धागा एक ही है। वास्तव में माला इस सत्य का प्रतीक है—धागा है सत्य और मनके हैं घटनाएं जो उसमें पिरोई हुई हैं। और जब तक तुम भीतर प्रवेश करके इस मूलभूत सूत्र तक नहीं पहुंच जाओ, तुम संताप में ही रहोगे, विषाद में ही रहोगे।

तुम्हारा एक इतिहास है, संयोगों का इतिहास, और तुम्हारा एक स्वभाव है जो गैर-ऐतिहासिक है। तुम किसी तारीख को, किसी स्थान पर, किसी समाज में, किसी युग में पैदा हुए। तुम्हें एक ढंग से पढ़ाया गया, तुमने कोई व्यवसाय किया, किसी स्त्री के प्रेम में पड़े, बच्चे हुए—ये सब नाटक के मनके हैं, इतिहास हैं। लेकिन गहरे में तुम हमेशा अकेले ही हो। और यदि तुम इन घटनाओं में स्वयं को भूल गए तो तुम यहां होने के अपने लक्ष्य से ही चूक गए। तब तुमने स्वयं को इस नाटक में खो दिया और उस अभिनेता को भूल गए जो इस नाटक का हिस्सा नहीं था केवल अभिनय कर रहा था—यह सब अभिनय है।

इसी कारण हमने इतिहास नहीं लिखा। असल में यह निश्चित कर पाना बड़ा कठिन है कि कृष्ण कब पैदा हुए और कब मरे; राम कब पैदा हुए, कब मरे; या वे कभी पैदा हुए भी कि नहीं, कि केवल काल्पनिक कथाएं हैं। हमने इतिहास नहीं लिखा और कारण यह है कि हम धागे में उत्सुक हैं, मनकों में नहीं। वास्तव में, धर्म के जगत में जीसस पहले ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। लेकिन वह अगर भारत में पैदा हुए होते तो ऐतिहासिक न होते। भारत में हम सदा धागे की खोज करते रहे हैं, मनकों को हमने कोई खास महत्त्व नहीं दिया। लेकिन पश्चिम शाश्वत की अपेक्षा घटनाओं में, तथ्यों में, क्षणभंगुर में अधिक उत्सुक है।

इतिहास तो नाटक है। भारत में हम कहते हैं कि राम और कृष्ण हर युग में होते हैं, बहुत बार वे हो चुके हैं और आगे भी बहुत बार वे होंगे, इसलिए उनके इतिहास को ढोने की जरूरत नहीं है। वे कब पैदा हुए इसका कोई महत्त्व नहीं है, यह अप्रासंगिक

है। उनका अंतरतम केंद्र क्या है, वह धागा क्या है, यह बात अर्थपूर्ण है। तो हमें इस बात में रस नहीं है कि वे ऐतिहासिक थे या नहीं, कि उनके साथ क्या-क्या घटनाएं घटीं। हमारा रस तो उनके प्राणों के केंद्र में है कि वहां क्या घटा।

जब तुम एकांत में जाते हो तो तुम धागे की ओर जा रहे हो; जब तुम एकांत में जाते हो तो तुम प्रकृति में जा रहे हो। जब तुम वास्तव में ही अकेले हो, दूसरों के बारे में सोच भी नहीं रहे, तो पहली बार तुम्हें अपने चारों ओर प्रकृति के जगत का बोध होता है, तुम उसके साथ जुड़ जाते हो। अभी तो तुम समाज से जुड़े हुए हो। यदि तुम समाज के बंधन से छूट जाओ तो प्रकृति से जुड़ जाओगे। जब वर्षा होती है—वर्षा तो सदा से हो रही है, लेकिन तुम उसकी भाषा को नहीं समझ सकते—तुम उसे नहीं सुन पाते, तुम्हारे लिए उसका कोई अर्थ नहीं है। अधिक-से-अधिक तुम केवल उसके जल के उपयोग के बारे में सोच पाते हो। तो उपयोग तो हो जाता है, लेकिन कोई संवाद नहीं हो पाता। तुम वर्षा की भाषा को नहीं समझ पाते, तुम्हारे लिए वर्षा का कोई व्यक्तित्व नहीं है।

लेकिन कुछ समय के लिए यदि तुम समाज को छोड़ दो और अकेले हो जाओ तो तुम्हें नई अनुभूति होने लगेगी। वर्षा आएगी तो तुमसे गुनगुनाएगी, तब तुम उसके भावों को समझने लगोगे। किसी दिन वर्षा बहुत गुस्से में होगी और किसी दिन बहुत सुखद और प्रेमपूर्ण होगी; किसी दिन पूरा आकाश उदास है और किसी दिन नाच रहा है; किसी दिन सूर्य ऐसे उगता है जैसे बिना इच्छा के, जबरदस्ती उग रहा हो; और किसी दिन सूर्य ऐसे उगता है जैसे खेल रहा हो। तुम अपने चारों ओर सभी भावदशाएं अनुभव करोगे। प्रकृति की अपनी भाषा है, लेकिन वह मौन है और जब तक तुम मौन नहीं हो जाते, उसे नहीं समझ सकते।

लयबद्धता की पहली सतह समाज से जुड़ी है, दूसरी प्रकृति के साथ, और तीसरी गहनतम सतह ताओ या धर्म के साथ। वह शुद्ध अस्तित्व है। फिर वृक्ष और वर्षा और मेघ भी पीछे छूट जाते हैं, तब केवल अस्तित्व बचता है। अस्तित्व में भाव की कोई तरंगें नहीं हैं, अस्तित्व सदा एक-सा रहता है—सदा उत्सव में लीन, ऊर्जा से प्रस्फुटित।

लेकिन पहले समाज से प्रकृति की ओर मुड़ना होगा, फिर प्रकृति से अस्तित्व की ओर। जब तुम अस्तित्व से जुड़ जाते हो तो बिलकुल अकेले होते हो, लेकिन वह एकांत गर्भ के बच्चे के एकांत से भिन्न होता है। बच्चा अकेला होता है, लेकिन वास्तव में वह अकेला नहीं होता, उसे तो किसी और की खबर ही नहीं होती। वह अंधकार से ढंका होता है, इसलिए अकेला अनुभव करता है। सारा संसार उसके चारों ओर होता है, लेकिन उसे खबर नहीं होती। उसका एकांत तो अज्ञान के कारण है। जब तुम चैतन्य होकर मौन होते हो, अस्तित्व के साथ एक होते हो, तो तुम्हारा एकांत अंधकार से नहीं प्रकाश से घिरा होता है।

गर्भ में बच्चे के लिए संसार नहीं होता, क्योंकि उसे उसकी खबर नहीं होती; और तुम्हारे लिए संसार नहीं होगा, क्योंकि तुम संसार के साथ एक हो जाओगे। जब तुम

गहनतम अस्तित्व में प्रवेश करते हो तो अकेले हो जाते हो, क्योंकि अहंकार समाप्त हो जाता है। अहंकार समाज द्वारा दिया गया है। जब तुम प्रकृति से जुड़ते हो तो भी अहंकार थोड़ा-बहुत रह सकता है, लेकिन उतना नहीं जितना समाज में होता है। जब तुम अकेले होते हो तो अहंकार मिटने लगता है, क्योंकि वह सदा संबंधों से ही पैदा होता है।

इस पर थोड़ा विचार करो, हर व्यक्ति के साथ तुम्हारा अहंकार बदल जाता है। जब तुम अपने नौकर से बात कर रहे हो तो भीतर अपने अहंकार को देखो कि कैसे काम कर रहा है, यदि अपने मित्र से बात कर रहे हो तो भीतर देखो कि अहंकार कैसा है, जब अपनी प्रेमिका से बात कर रहे हो तो देखो कि अहंकार है भी या नहीं। और जब तुम एक मासूम बच्चे से बात कर रहे हो तो भीतर झांको, तब अहंकार नहीं होगा, क्योंकि छोटे बच्चे के सामने अहंकार दिखाना मूढ़ता होगी। तुम्हें पता है कि यह बात मूढ़ता की हो जाएगी, इसलिए छोटे बच्चे के साथ खेलते हुए तुम बच्चे ही बन जाते हो। बच्चा अहंकार की भाषा नहीं जानता। और बच्चे के सामने अहंकार दिखाकर तुम बिलकुल मूढ़ लगोगे।

तो जब तुम बच्चों के साथ खेलते हो, वे तुम्हें तुम्हारे बचपन में लौटा लाते हैं। जब तुम एक कुत्ते से बात करते हो, खेलते हो, तो समाज ने जो अहंकार तुम्हें दिया है वह विदा हो जाता है। क्योंकि एक कुत्ते के साथ अहंकार का प्रश्न ही नहीं उठता।

लेकिन अगर तुम बड़े सुंदर और कीमती कुत्ते के साथ टहल रहे हो और कोई तुम्हारे पास से सड़क पार कर जाता है तो कुत्ता भी तुम्हारा अहंकार जगा देता है। लेकिन तुम्हारा अहंकार कुत्ते ने नहीं उस आदमी ने जगाया है। तुम तनकर चलने लगते हो, तुम्हें गर्व महसूस होने लगता है कि तुम्हारे पास इतना सुंदर कुत्ता है और वह आदमी ईर्ष्या करता दिखाई पड़ता है।

तो अहंकार है। परंतु जब तुम वन में चले जाते हो तो अहंकार मिटने लगता है। इसीलिए तो सभी धर्मों का जोर है कि चाहे थोड़े समय के लिए ही सही, प्रकृति के जगत में चले जाओ।

यह सूत्र सरल है, 'किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो।'

किसी पहाड़ी पर चले जाओ जहां से तुम अंतहीन दूरी तक देख सको। यदि तुम अंतहीन रूप से देख सको, तुम्हारी दृष्टि कहीं रुके नहीं, तो अहंकार मिट जाता है। अहंकार के लिए सीमाओं की जरूरत होती है। सीमाएं जितनी सुनिश्चित हों, अहंकार के लिए उतना ही सरल हो जाता है।

'किसी ऐसे स्थान पर वास करो जो अंतहीन रूप से विस्तीर्ण हो, वृक्षों, पहाड़ियों, प्राणियों से रहित हो। तब मन के भारों का अंत हो जाता है।'

मन बहुत सूक्ष्म है। तुम एक पहाड़ी पर हो जहां और कोई नहीं है, लेकिन नीचे कहीं तुम्हें कोई झोंपड़ी दिखाई दे जाए तो तुम उस झोंपड़ी से बातें करने लगोगे, उससे संबंध जोड़ लोगे—समाज आ गया। तुम नहीं जानते कि वहां कौन रहता है, लेकिन कोई

रहता है, और वही सीमा बन जाती है। तुम सोचने लगोगे कि कौन वहां रहता है। रोज तुम्हारी नजरें उसे खोजने लगेंगी। झोंपड़ी मनुष्यता की प्रतीक बन जाएगी।

तो सूत्र कहता है, 'प्राणियों से रहित हो।'

वृक्ष भी न हों, क्योंकि जो लोग अकेले होते हैं वे वृक्षों से बोलना शुरू कर देते हैं, उनसे मित्रता कर लेते हैं, बातचीत करने लगते हैं। तुम उस व्यक्ति की कठिनाई को नहीं समझ सकते जो अकेला होने के लिए चला गया है। वह चाहता है कि कोई उसके पास हो। तो वह वृक्षों को ही नमस्ते और आप कैसे हैं कहना शुरू कर देगा। और वृक्ष भी प्राणी हैं। यदि तुम ईमानदार हो तो वे भी जवाब देना शुरू कर देंगे, वहां प्रतिसंवेदन होगा। तो तुम समाज खड़ा कर सकते हो।

तो इस सूत्र का अर्थ यह हुआ कि किसी स्थान पर रहो और सचेत रहो कि कोई दोबारा समाज न खड़ा कर लो। तुम एक वृक्ष से भी प्रेम करना शुरू कर सकते हो। तुम्हें लग सकता है कि वृक्ष प्यासा है तो कुछ पानी ले आऊं—तुमने संबंध बनाना शुरू कर दिया। और संबंध बनाते ही तुम अकेले नहीं रह जाते। इसीलिए इस बात पर जोर है कि ऐसे स्थान पर चले जाओ, लेकिन यह बात याद रखो कि तुम कोई संबंध नहीं बनाओगे। संबंध और संबंधों के संसार को पीछे छोड़ जाओ और अकेले ही वहां जाओ।

शुरू-शुरू में तो यह बहुत कठिन होगा, क्योंकि तुम्हारा मन समाज द्वारा निर्मित है। तुम समाज को तो छोड़ सकते हो लेकिन मन को कहां छोड़ोगे? मन छाया की तरह तुम्हारा पीछा करेगा। मन तुम्हें डराएगा, मन तुम्हें सताएगा, तुम्हारे सपनों में ऐसे चेहरे आएंगे, जो तुम्हें खींचने का प्रयास करेंगे। तुम ध्यान करने का प्रयास करोगे लेकिन विचार बंद नहीं होंगे। तुम अपने घर की, अपनी पत्नी की, अपने बच्चों की सोचने लगोगे।

यह मानवीय है। और ऐसा केवल तुम्हें ही नहीं होता, ऐसा बुद्ध और महावीर को भी हुआ, ऐसा हर किसी को हुआ है। एकांत के छः लंबे वर्षों में बुद्ध भी यशोधरा के बारे में सोचेंगे ही। शुरू-शुरू में, जब मन उनका पीछा कर रहा था, तब वह यदि किसी वृक्ष के नीचे ध्यान करने बैठते होंगे तो यशोधरा पीछा करती होगी। उस स्त्री से वह प्रेम करते थे और उन्हें जरूर ग्लानि हुई होगी कि बिना कुछ बताए उसे वे पीछे छोड़ आए थे।

इसका कहीं उल्लेख नहीं है कि कभी यशोधरा के बारे में उन्होंने सोचा, लेकिन मैं कहता हूं कि उसके बारे में उन्होंने निश्चित ही सोचा होगा। यह तो बिलकुल मानवीय, बिलकुल स्वाभाविक बात है। यह सोचना बहुत अमानवीय होगा कि यशोधरा की याद उन्हें फिर कभी नहीं आई, और यह बुद्ध के लिए उचित भी न होगा। धीरे-धीरे, बड़े संघर्ष के बाद ही वह मन को समाप्त कर पाए होंगे।

लेकिन मन चलता ही रहता है, क्योंकि मन और कुछ नहीं समाज ही है, आंतरिक समाज है। समाज जो तुममें प्रवेश कर गया है, तुम्हारा मन है। तुम बाह्य समाज, बाह्य वास्तविकता से भाग सकते हो, लेकिन आंतरिक समाज तुम्हारा पीछा करेगा।

तो कई बार बुद्ध यशोधरा से बात किए होंगे, अपने पिता से बात किए होंगे,

अपने बच्चे से बात किए होंगे जिसे पीछे छोड़ आए थे। उस बच्चे का चेहरा उनका पीछा करता होगा। जब वह घर छोड़कर आए थे तो वह उनके मन में ही था। जिस रात उन्होंने घर छोड़ा, वे उस बच्चे को देखने के लिए ही यशोधरा के कमरे में गए थे। बच्चा केवल एक ही दिन का था। यशोधरा सो रही थी और बच्चा उसकी छाती से लगा हुआ था। उन्होंने बच्चे की ओर देखा, वह बच्चे को गोद में लेना चाहते थे, क्योंकि यह अंतिम अवसर था। अभी तक उस बच्चे को उन्होंने छुआ भी नहीं था, और हो सकता था कि वह कभी वापस न लौटें और कभी उससे मिलना न हो। वह संसार छोड़ रहे थे।

तो वह बच्चे को छूना और चूमना चाहते थे। लेकिन फिर वह डर गए, क्योंकि यदि वह उसे गोद में लेते तो यशोधरा जाग सकती थी। और तब उनके लिए जाना बहुत कठिन हो जाता, क्योंकि पता नहीं वह रोना-चिल्लाना शुरू कर देती! उनके पास एक मानवीय हृदय था। यह बहुत सुंदर है कि उन्होंने यह बात सोची कि यदि वह रोने लगी तो उनके लिए जाना कठिन हो जाएगा। तब जो भी उनके मन में था कि संसार व्यर्थ है, सब समाप्त हो जाता। वह यशोधरा को रोते हुए न देख पाते, वह उस स्त्री को प्रेम करते थे। तो वह बिना कोई आवाज किए कमरे से बाहर आ गए।

अब यह व्यक्ति सरलता से यशोधरा और बच्चे को नहीं छोड़ सका था, कोई भी न छोड़ पाता। तो जब वह भिक्षा मांगते थे तो उनके मन में अपने महल और साम्राज्य का विचार उठता ही होगा। वह अपनी मरज़ी से भिखारी थे। अतीत जोर मारता होगा, चोट करता होगा कि वापस आ जाओ। कई बार वह सोचते होंगे, मैंने भूल की है। ऐसा होना निश्चित ही है। कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है और कई बार मैं सोचता हूं कि एक डायरी बनाई जाए कि उन छः वर्षों में बुद्ध के मन को क्या हुआ, उनके मन में क्या चलता रहा।

तुम कहीं भी जाओ, मन छाया की तरह पीछा करेगा। तो यह सरल नहीं होगा, यह किसी के लिए सरल नहीं रहा। अपने को सचेत रखने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ेगा; बार-बार संघर्ष करना पड़ेगा; ताकि मन के शिकार न हो जाओ। और मन अंत तक पीछा करता है, जब तक तुम हार ही न जाओ, तुम्हारे लिए कोई उपाय ही न बचे, कुछ भी कर न सको; मन तुम्हारा पीछा करता ही रहेगा। मन रोज प्रयास करेगा, कल्पनाएं और स्वप्न खड़े करेगा; सब तरह के लोभ और भ्रम पैदा करेगा।

सब संतों की कथाओं में उल्लेख है कि शैतान उन्हें भरमाने के लिए आया। कोई और नहीं आता, केवल तुम्हारा मन ही आता है। तुम्हारा मन ही शैतान है, कोई और नहीं। वह रोज प्रयास करेगा। वह तुमसे कहेगा, 'मैं तुम्हें सारा संसार दे दूंगा, तुम वापस आ जाओ।' तुम्हें निराश करेगा, 'तुम मूर्ख हो, सारा संसार मजा ले रहा है और तुम यहां इस पहाड़ी पर आ गए हो, पागल हो! यह धर्म-वर्म सब बेकार की बातें हैं, वापस लौट आओ। देखो, सारा संसार पागल नहीं है जो मजा कर रहा है।' और तुम्हारा मन उन लोगों के सुंदर-सुंदर चित्र बनाएगा जो मजा कर रहे हैं, और सारा संसार

पहले से कहीं अधिक आकर्षक लगने लगेगा। जो भी तुम पीछे छोड़ आए हो, तुम्हें खींचेगा।

यही मूल संघर्ष है। यह संघर्ष इसलिए है कि तुम्हारा मन आदतों का और पुनरावृत्ति का यंत्र है। पहाड़ी पर तुम्हारे मन को नर्क जैसा लगेगा, कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा, सब गलत ही लगेगा। मन तुम्हारे चारों ओर नकारात्मकता पैदा कर देगा, 'तुम यहां कर क्या रहे हो? पागल हो गए हो?' जिस संसार को तुम छोड़ आए हो वह तुम्हारे लिए और सुंदर हो उठेगा और जिस स्थान पर तुम हो, एकदम बेकार लगने लगेगा।

लेकिन यदि तुम दृढ़ रहो और सचेत रहो कि मन यह सब कर रहा है, कि मन यह सब करेगा ही; और यदि तुम मन के साथ तादात्म्य न बनाओ तो एक क्षण आता है कि मन तुम्हें छोड़ देता है। और उसके साथ ही सारे भार खो जाते हैं। जब मन तुम्हें छोड़ देता है, तुम बोझ से मुक्त हो जाते हो, क्योंकि मन ही एकमात्र बोझ है। तब कोई चिंता, कोई विचार, कोई संताप नहीं रहता, तुम अस्तित्व के गर्भ में प्रवेश कर जाते हो। निश्चित होकर तुम बहते हो। तुम्हारे भीतर एक गहन मौन प्रस्फुटित होता है।

यह सूत्र कहता है, 'तब मन के भारों का अंत हो जाता है।'

उस निर्जन में, उस एकांत में एक बात और स्मरण रखने जैसी है—भीड़ तुम पर एक गहरा दबाव डालती है, चाहे तुम्हें पता हो या न पता हो।

अब पशुओं पर कार्य करते हुए वैज्ञानिकों ने एक बड़े आधारभूत नियम की खोज की है। वे कहते हैं कि हर पशु का अपना एक निश्चित क्षेत्र होता है, यदि तुम उस क्षेत्र में प्रवेश करो तो वह पशु तनाव से भर जाएगा और तुम पर आक्रमण करेगा। हर पशु का अपना-अपना क्षेत्र होता है, वह किसी और को उसमें प्रवेश नहीं करने देता। क्योंकि जब कोई दूसरा उसके क्षेत्र में प्रवेश करता है, वह बेचैनी महसूस करने लगता है।

वृक्षों पर तुम कई पक्षियों को गीत गाते हुए सुनते हो, तुम नहीं जानते वे क्या कर रहे हैं। वर्षों के अध्ययन के बाद वैज्ञानिक अब कहते हैं कि जब वृक्ष पर बैठकर कोई पक्षी गा रहा है तो वह कई चीजें कर रहा है। एक तो वह अपनी मादा को बुला रहा है। दूसरे, वह बाकी सब नर प्रतियोगियों को सावधान कर रहा है कि यह मेरा क्षेत्र है, इसमें प्रवेश मत करो। और यदि कोई उस क्षेत्र में आता है तो लड़ाई शुरू हो जाती है। और मादा आराम से बैठकर देखती रहती है कि कौन जीत रहा है, क्योंकि जो भी उस क्षेत्र को जीत लेगा, वह उसे पा लेगा। वह प्रतीक्षा करती है, जो जीत जाएगा वह वहां ठहरेगा और जो हार जाएगा वह चला जाएगा।

हर पशु किसी-न-किसी तरह से अपना क्षेत्र बना लेता है—आवाज से, गाने से, शरीर की गंध से—उस क्षेत्र में कोई और प्रतियोगी प्रवेश नहीं कर सकता।

तुमने कुत्तों को हर जगह पेशाब करते देखा होगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि कुत्ता पेशाब करके अपना क्षेत्र बना रहा है। कुत्ता एक खंभे पर पेशाब करेगा, दूसरे खंभे पर पेशाब करेगा। वह किसी एक जगह पर पेशाब नहीं करता। क्यों? जब एक जगह

पर कर सकते हो तो बेकार में क्यों घूमना? लेकिन वह अपना क्षेत्र बना रहा है। उसके पेशाब में एक गंध होती है जिससे उसका क्षेत्र निर्मित हो जाता है। अब उसमें कोई प्रवेश न करे, यह खतरनाक है। अपने क्षेत्र में वह अकेला मालिक बनकर रहता है।

इस संबंध में कई अध्ययन चल रहे हैं। उन्होंने कई पशुओं को एक ही पिंजरे में रखकर देखा, जहां उनकी सब जरूरतें पूरी की गईं—और जंगलों में वे जैसे अपनी जरूरतें पूरी कर सकते थे, उससे बेहतर ढंग से पूरी की गईं—लेकिन वे पागल हो जाते हैं। क्योंकि उनके पास अपना क्षेत्र नहीं होता। जब हमेशा ही कोई-न-कोई पास होता है तो वे तनाव से भर जाते हैं, भयभीत, लड़ने को तैयार हो जाते हैं। हर समय लड़ने की तत्परता उन्हें इतने तनाव से भर देती है कि या तो उनकी हृदयगति रुक जाती है या वे पागल हो जाते हैं। कई बार तो पशु आत्महत्या भी कर लेते हैं, क्योंकि उनके मन पर दबाव बहुत बढ़ जाता है। और कई तरह की विकृतियां उनमें पैदा हो जाती हैं जो जंगल में रहने पर नहीं होतीं। जंगल में बंदर बिलकुल भिन्न होते हैं, जब वे चिड़ियाघर के पिंजरे में बंद होते हैं तो बड़ा असामान्य व्यवहार करने लगते हैं।

पहले ऐसा सोचा जाता था कि बंधन के कारण यह समस्या पैदा हो रही है। पर अब पता लगा है कि इसका कारण बंधन नहीं है। यदि तुम पिंजरे में उन्हें उतनी जगह दे दो जितनी उन्हें चाहिए तो वे प्रसन्न रहेंगे, फिर कोई समस्या न होगी। लेकिन खुली जगह उनकी आंतरिक जरूरत है, जब कोई उसमें प्रवेश करता है तो उनके मन पर दबाव पड़ने लगता है। उनका मन तनाव से भर जाता है; न वे ठीक से सो सकते हैं, न खा सकते हैं, न प्रेम कर सकते हैं।

इन सब अध्ययनों के कारण अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण मनुष्यता विक्षिप्त हुई जा रही है, दबाव बहुत अधिक हो गया है। तुम कहीं भी अकेले नहीं हो। ट्रेन में, बस में, दफ्तर में, हर जगह भीड़ ही भीड़ है। मनुष्य को भी खुली जगह की जरूरत है, अकेले होने की जरूरत है, लेकिन कहीं कोई जगह ही नहीं है, तुम कभी भी अकेले नहीं हो। जब तुम घर आते हो तो वहां पत्नी है, बच्चे हैं, सगे-संबंधी आते रहते हैं, और अभी भी वे समझते हैं कि अतिथि भगवान् का रूप होता है। पहले ही इतने दबाव के कारण तुम विक्षिप्त हो रहे हो। तुम पत्नी को यह नहीं कह सकते, 'मुझे अकेला छोड़ दो!' वह गुस्से से कहेगी, 'क्या मतलब?' वह सारे दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

मन को विश्रांत होने के लिए अवकाश चाहिए।

यह सूत्र बहुत ही सुंदर और वैज्ञानिक है, 'तब मन के भारों का अंत हो जाता है।'

जब तुम अकेले किसी निर्जन पहाड़ी पर चले जाते हो तो तुम्हारे चारों तरफ खुलापन, अनंत विस्तार होता है। भीड़ का, दूसरों का भार तुम पर नहीं रहता। तुम्हें अधिक गहरी नींद आएगी। सुबह तुम्हारे जागने में और ही बात होगी, तुम मुक्त अनुभव

करोगे। भीतर से कोई दबाव नहीं होगा। तुम्हें लगेगा जैसे तुम किसी कारागृह से बाहर आ गए, किन्हीं जंजीरों से मुक्त हो गए।

यह अच्छा है। लेकिन हम भीड़ के इतने आदी हो गए हैं कि कुछ ही दिन, तीन या चार दिन तुम्हें अच्छा लगेगा, फिर भीड़ में वापस जाने का मन होने लगेगा। हर छुट्टियों में तुम कहीं जाते हो, और तीन दिन बाद लौटने का मन होने लगता है। आदत के कारण तुम अपने को ही बेकार लगने लगते हो। अकेले तुम्हें बेकार लगता है, तुम कुछ कर नहीं सकते। और यदि तुम कुछ करते भी हो तो किसी को पता नहीं चलेगा, कोई उसकी सराहना नहीं करेगा। अकेले तुम कुछ भी नहीं कर सकते, क्योंकि जीवनभर तुम दूसरों के लिए ही कुछ करते रहे हो। तुम बेकार अनुभव करते हो।

तो याद रखो, यदि तुम कभी भी इस एकाकी पागलपन का प्रयास करो तो उपयोगिता का विचार छोड़ दो, अनुपयोगी हो जाओ, तभी तुम अकेले हो सकते हो। क्योंकि असल में उपयोगिता तो समाज द्वारा तुम्हारे मन पर थोपी गई है। समाज कहता है, 'उपयोगी बनो, अनुपयोगी नहीं।' समाज चाहता है कि तुम एक निपुण आर्थिक इकाई, एक कुशल और उपयोगी वस्तु बनो। समाज नहीं चाहता कि तुम बस एक फूल बनो। नहीं, तुम अगर एक फूल भी बनते हो तो तुम्हें बिकने योग्य होना चाहिए। संसार तुम्हें बाजार में रखना चाहता है, ताकि कुछ उपयोग हो सके। केवल बाजार में ही तुम उपयोगी हो सकते हो, अन्यथा नहीं। समाज सिखाता है कि उपयोगिता ही जीवन का लक्ष्य, जीवन का उद्देश्य है। यह व्यर्थ की बात है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अनुपयोगी हो जाओ। मैं यह कह रहा हूं कि उपयोगी होना लक्ष्य नहीं है। तुम्हें समाज में रहना है, उसके लिए उपयोगी रहना है, लेकिन साथ ही कभी-कभी अनुपयोगी होने के लिए भी तैयार रहना है। वह क्षमता बचाकर रखनी चाहिए, वरना तुम व्यक्ति नहीं वस्तु बन जाते हो। जब तुम एकांत में, निर्जन में जाओगे तो यह समस्या आएगी, तुम बेकार अनुभव करोगे।

मैं कई लोगों के साथ प्रयोग करता रहा हूं। कभी-कभी मैं उन्हें सुझाव देता हूं कि वे तीन सप्ताह के लिए या तीन महीने के लिए एकांत और मौन में चले जाएं। और मैं तुम्हें कहता हूं कि सात दिन के बाद वे वापस लौटना चाहेंगे और उनका मन वहां न रहने के सभी कारण खोजेगा ताकि वे वापस आ सकें। मैं उन्हें कहता हूं कि वे उन तर्कों को न सुनें और यह दृढ़ संकल्प कर लें कि जितने दिनों का निर्णय लिया है उससे पहले वापस नहीं आएंगे।

वे मुझसे कहते हैं कि हम अपनी मरज़ी से जा रहे हैं तो भला वापस क्यों आएंगे? मैं उनसे कहता हूं कि वे स्वयं को नहीं जानते। तीन से सात दिन के भीतर-भीतर यह मरज़ी समाप्त हो जाएगी; उसके बाद वापस आने की इच्छा होगी, क्योंकि समाज तुम्हारा नशा बन गया है। शांत क्षणों में तुम अकेले होने की बात सोच सकते हो, लेकिन जब तुम अकेले होओगे तो सोचने लगोगे, 'मैं क्या कर रहा हूं? यह सब तो व्यर्थ है।' तो मैं उनसे कहता हूं कि अनुपयोगी हो जाओ और उपयोगिता की भाषा भूल जाओ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि वे तीन सप्ताह या तीन महीने तक वहां रह जाते हैं तो वे आकर मुझसे कहते हैं, 'बहुत सुंदर अनुभव रहा, मैं बहुत खुश था, लेकिन यह विचार सतत तंग करता रहा कि इसका उपयोग क्या है? मैं सुखी था, शांत था, आनंदित था, लेकिन भीतर ही भीतर यह विचार भी चल रहा था कि इसका उपयोग क्या है? मैं कर क्या रहा हूं?'

स्मरण रखो, उपयोग समाज के लिए है। समाज तुम्हारा उपयोग करता है और तुम समाज का उपयोग करते हो, यह पारस्परिक संबंध है। लेकिन जीवन किसी उपयोग के लिए नहीं है। जीवन निष्प्रयोजन है, उद्देश्यविहीन है; यह तो एक लीला है, उत्सव है। तो जब इस विधि को करने के लिए तुम एकांत में जाओ तो शुरू से ही अनुपयोगी होने की तैयारी रखो, उसका आनंद लो, उससे दुखी मत होओ।

तुम सोच भी नहीं सकते कि मन कैसे-कैसे तर्क जुटाएगा। मन कहेगा, 'संसार इतनी समस्याओं से घिरा है और तुम यहां मौन बैठे हो! देखो वियतनाम में क्या हो रहा है! और पाकिस्तान में, चीन में क्या हो रहा है! तुम्हारा देश मरा जा रहा है, न भोजन है, न पानी है; यहां बैठे ध्यान करके तुम क्या कर रहे हो? इसका क्या उपयोग है? क्या इससे देश में समाजवाद आ जाएगा?'

मन सुंदर तर्क जुटाएगा; मन बहुत तार्किक है। मन शैतान है; तुम्हें फुसलाने का, विश्वास दिलाने का प्रयास करेगा कि तुम समय नष्ट कर रहे हो। लेकिन मन की मत सुनो, शुरू से ही तैयार रहो कि मैं समय नष्ट करूंगा, मैं तो बस वहां होने का आनंद लूंगा।

और संसार की चिंता न लो, संसार चलता रहता है। यहां सदा ही समस्याएं रहेंगी। यह संसार का ढंग है, तुम कुछ नहीं कर सकते। इसलिए कोई महान विश्व-प्रवर्तक, क्रांतिकारी या मसीहा बनने का प्रयास मत करो। तुम बस स्वयं ही बनो और किसी पत्थर, या नदी, या वृक्ष की तरह अपने एकांत का आनंद लो—अनुपयोगी! अब एक पत्थर का क्या उपयोग है जो वर्षा में, सूर्य की रोशनी में, तारों की छांव में पड़ा है? इस पत्थर का क्या प्रयोजन है? कोई उपयोग नहीं है। पत्थर इसी तरह होने का आनंद लेता है। बस एक पत्थर बन जाओ।

जापान के झेन मठों में पत्थरों के उद्यान होते हैं; वे विशेषकर इसीलिए पत्थरों के बगीचे बनाते हैं। उन बगीचों में कोई वृक्ष नहीं होते, केवल रेत होती है और पत्थर होते हैं। एक अकेला पत्थर है, बस वहां पड़ा रहता है। और गुरु शिष्य से कहता है, 'जाओ और उस पत्थर की तरह हो जाओ, पत्थर ही हो जाओ। संसार की परवाह मत करो। संसार में चाहे जो हो, वह पत्थर ऐसे ही पड़ा रहता है। उसे कोई चिंता नहीं है, वह सदा से ध्यान-मग्न है।'

जब तक तुम सच में अनुपयोगी होने को तैयार न हो जाओ, तुम अकेले नहीं हो सकते, तुम एकांत में नहीं रह सकते। और एक बार तुम इसकी गहराई को जान लो तो तुम वापस समाज में आ सकते हो। फिर तुम्हें लौटना ही चाहिए। क्योंकि

एकाकीपन जीवन का ढंग नहीं है, बस एक प्रशिक्षण है। यह जीवन जीने का ढंग नहीं बल्कि परिप्रेक्ष्य बदलने के लिए लिया गया एक गहन विश्राम है। एकांत तो बस समाज से हटने के लिए है, ताकि तुम स्वयं को देख सको कि तुम कौन हो।

तो ऐसा मत सोचो कि यह जीवन-शैली है। कई लोगों ने इसे जीने का ढंग ही बना लिया है। वे गलती कर रहे हैं। उन्होंने औषधि को भोजन बना लिया है। यह जीवन का ढंग नहीं, बस एक औषधि है। कुछ समय के लिए थोड़ा अलग हट जाओ, ताकि एक दूरी से देख सको कि तुम क्या हो और समाज तुम्हारे साथ क्या कर रहा है। समाज से बाहर होकर तुम बेहतर ढंग से देख सकते हो। तुम द्रष्टा हो सकते हो। समाज से बिना जुड़े, बिना उसमें हुए, तुम पर्वत शिखर पर बैठे एक द्रष्टा, एक साक्षी हो सकते हो। तुम इतनी दूर हो—बिना विचलित हुए, पक्षपात-रहित तुम देख सकते हो।

तो यह बात समझ लो कि यह जीवन का ढंग नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम संसार छोड़ दो और हिमालय में कहीं साधु बनकर बैठ जाओ। नहीं! लेकिन कभी-कभी वहां जाओ, विश्राम करो, पत्थर की तरह निष्प्रयोजन, अकेले हो जाओ। संसार से स्वतंत्र, मुक्त होकर प्रकृति के हिस्से बन जाओ। तुम्हारा कायाकल्प हो जाएगा, तुम पुनरुज्जीवित हो जाओगे। फिर समाज में और भीड़ में वापस लौट आओ और उस सौंदर्य, उस मौन को अपने साथ लाने का प्रयास करो जो तुम्हें एकांत में घटित हुआ था। अब उसे अपने साथ ले आओ, उससे संबंध मत तोड़ो। भीड़ में गहरे जाओ, लेकिन उसका हिस्सा मत बनो। भीड़ को अपने बाहर ही रहने दो, तुम अकेले रहो।

और जब तुम भीड़ में भी अकेले होने में सक्षम हो जाते हो, तब तुम अपने वास्तविक एकांत को उपलब्ध हो जाते हो। पहाड़ पर अकेले होना तो सरल है, कोई बाधा नहीं होती, सारी प्रकृति तुम्हारी मदद करती है। बाजार में वापस आकर, दुकान में, दफ्तर में, घर में रहकर अकेले होना, यह एक उपलब्धि है। फिर तुमने उसे उपलब्ध किया, वह मात्र पहाड़ पर होने का संयोग भर न रहा। अब चेतना का गुणधर्म ही बदल गया।

तो भीड़ में अकेले हो रहो। भीड़ तो बाहर रहेगी ही, उसे भीतर मत आने दो। जो भी तुमने उपलब्ध किया है उसे बचाओ, उसकी रक्षा करो, उसे डांवाडोल मत होने दो। और जब भी तुम्हें लगे कि वह अनुभूति थोड़ी क्षीण हो गई है, कि अब तुम उसे चूक रहे हो, कि समाज ने उसे विचलित कर दिया है, कि उस पर धूल जम गई है, कि उसमें ताजगी न रही, वह अनुभव प्रदूषित हो गया, तो दोबारा चले जाओ। उस अनुभव को नया करने के लिए, जीवंत करने के लिए समाज से बाहर हो जाओ।

फिर एक क्षण आएगा कि यह वसंत सदा ताजा रहेगा और कोई भी उसे प्रदूषित नहीं कर पाएगा, संदूषित नहीं कर पाएगा, फिर कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

तो यह बस एक विधि है, जीने की शैली नहीं। न तो साधु बन जाओ, न साध्वी बन जाओ, न ही किसी मठ में सदा-सदा के लिए रहने चले जाओ। वह बात ही बकवास है, क्योंकि यदि तुम सदा ही मठ में रहते हो तो तुम कभी नहीं जान पाओगे कि जो

तुम्हें मिला है वह तुम्हारी उपलब्धि है या मठ ने तुम्हें दिया है। हो सकता है वह उपलब्धि वास्तविक न हो, सांयोगिक हो। वास्तविक को कसौटी पर कसना होता है। वास्तविक अनुभव को समाज की कसौटी पर परखना पड़ता है। और जब यह अनुभव कभी न टूटे, तुम उस पर भरोसा कर सको, कुछ भी उसे डांवाडोल न कर सके, तो वह सच्चा है, प्रामाणिक है।

अनंत अंतरिक्ष को अपने आनंद-शरीर से भर दो

दूसरी विधि :

97. अंतरिक्ष को अपना ही आनंद-शरीर मानो।

यह दूसरी विधि पहली विधि से ही संबंधित है। आकाश को अपना ही आनंद-शरीर समझो। एक पहाड़ी पर बैठकर, जब तुम्हारे चारों ओर अनंत आकाश हो, तुम इसे कर सकते हो। अनुभव करो कि समस्त आकाश तुम्हारे आनंद-शरीर से भर गया है।

सात शरीर होते हैं। आनंद-शरीर अंतिम शरीर है। इसीलिए तो जैसे-जैसे तुम भीतर जाते हो तुम आनंदित अनुभव करते हो। क्योंकि तुम आनंद-शरीर के निकट पहुंच रहे हो, आनंद की पर्त पर पहुंच रहे हो। आनंद-शरीर तुम्हारी आत्मा के चारों ओर है। भीतर से बाहर की तरफ जाते हुए यह पहला और बाहर से भीतर की ओर आते हुए अंतिम शरीर है। तुम्हारी मूल सत्ता, तुम्हारी आत्मा के चारों ओर आनंद की एक पर्त है, इसे आनंद-शरीर कहते हैं।

पर्वत शिखर पर बैठे हुए अनंत आकाश को देखो, अनुभव करो कि सारा आकाश, सारा अंतरिक्ष तुम्हारे आनंद-शरीर से भर गया है। अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर आनंद से भर गया है, अनुभव करो कि तुम्हारा आनंद-शरीर फैल गया है और पूरा आकाश उसमें समा गया है।

लेकिन यह तुम कैसे महसूस करोगे? तुम्हें तो पता ही नहीं कि आनंद क्या है तो तुम उसकी कल्पना कैसे करोगे? यह बेहतर होगा कि तुम पहले यह अनुभव करो कि पूरा आकाश मौन से भर गया है, आनंद से नहीं। आकाश को मौन से भरा हुआ अनुभव करो।

और प्रकृति इसमें सहयोग देगी, क्योंकि प्रकृति में ध्वनियां भी मौन ही होती हैं। शहरों में तो मौन भी शोर से भरा होता है। प्राकृतिक ध्वनियां मौन होती हैं, क्योंकि वे विघ्न नहीं डालती, वे लयबद्ध होती हैं। तो ऐसा मत सोचो कि मौन अनिवार्य रूप से ध्वनि का अभाव है। नहीं, एक संगीतमय ध्वनि मौन हो सकती है, क्योंकि वह इतनी लयबद्ध है कि वह तुम्हें विचलित नहीं करती बल्कि वह तुम्हारे मौन को गहराती है।

तो जब तुम प्रकृति में जाते हो तो बहती हुई हवा के झोंके, झरने, नदी या और भी जो ध्वनियां हैं वे लयबद्ध होती हैं, वे एक पूर्ण का निर्माण करती हैं, वे बाधा नहीं डालतीं। उन्हें सुनने से तुम्हारा मौन और गहरा हो सकता है। तो पहले महसूस करो

कि सारा आकाश मौन से भर गया है; गहरे से गहरे अनुभव करो कि आकाश और शांत होता जा रहा है, कि आकाश ने मौन बनकर तुम्हें घेर लिया है।

और जब तुम्हें लगे कि आकाश मौन से भर गया है, केवल तभी आनंद से भरने का प्रयास करना चाहिए। जैसे-जैसे मौन गहराएगा तुम्हें आनंद की पहली झलक मिलेगी। जैसे जब तनाव बढ़ता है तो तुम्हें दुख की पहली झलक मिलती है; ऐसे ही जब मौन गहराएगा तो तुम अधिक शांत, विश्रांत और आनंदित अनुभव करोगे। और जब वह झलक मिलती है तो तुम कल्पना कर सकते हो कि अब पूरा आकाश आनंद से भरा हुआ है।

'अंतरिक्ष को अपना ही आनंद-शरीर मानो।'

सारा आकाश तुम्हारा आनंद-शरीर बन जाता है।

तुम इसे अलग से भी कर सकते हो, इसे पहली विधि से जोड़ने की जरूरत नहीं है, लेकिन परिस्थिति वही जरूरी है—अनंत विस्तार, मौन, आस-पास किसी मनुष्य का न होना।

आस-पास किसी मनुष्य के न होने पर इतना जोर क्यों है? क्योंकि जैसे ही तुम किसी मनुष्य को देखोगे तुम पुराने ढंग से प्रतिक्रिया करने लगोगे। तुम बिना प्रतिक्रिया किए किसी मनुष्य को नहीं देख सकते, तत्क्षण तुम्हें कुछ-न-कुछ होने लगेगा। यह तुम्हें तुम्हारे पुराने ढर्रे पर लौटा लाएगा। यदि तुम्हें आस-पास कोई मनुष्य नजर न आए तो तुम भूल जाते हो कि तुम मनुष्य हो। और यह भूल जाना अच्छा ही है कि तुम मनुष्य हो, समाज के अंग हो। और केवल इतना स्मरण रखना अच्छा है कि तुम बस हो, चाहे यह न भी पता हो कि तुम क्या हो। तुम किसी व्यक्ति से, किसी समाज से, किसी दल से, किसी धर्म से जुड़े हुए नहीं हो। यह न जुड़ना सहयोगी होगा।

तो यह अच्छा होगा कि तुम अकेले कहीं चले जाओ और इस विधि को करो। अकेले इस विधि को करना सहयोगी होगा, लेकिन किसी ऐसी चीज से शुरू करो जो तुम अनुभव कर सकते हो। मैंने लोगों को ऐसी विधियां करते हुए देखा है जिनका वे अनुभव ही नहीं कर सकते। यदि तुम अनुभव ही न कर सको, यदि एक झलक का भी अनुभव न हो, तो सारी बात ही झूठ हो जाती है।

एक मित्र मेरे पास आए और कहने लगे, 'मैं इस बात की साधना कर रहा हूं कि परमात्मा सर्वव्यापी है।'

तो मैंने उनसे पूछा, 'साधना कर कैसे सकते हो? तुम कल्पना क्या करते हो? क्या तुम्हें परमात्मा का कोई स्वाद, कोई अनुभव है? क्योंकि केवल तभी उसकी कल्पना कर पाना संभव होगा। वरना तो तुम बस सोचते रहोगे कि कल्पना कर रहे हो और कुछ भी नहीं होगा।'

तो तुम कोई भी विधि करो, इस बात को स्मरण रखो कि पहले तुम्हें उसी से शुरू करना चाहिए जिससे तुम परिचित हो; हो सकता है तुम्हारा उसके साथ पूरा परिचय न हो परंतु थोड़ी सी झलक जरूर होगी। केवल तभी तुम एक-एक कदम बढ़ सकते हो।

लेकिन बिलकुल अनजानी चीज पर मत कूद पड़ो, क्योंकि तब न तो तुम उसको अनुभव कर पाओगे, न उसकी कल्पना कर पाओगे।

इसी कारण से बहुत से गुरुओं ने, विशेषकर बुद्ध ने, परमात्मा शब्द को ही छोड़ दिया। बुद्ध ने कहा, 'उसके साथ तुम साधना शुरू नहीं कर सकते। वह तो परिणाम है और परिणाम को तुम शुरू में नहीं ला सकते। तो प्रारंभ से ही शुरू करो।' उन्होंने कहा, 'परिणाम को भूल जाओ, परिणाम स्वयं ही आ जाएगा।' और अपने शिष्यों को उन्होंने कहा, 'परमात्मा के बारे में मत सोचो, करुणा के बारे में सोचो, प्रेम के बारे में सोचो।'

तो वे यह नहीं कहते कि तुम परमात्मा को हर जगह देखने की कोशिश करो, तुम तो बस सबके प्रति करुणा से भर जाओ—वृक्षों के प्रति, मनुष्यों के प्रति, पशुओं के प्रति। बस करुणा को अनुभव करो, सहानुभूति से भर जाओ, प्रेम को जन्म दो। क्योंकि चाहे थोड़ा सा सही, फिर भी प्रेम को तुम जानते हो। हर किसी के जीवन में प्रेम जैसा कुछ होता है। तुमने किसी से चाहे प्रेम न किया हो, पर तुमसे तो किसी ने प्रेम किया ही होगा, कम-से-कम तुम्हारी मां ने तो किया ही होगा। उसकी आंखों में तुमने पाया होगा कि वह तुम्हें प्रेम करती है।

बुद्ध कहते हैं, 'अस्तित्व के प्रति मातृत्व से भर जाओ और गहन करुणा अनुभव करो। अनुभव करो कि पूरा जगत करुणा से भर गया है। फिर सब कुछ अपने आप हो जाएगा।'

तो इसे आधारभूत नियम की भांति स्मरण रखो—सदा ऐसी ही चीज से शुरू करो जिसे तुम महसूस कर सकते हो, क्योंकि उसके माध्यम से ही अज्ञात प्रवेश कर सकता है।

आज इतना ही।

70

तपश्चर्या : अकेलेपन से गुजरने का साहस

प्रश्न-सार

1. *अकेलापन बहुत काटता है। क्या करें?*
2. *एकांत और पूर्णता में सामंजस्य कैसे बिठाएं?*
3. *संबंधों को बढ़ाएं या घटाएं?*
4. *यौन का आकर्षण क्या गर्भ में वापस लौटने का आकर्षण है?*
5. *आपका 'हम' से क्या तात्पर्य है?*

पहला प्रश्न :

एकांत में स्वयं का सामना करना बहुत भययुक्त और पीड़ादायी है। क्या करें?

यह भययुक्त भी है और पीड़ादायी भी, और व्यक्ति को इसे झेलना ही होता है। इससे बचने के लिए, मन को इससे हटाने के लिए, इससे भागने के लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए। इसे झेलना ही पड़ेगा और इससे गुजरना ही पड़ेगा। यह कष्ट, यह पीड़ा तो शुभ लक्षण है कि अब तुम एक नए जन्म के निकट आ रहे हो, क्योंकि हर जन्म पीड़ा के बाद ही होता है। इससे बचा नहीं जा सकता और न ही इससे बचना चाहिए, क्योंकि यह तुम्हारे विकास का एक अंग है। इस पीड़ा और कष्ट को ही तपश्चर्या कहा गया है। तपस का अर्थ ही है—दुष्कर संयम, सघन प्रयास।

लेकिन यह पीड़ा क्यों है? यह समझने जैसा है, क्योंकि समझ तुम्हें इसमें से गुजरने में सहयोग देगी और यदि तुम जानते हुए इसमें से गुजरते हो तो तुम अधिक सरलता और शीघ्रता से इससे बाहर निकल आओगे।

जब तुम अकेले होते हो तो पीड़ा क्यों होती है? पहली बात तो यह है कि तुम्हारा अहंकार दिक्कत में पड़ जाता है। तुम्हारा अहंकार केवल दूसरों के साथ ही रह सकता है। अहंकार संबंधों से ही विकसित हुआ है, अकेले नहीं रह सकता। तो यदि परिस्थिति ऐसी हो जाए जिसमें कि अहंकार बच ही न सके तो उसका दम घुटने लगता है, उसे अपनी मौत नजर आने लगती है। यह सबसे बड़ा कष्ट है। तुम्हें लगता है कि तुम ही मर रहे हो। पर तुम नहीं अहंकार मर रहा है, जिसे तुमने स्वयं समझ लिया है, जिससे

तुमने तादात्म्य बना लिया है। अकेले में अहंकार नहीं टिक सकता, क्योंकि वह दूसरों ने तुम्हें दिया है। वह एक दान है। जब तुम दूसरों को छोड़ते हो तो तुम अहंकार को अपने साथ नहीं ले जा सकते।

इसको ऐसे देखो—जब तुम समाज में हो तो लोग सोचते हैं कि तुम बहुत अच्छे आदमी हो। यह अच्छाई अकेले में नहीं टिक सकती, क्योंकि यह तो दूसरे तुम्हारे बारे में सोचते थे। अब वे लोग तो हैं नहीं। तुम्हारी कोई छवि नहीं बन सकती। वह छवि आधारहीन हो गई। धीरे-धीरे वह छवि गिर जाएगी और तुम्हें बहुत बुरा लगेगा, क्योंकि तुम इतने अच्छे व्यक्ति थे और अब तुम नहीं रहे।

और केवल अच्छे लोगों को ही कष्ट नहीं होगा, यदि तुम बुरे हो तो यह खयाल भी तुम्हें दूसरों के द्वारा ही दिया गया है। वह भी ध्यान आकर्षित करने का एक उपाय है। जब कई लोग तुम्हें बुरा कहते हैं तो वे तुम्हारी ओर ध्यान देते हैं। वे तुम्हारे प्रति उदासीन नहीं रह सकते, उन्हें तुम्हारी ओर ध्यान देना ही पड़ेगा। तुम कुछ हो, बुरे आदमी हो, खतरनाक हो। जब तुम एकांत में चले जाते हो तो तुम ना-कुछ हो जाते हो। वह बुरी छवि खो जाएगी। और तुम उसी पर जी रहे थे, तुम्हारा अहंकार उसी से पोषित हो रहा था।

तो अच्छे आदमी और बुरे आदमी मूल रूप से भिन्न नहीं होते, दोनों का अहंकार पोषित हो रहा है। उनके माध्यम अलग हो सकते हैं, लेकिन उनके लक्ष्य तो एक ही हैं। बुरा भी दूसरों पर आश्रित है, अच्छा भी। वे दोनों समाज में रहते हैं। पापी और पुण्यात्मा दोनों समाज में ही होते हैं। अकेले में न तो तुम पापी होते हो न पुण्यात्मा।

तो एकांत में तुम जो भी अपने बारे में जानते हो, सब गिर जाता है; धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। थोड़े समय तक तुम अपने अहंकार को चलाए रख सकते हो—और वह भी तुम्हें कल्पना से करना पड़ेगा—लेकिन यह बहुत समय तक नहीं चल सकता। समाज के बिना तुम उखड़ जाते हो; वह धरती ही नहीं रहती जिससे तुम भोजन प्राप्त करते हो। यही मूल पीड़ा है। तुम्हें अब निश्चित नहीं होता कि तुम कौन हो—तुम एक धुंधला-धुंधला व्यक्तित्व, विलीन होता हुआ व्यक्तित्व रह जाते हो।

लेकिन यह अच्छा है, क्योंकि जब तक यह झूठे तुम समाप्त नहीं होते तब तक वास्तविक का उदय नहीं हो सकता। जब तक तुम पूरी तरह घुलकर मिट न जाओ, वास्तविक प्रकट नहीं हो सकता। यह झूठ सिंहासन पर आसीन है। उसे सिंहासन से उतार फेंकना है।

एकांत में रहने से वह सब, जो झूठ है, समाप्त हो सकता है। और समाज ने जो भी दिया है वह झूठ है, जो तुम्हारे साथ पैदा हुआ है वही वास्तविक है। जो भी तुम्हारे कारण है, किसी और का दिया हुआ नहीं है, वास्तविक है। लेकिन झूठ को तो जाना ही होगा। और झूठ बड़ी संपदा है—तुम्हारे उसमें इतने न्यस्त स्वार्थ हैं, तुमने उसे इतना सम्हाला है। तुम्हारी सारी आशाएं उसमें अटकी हैं। तो जब वह तिरोहित होने लगेगा,

तुम्हें भय लगेगा, कंपकंपी होगी, 'मैं अपने साथ क्या कर रहा हूं? मैं अपना पूरा जीवन बरबाद कर रहा हूं, पूरा ढांचा तोड़ रहा हूं।'

तो भय होगा। लेकिन तुम्हें इस भय से गुजरना होगा, केवल तभी तुम अभय हो सकते हो। मैं यह नहीं कहता कि तुम बहादुर हो जाओगे, नहीं। मैं कहता हूं कि तुम अभय हो जाओगे। बहादुरी तो भय का ही हिस्सा है। तुम कितने ही बहादुर क्यों न होओ, भय पीछे छिपा ही हुआ है। मैं कहता हूं अभय। तुम बहादुर नहीं हो जाओगे; जब भय ही न रह जाए तो बहादुर होने की जरूरत भी नहीं है। बहादुरी और भय दोनों ही असंगत हो जाते हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो तुम्हारे बहादुर आदमी और कुछ नहीं बस ऐसे ही हैं जैसे तुम शीर्षासन कर रहे हो। तुम्हारी बहादुरी भीतर छिपी हुई है और भय बाहर है; उनका भय भीतर छिपा हुआ है और बहादुरी बाहर है। तो जब तुम अकेले होते हो तो बड़े बहादुर होते हो, जब तुम किसी चीज के बारे में सोचते हो तो बड़े बहादुर होते हो, लेकिन जब असली परिस्थिति आती है तो तुम भयभीत हो जाते हो। योद्धाओं, महान् योद्धाओं के बारे में कहा जाता है कि युद्ध में जाने से पहले वे उतने ही भयभीत होते हैं जितना कोई और हो सकता है।

भीतर तो कंपन है, लेकिन वे युद्ध में उतर जाएंगे। वे इस भय को भीतर अचेतन में धकेल देंगे; और अंदर जितना ही भय होगा, उतना ही वे बहादुर होने का मुखौटा ओढ़ लेंगे। वे एक कवच पहन लेंगे। तुम उस कवच की ओर देखते हो, वह बहादुर दिखाई पड़ता है, लेकिन गहरे में भय मौजूद है। व्यक्ति केवल तभी अभय हो सकता है यदि वह गहनतम भय से गुजरा हो—अहंकार के, छवि के, व्यक्तित्व के मिटने के भय से गुजरा हो।

यह मृत्यु है, क्योंकि तुम्हें पता नहीं कि इससे नए जीवन का जन्म होगा। इस प्रक्रिया के दौरान तो तुम्हें केवल मृत्यु का ही पता चलेगा। जिस तरह तुम हो, उस झूठी सत्ता के प्रति जब तुम मृत हो जाओगे, केवल तभी तुम्हें पता लगेगा कि यह मृत्यु तो अमरत्व का द्वार थी। वह सब कुछ जिसे तुमने इतना संजोया था, तुमसे छीना जा रहा है—तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारे विचार, वह सब कुछ जिसे तुम सुंदर समझते थे।

सब कुछ तुम्हें छोड़ रहा है। तुम्हें उघाड़ा जा रहा है। तुम्हारे सब चोगे-मुखौटे छीने जा रहे हैं। इस प्रक्रिया के दौरान भय होगा। लेकिन यह भय आधारभूत है, आवश्यक है, अपरिहार्य है; उससे गुजरना ही पड़ता है। उसे समझो, उससे बचने की कोशिश मत करो, उससे भागने की कोशिश मत करो। क्योंकि हर पलायन तुम्हें वापस लौटा जाएगा, तुम फिर अपने व्यक्तित्व में प्रवेश कर जाओगे।

जो लोग गहरे मौन और एकांत में जाते हैं, वे हमेशा मुझसे पूछते हैं, 'भय उठेगा तो क्या करें?' मैं उन्हें कुछ करने को नहीं कहता, बस भय को जीने को कहता हूं। यदि कंपकंपी उठती है तो कांपो, उसे रोकते क्यों हो? यदि कोई आंतरिक भय है और तुम उससे कांप रहे हो तो कांपो। कुछ मत करो। उसे होने दो। वह अपने आप ही

चला जाएगा। यदि तुम उससे बचोगे—और तुम बच सकते हो। तुम राम-राम जपना शुरू कर सकते हो; तुम किसी मंत्र को पकड़ सकते हो, ताकि तुम्हारा मन दूसरी ओर चला जाए। तुम्हारा मन दूसरी ओर उलझ जाएगा और भय नहीं होगा। लेकिन तुमने उसे अचेतन में फेंक दिया। भय उठ रहा था—जो कि अच्छा था, तुम उससे मुक्त हो सकते थे—वह तुम्हें छोड़ रहा था।

और जब भय तुम्हें छोड़ता है तब तुम कांपते हो। यह स्वाभाविक है, क्योंकि शरीर की, मन की हर कोशिका में जो ऊर्जा सदा दबी थी, वह बाहर निकल रही है। कंपन होगा, कंपकंपी छूटेगी; एकदम सब भूकंप की तरह हो जाएगा। पूरी आत्मा इससे विचलित हो जाएगी। और उसे हो जाने दो। कुछ भी मत करो।

यह मेरा सुझाव है। राम का नाम भी मत जपो। इस भय के साथ कुछ भी करने का प्रयास मत करो, क्योंकि तुम जो भी करोगे उससे दोबारा दमन हो जाएगा। बस भय को उठने देने से ही भय तुम्हें छोड़ जाएगा।

और जब भय तुम्हें छोड़ेगा तो तुम बिलकुल दूसरे ही आदमी हो जाओगे। झंझावात जा चुका होगा और तुम केंद्रित हो जाओगे। इतने केंद्रित जितने कि तुम पहले कभी भी न थे। और एक बार तुम्हें घटनाओं को होने देने की कला आ जाए तो तुम्हारे हाथ वह कुंजी लग जाएगी जो भीतर के सब द्वार खोल देती है। फिर जो भी हो, उसे होने दो, उससे बचो मत।

यदि बस तीन महीने के लिए तुम पूरी तरह से एकांत और मौन में चले जाओ, किसी चीज से संघर्ष न करो, जो भी हो उसे होने दो, तो तीन महीने के भीतर पुराना सब समाप्त हो जाएगा और नए का आविर्भाव होगा। लेकिन राज है होने देना, चाहे वह अनुभव कितना ही भयावह, कितना ही पीड़ादायी, कितना ही खतरनाक हो, कितना ही मौत जैसा लगे। कई क्षण आएंगे जब तुम्हें लगेगा कि अगर तुमने कुछ न किया तो तुम पागल हो जाओगे। और अनजाने में ही तुम कुछ करने लगोगे। हो सकता है तुम्हें पता हो कि कुछ भी नहीं किया जा सकता, लेकिन तुम नियंत्रण में नहीं होगे और तुम कुछ करने लगोगे।

यह ऐसे ही है जैसे कि तुम आधी रात को किसी अंधेरी सड़क से गुजर रहे हो और तुम्हें भय लगने लगे, क्योंकि आस-पास कोई भी नहीं है और सड़क भी अनजानी है, तो तुम सीटी बजाने लगते हो। सीटी बजाने से क्या होगा? तुम्हें पता है कि इससे कुछ नहीं हो सकता। तुम एक गीत गाने लगते हो। तुम जानते हो कि गीत गाने से कुछ भी नहीं होगा, अंधेरा मिट नहीं सकता, तुम अकेले ही रहोगे, लेकिन फिर भी इससे मन दूसरी ओर चला जाता है। यदि तुम सीटी बजाने लगते हो तो सीटी बजाने से तुम्हें थोड़ी हिम्मत बंधती है और तुम अंधकार को भूल जाते हो। तुम्हारा मन सीटी बजाने में लग जाता है और तुम्हें लगता है कि सब ठीक है।

कुछ हुआ नहीं। सड़क भी वही है, अंधकार भी वही है, अगर कोई खतरा है तो वह भी वैसा का वैसा है, लेकिन तुम ज्यादा सुरक्षित महसूस करने लगते हो। सब कुछ

वैसा ही है, लेकिन अब तुम कुछ कर रहे हो। तुम किसी नाम, किसी मंत्र का जाप करने लग सकते हो, वह भी एक तरह का सीटी बजाना है। उससे तुम्हें बल मिलेगा। लेकिन वह बल खतरनाक है, वह बल भी समस्या बन जाएगा, क्योंकि वह बल तुम्हारा पुराना अहंकार बन जाने वाला है। तुम उसे पुनरुज्जीवित कर रहे हो।

तो द्रष्टा बने रहो और जो भी हो उसे होने दो। भय के पार जाने के लिए उसका साक्षात्कार करना होता है। विषाद से ऊपर उठने के लिए उसे देखना होता है। और वह देखना जितना प्रामाणिक होगा, बिलकुल आमने-सामने, जितना ही तुम चीजों को जैसी हैं वैसी देखना शुरू कर दोगे, उतनी जल्दी ही घटना घटेगी।

समय इसलिए लगता है क्योंकि तुम्हारी प्रामाणिकता सघन नहीं है। तो तुम्हें तीन दिन लग सकते हैं, तीन महीने लग सकते हैं, तीन वर्ष लग सकते हैं या तीन जन्म लग सकते हैं—यह सघनता पर निर्भर करता है। वास्तव में तो तीन मिनट भी पर्याप्त हैं, तीन सेकेंड भी पर्याप्त हैं, लेकिन तब तुम्हें घोर नर्क से गुजरना पड़ेगा। इतनी सघनता को शायद तुम झेल न पाओ, सहन न कर पाओ। यदि कोई उसका साक्षात्कार कर सके जो भीतर छिपा है तो वह समाप्त हो जाता है। और जब वह समाप्त हो जाता है तो तुम दूसरे ही हो जाते हो। क्योंकि जो समाप्त हो गया है वह पहले तुम्हारा हिस्सा था, अब वह तुम्हारा हिस्सा नहीं है।

तो यह मत पूछो कि क्या करें। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। कुछ न करना, साक्षी रहना, बिना प्रयास के जो हो उसे देखना, जरा-सा भी प्रयास न करना, बस होने देना···। अकर्मण्य बने रहो और जो हो रहा है उसे गुजर जाने दो। भय सदा गुजर जाता है। जब तुम कुछ करते हो तो वास्तव में सब अनकिया हो जाता है, क्योंकि तुम बाधा डाल रहे हो।

कौन डालेगा बाधा? कौन है भयभीत? वह जो रोग है वही बाधा डालेगा। वह अहंकार जिसे छोड़ना है, बाधा डालेगा।

मैंने तुम्हें कहा कि अहंकार समाज का अंग है। तुमने समाज तो छोड़ दिया पर तुम वह अंग नहीं छोड़ना चाहते जो समाज ने तुम्हें दिया है। समाज में उसकी जड़ें हैं; समाज के बिना वह जी नहीं सकता। तो या तो तुम्हें अहंकार छोड़ना पड़ेगा या एक नया समाज खड़ा करना पड़ेगा, जिसमें वह जी सके।

तब तुम एक वैकल्पिक समाज का निर्माण कर ले सकते हो, यह मन की गहरी चाल है। ऐसा सदा हुआ है। तुम एक भिन्न समाज पैदा कर सकते हो। तुम एक आश्रम खड़ा कर सकते हो। बीस लोग जो एकांत में रहना चाहते हों एक मठ बना सकते हैं, तब वह मठ एक वैकल्पिक समाज बन गया। तो वे समाज से हट जाते हैं, परंतु एक दूसरा समाज निर्मित कर लेते हैं। तो मूलतः कुछ बदलता नहीं। वे वैसे ही रहते हैं। बल्कि शायद वे और अहंकारी हो सकते हैं, क्योंकि अब वे चुने हुए लोग हैं। संसार उन्होंने छोड़ दिया है मगर दूसरे समाज का निर्माण कर लिया है, संबंध फिर निर्मित होने लगे। फिर एक मुखिया होगा, फिर शिष्य होंगे, फिर एक गुरु होगा, और सारी शृंखला

एक लघु रूप में फिर आरंभ हो जाती है। और फिर अच्छे शिष्य होते हैं, बुरे शिष्य होते हैं, सफल और असफल होते हैं···सब वही का वही हो जाता है। एक छोटे समूह में सारा समाज वापस आ गया।

उससे कुछ नहीं होगा। अब पश्चिम में ऐसा हो रहा है। बड़ी संख्या में युवा लोग समाज छोड़ रहे हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि समाज सड़-गल गया है, मर रहा है। और उन्हें लगता है कि समाज इतना सड़ गया है कि इसे बदला नहीं जा सकता। यह एक नई घटना है। युवा लोग सदा से सोचते रहे हैं कि समाज सड़ गया है, पर वे सोचते रहे हैं कि इसे बदला जा सकता है, रूपांतरित किया जा सकता है, इसलिए क्रांति की जरूरत है। किसी समाज या सभ्यता की अंतिम अवस्था में ही ऐसा होता है कि लोग सोचना शुरू कर देते हैं कि कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्रांति एक बकवास है, समाज इतना मर चुका है कि कोई इसे पुनरुज्जीवित नहीं कर सकता, बदल नहीं सकता। तो तुम बस उससे बाहर निकल आते हो। तुम कुछ नहीं कर सकते, घर में आग लगी है तो तुम बस उससे भाग निकलते हो।

पश्चिम में ऐसा ही हो रहा है—हिप्पी, बीटल, यिप्पी, इस तरह के लोग समाज छोड़ रहे हैं। लेकिन वे एक दूसरा समाज, वैकल्पिक समाज बन गए हैं। आम समाज में यदि तुम लंबे बाल रखते हो तो दूसरे तुम्हारी ओर ऐसे देखेंगे जैसे तुम भटक गए हो, कुछ गलत हो। हिप्पी समाज में यदि तुम्हारे बाल छोटे हैं तो तुम गलत हो। तुममें कोई गलती है।

लेकिन अंतर क्या है? आम समाज में यदि तुम गंदे रहते हो तो तुम गलत हो; तुम असंस्कृत, असभ्य, अनपढ़, अस्वीकार्य हो। लेकिन हिप्पी समाज में यदि तुम साफ रहते हो तो गलत हो। फिर तो तुम अभी पुराने मन के साथ चिपके हुए हो जो कहता है कि परमात्मा के बाद स्वच्छता ही है। परमात्मा तो बहुत पहले मर चुका, अब उसके बाद स्वच्छता भी मर गई है। परमात्मा के बिना वह जिंदा नहीं रह सकती।

लेकिन वही निंदा और वही प्रशंसा वहां भी है। तुम बिलकुल उलटे नियमों को लेकर एक वैकल्पिक समाज बना सकते हो। लेकिन उससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तुम्हारे अहंकार को पुनः घोषित किया जा सकता है। उसे उखाड़कर तुमने दूसरी जगह लगा दिया। नई धरती उसे मिल गई।

एकाकी होने का अर्थ है किसी वैकल्पिक समाज का निर्माण न करना। बस समाज से बाहर निकल जाओ; और तब समाज ने तुम्हें जो भी दिया है, तुम्हें छोड़ जाएगा। वह सब केवल एक वातावरण में, एक सामाजिक वातावरण में जीवित रह सकता है, उसके बाहर नहीं। तुम्हें वह छोड़ना ही पड़ेगा। यह पीड़ादायी तो होगा, क्योंकि तुम उसके साथ इतने व्यवस्थित हो, सब कुछ सुव्यवस्थित है। इस व्यवस्था में रहना तुम्हारे लिए बहुत आरामदायक हो गया है। जब तुम बदलते हो और अकेले हो जाते हो तो तुम सब आराम, सब सुविधाएं और जो कुछ भी समाज तुम्हें दे सकता है, छोड़ रहे हो। और जब समाज तुम्हें कुछ देता है तो तुमसे कुछ लेता भी है : तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारी आत्मा।

तो यह एक लेन-देन है। और जब तुम अपनी आत्मा को उसकी परिपूर्ण शुद्धता में पाने का प्रयास कर रहे हो तो तुम्हें यह लेन-देन बंद करना होगा। यह पीड़ादायी तो होगा, लेकिन यदि तुम इसमें से गुजर सको तो परम आनंद करीब ही है। समाज इतना दुखदायी नहीं है जितना एकाकीपन; समाज सांत्वना देता है, सुविधाजनक है, सुखद है। लेकिन तुम्हें एक तरह की नींद देता है। यदि तुम उसे छोड़ोगे तो असुविधा तो होगी ही। हर तरह की असुविधा होगी। उन असुविधाओं को इस समझ से झेलना होगा कि वे एकांत का, स्वयं को पुनः प्राप्त करने का अंग हैं। यही तप है, यही साधना है। और इससे तुम नए होकर, एक नई गरिमा और आभा, एक नई शुद्धता और निर्दोषता के साथ बाहर आते हो।

दूसरा प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि पूर्ण एकांत मनुष्य का मूल स्वभाव है, मनुष्य की परम दशा है। एक दिन आपने यह भी कहा था कि व्यक्तित्व झूठ है और मनुष्य अस्तित्व की संघटित (आर्गेनिक) पूर्णता में तरंग मात्र है। तो एकांत और पूर्णता में सामंजस्य कैसे हो सकता है?

सामंजस्य की कोई जरूरत नहीं है। एकांत ही पूर्णता है। लेकिन एकाकीपन का अर्थ व्यक्तित्व नहीं है। समाज के कारण ही तुम एक व्यक्ति हो। जब तुम सर्वथा अकेले होओगे तो व्यक्ति नहीं रह जाओगे।

व्यक्ति का अर्थ है समाज का एक हिस्सा, समाज की एक इकाई। जब तुम भीड़ में होते हो तो एक व्यक्ति होते हो; जब तुम भीड़ से बाहर निकल आते हो तो न केवल भीड़ पीछे छूट जाती है वरन् व्यक्ति भी पीछे छूट जाता है। वह व्यक्तित्व तुम्हें दिया गया था। व्यक्तित्व और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अकेले होने पर तुम व्यक्ति नहीं रह जाते। व्यक्ति को समाज के ढांचे में रहना होता है। यह ऐसा ही है जैसे मैंने कहा कि अकेले न तुम अच्छे होते हो न बुरे, न पापी होते हो न पुण्यात्मा, न सुंदर होते हो न कुरूप, न बुद्धिमान होते हो न मूर्ख। दोनों ही द्वैत समाप्त हो जाते हैं। दुई गिर जाती है।

व्यक्ति समाज के कारण है। व्यक्ति समाज की इकाई है। अकेले तुम व्यक्ति नहीं होते। इसलिए यह मत सोचो कि जब तुम अकेले होओगे तो व्यक्ति रहोगे। नहीं, तुम व्यक्ति नहीं होओगे। यदि कोई समाज न हो तो तुम व्यक्ति कैसे हो सकते हो? तुम बस होओगे, और तुम्हारा एकाकीपन ही पूर्णता होगा। अहंकार गिर जाएगा। और यह अहंकार ही है जो तुम्हें व्यक्तित्व का भाव देता है।

अकेले होने का यह अर्थ नहीं है कि तुम एक व्यक्ति हो, अकेले होने का अर्थ है कि अब समाज और व्यक्ति के बीच का विभाजन न रहा। इससे तुम्हें पूर्णता मिलेगी। अब तुम किसी चीज के हिस्से नहीं हो। तुम पूर्ण हो गए।

इसे अभिव्यक्त करना कठिन है, क्योंकि भाषा में यह बड़ा अजीब लगता है। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते कि जब तुम अकेले हो तो व्यक्ति कैसे नहीं होओगे। क्योंकि यदि तुम कल्पना करो कि किसी पहाड़ पर, हिमालय की किसी कंदरा में बैठे हुए हो तो स्वयं को तुम एक व्यक्ति की तरह ही सोचोगे—क्योंकि तुम जानते ही नहीं कि एकांत क्या है। एकांत का अर्थ है कि सब विचार, सारा मन, सारा व्यक्तित्व जो तुम्हें समाज ने दिया था, सब पीछे छूट गया। तुम बस एक रिक्तता, एक शून्य, एक ना-कुछ रह जाओगे। हिमालय की कंदरा में बैठे हुए कोई बैठा नहीं होगा, बस शून्य आकाश होगा।

बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। पूर्णिमा की रात थी और कुछ युवक जंगल में आए हुए थे। वे अपने साथ बहुत-सी शराब और एक युवा वेश्या को ले आए थे। लेकिन उन्होंने इतनी शराब पी ली और नशे में वे इतने धुत्त हो गए कि वेश्या भाग खड़ी हुई। जब उन्हें पता चला कि युवती उन्हें छोड़कर चली गई है तो वे उसे ढूंढ़ने निकले कि कहां गई?

खोजते-खोजते वे बुद्ध के पास पहुंचे जो वृक्ष के नीचे बैठे ध्यान कर रहे थे। तो उन युवकों ने उनसे पूछा, 'आपने एक सुंदर और नग्न युवती को इधर से गुजरते हुए अवश्य देखा होगा, क्योंकि यही एकमात्र रास्ता है और पूर्णिमा की रात है। तो आपने उस नग्न सुंदरी को गुजरते हुए अवश्य देखा होगा। आपने देखा उसे?'

बुद्ध ने अपनी आंखें खोलीं और कहा, 'कोई गुजरा तो अवश्य, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि वह स्त्री थी या पुरुष था। मैं यह नहीं कह सकता कि जो गुजरा वह सुंदर था या कुरूप। मैं यह भी नहीं कह सकता कि उसने वस्त्र पहने हुए थे या नहीं। कोई गुजरा तो अवश्य, मैंने पदचाप सुनी थी।'

वे तो बड़े चकित हुए और बोले, 'यह तो असंभव है।' बुद्ध ने कहा, 'पहले मैंने भी इस पर विश्वास न किया होता। जब मैं समाज का हिस्सा था तो यह असंभव था, लेकिन अब मैंने समाज को छोड़ दिया है और समाज की सारी धारणाएं भी छोड़ दी हैं। अब मेरे चारों ओर केवल प्रकृति घटित होती है। इसलिए मैंने किसी के गुजरने की आवाज तो सुनी; मेरे आंतरिक शून्य में बस वह आवाज पहुंची, बस इतना ही। कोई गुजरा।'

तुम एक मौन आंतरिक शून्य हो जाते हो। तुम व्यक्ति नहीं होते, क्योंकि तुम मन नहीं रहते। मन को गिराने के लिए एकांत सुझाया गया है। और मन के साथ सब गिर जाता है। एक क्षण आता है जब तुम्हें पता नहीं रहता कि तुम कौन हो; और वही क्षण है जहां से वास्तविक ज्ञान शुरू होगा।

एक क्षण आता है जब तुम बिलकुल भूल जाते हो कि तुम कौन हो; और पहले तुम जो जानते भी थे वह नहीं रहता, पुरानी सब पत्तियां गिर जाती हैं। यही सबसे कठिन और सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण है और अब कुछ समय के लिए एक अंतराल होगा। यह अंतराल तीव्र व्यथा से भरा होगा, क्योंकि पुराना तो जा चुका और नया अभी आया नहीं है। जब वृक्ष से पुरानी पत्तियां गिरेंगी तो कुछ दिन के लिए वृक्ष नग्न हो जाएगा और

बस नई कोंपलों के फूटने की प्रतीक्षा करेगा। नई पत्तियां आ रही हैं, वे रास्ते पर हैं, पुरानी पत्तियों ने जगह खाली कर दी है। अब जगह खाली है तो उस जगह को भरने के लिए नए की यात्रा शुरू हो गई है, देर-अबेर उसका आविर्भाव होगा।

लेकिन तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी। एकांत में ध्यान करते-करते समाज छूट जाएगा, मन छूट जाएगा, अहंकार छूट जाएगा और एक अंतराल पैदा होगा। तुम्हें उस अंतराल से भी गुजरना पड़ेगा। अब वृक्ष नई पत्तियों के आने की बाट जोह रहा है, लेकिन कोई कुछ कर नहीं सकता। वृक्ष क्या कर सकता है? उन्हें जल्दी लाने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता, वे अपने ही ढंग से आएंगी।

और यह अच्छा है कि पुराना छूट गया है, क्योंकि अब जगह खाली हो गई। नए के आविर्भाव के लिए जगह बन गई। अब कोई बाधा न होगी।

तो अंतर्मन का भी एक पतझड़ होता है। सारी पत्तियां गिर जाएंगी। एक गहन पीड़ा होगी। तुम उन पुरानी पत्तियों के साथ इतने दिन रहे हो कि तुम्हें लगेगा तुम कुछ खो रहे हो। और फिर प्रतीक्षा का एक शिशिर काल, एक आंतरिक शिशिर काल होगा जब तुम नग्न हो रहोगे—बिना पत्तियों के, आकाश की ओर उन्मुख एक नग्न वृक्ष। और तुम नहीं जानते कि क्या होने वाला है। अब सब कुछ ठहर गया है। अब कोई पक्षी तुम्हारी शाखाओं पर गीत गाने नहीं आते। अब कोई तुम्हारे नीचे, तुम्हारी छाया में बैठने, आराम करने नहीं आता। अब तुम्हें कुछ पता नहीं है कि तुम मर चुके हो या तुम्हारा कोई नया जन्म होने वाला है। यह बीच का अंतराल है।

ईसाई रहस्यदर्शियों ने इसे कहा है—आत्मा की अंधेरी रात—सूर्योदय से पहले। सब कृत्रिम प्रकाश बुझ गए हैं, रात बहुत अंधियारी हो गई है। और सूर्योदय से पहले का क्षण सर्वाधिक अंधकारमय होगा।

तो अंतरात्मा का एक शिशिर काल होता है, जब कोई पत्तियां नहीं होतीं, कोई पक्षी गीत नहीं गाते और कोई तुम्हारे नीचे विश्राम करने नहीं आता। तुम मृतवत अनुभव करते हो। सब कुछ रुक गया। सब गतियां बंद हो गईं। इससे गुजरना होगा—क्योंकि फिर वसंत आएगा, नई पत्तियां उगेंगी, नया जीवन, नए फूल आएंगे। तुम्हारे भीतर एक नया आयाम खुलेगा।

लेकिन पतझड़ को और शिशिर को याद रखो, केवल तभी वसंत संभव है। पतझड़ भी वसंत का हिस्सा है—यदि तुम समझ सको—वह वसंत के आने का ही मार्ग तैयार कर रहा है। तो पतझड़ वसंत के विरुद्ध नहीं है, केवल उसकी शुरुआत है। और वह अंतराल भी जरूरी है, क्योंकि उसमें तुम तैयार होते हो। पुराना जा चुका। अब तुम उससे दबे नहीं हो, उससे बोझिल नहीं हो। तुम गर्भवान हो। लेकिन गर्भ का मतलब है प्रतीक्षा, नया शिशु विकसित हो रहा है। इससे पहले कि वह जन्म ले, इस संसार में प्रकट हो, उसे गहरे अचेतन में छिपे रहना होगा, क्योंकि हर बीज को गहन अंधकार में, भूमि के नीचे छिपे रहना पड़ता है। तभी उसमें जीवन घटित होगा। यदि तुम बीज को सूर्य के प्रकाश में रख दो तो कुछ भी नहीं होगा। उसे गहन अंधकार की, एक गर्भ की जरूरत है।

तो जब तुम गर्भ से भरे हो तो शिशिर काल होगा—सब गति रुक जाती है, तुम्हें बस गर्भ को सम्हालना होता है—होशपूर्वक, समझपूर्वक, प्रेमपूर्वक, आशा से भरे, प्रार्थनापूर्ण, प्रतीक्षापूर्ण। और फिर वसंत आएगा। ऐसा सदा हुआ है। मनुष्य भी एक वृक्ष है।

और स्मरण रहे, एकांत ही पूर्णता है, वे विरोधाभासी नहीं हैं। अहंकार तो हिस्सा है, एक खंड है। अहंकार समष्टि नहीं हो सकता, वह पूर्ण के विरुद्ध है। एकांत में अहंकार समाप्त हो जाता है। तुम पूर्ण के साथ एक हो जाते हो और सीमा गिर जाती है। जब तुम परिपूर्ण रूप से अकेले हो तो तुम ब्रह्मांड हो, तुम ब्रह्म हो।

तीसरा प्रश्न :

कल रात की पहली विधि में बताया गया कि एकांत में रहना संबंधों को कम से कम करना है। लेकिन पहले कभी आपने कहा था कि अपने संबंधों को असीमित रूप से बढ़ाना चाहिए।

दोनों में से कुछ भी करो। या तो अपने को इतना फैलाओ कि कुछ भी तुमसे असंबंधित न रह जाए, तब तुम खो जाओगे; या इतने अकेले हो जाओ कि कुछ भी तुमसे संबंधित न रहे, तब भी तुम खो जाओगे।

तुम मध्य में हो, जहां कुछ संबंधित है और कुछ संबंधित नहीं है, जहां कोई मित्र है और कोई शत्रु है, जहां कोई अपना है और कोई पराया है, जहां चुनाव है। तुम मध्य में हो। किसी भी अति पर चले जाओ। हर किसी से संबंधित हो जाओ, हर चीज से संबंधित हो जाओ—और तुम खो जाओगे। हर चीज से संबंधित हो जाना इतनी विराट घटना है कि तुम नहीं बच सकते, तुम तो डूब जाओगे।

तुम्हारा अहंकार इतना संकरा है कि वह केवल थोड़े से संबंधों में ही जी सकता है। और उनमें भी वह किसी-न-किसी चीज के विरुद्ध होता है, वरना वह जी ही नहीं सकता। यदि संसार की हर चीज के साथ तुम मैत्रीपूर्ण हो जाओ तो तुम खो जाते हो। यदि तुम अहंकार की तरह रहना चाहते हो तो भी तुम मैत्रीपूर्ण हो सकते हो; लेकिन तब तुम्हें किसी से शत्रुता भी करनी होगी। किसी से तुम्हें प्रेम करना होगा और किसी से घृणा करनी होगी। तब तुम इन दो विरोधाभासों के बीच जी सकते हो, अहंकार बच सकता है।

तो या तो सबको प्रेम करो और तुम समाप्त हो जाओगे, या सबको घृणा करो और तुम समाप्त हो जाओगे। यह विरोधाभासी लगता है, है नहीं। विधि एक ही है। विधि वही है चाहे तुम सबको प्रेम करो, चाहे सबको घृणा करो। हर चीज की घृणा को पूरब में वैराग्य कहते हैं। हर चीज से घृणा में तुम अपना प्रेम पूरी तरह से खींच लेते हो, महसूस करते हो कि सब व्यर्थ है, कोई मूल्य नहीं है।

यदि तुम इतनी समग्रता से घृणा कर सको तो तुम पूर्ण हो जाओगे, तब तुम नहीं

रह सकते। तुम केवल तभी हो सकते हो जब दो विरोधाभास हों--प्रेम और घृणा। इन दो के बीच तुम संतुलित होते हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई रस्सी पर चल रहा हो। उसे दाएं और बाएं के बीच संतुलन रखना पड़ता है। यदि वह पूरी तरह बाईं ओर चला जाए तो वह गिर जाएगा; यदि वह पूरी तरह दाईं ओर चला जाए तो भी वह गिर जाएगा। तो चाहे तुम दाईं ओर जाओ कि बाईं ओर, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कोई एक चुन लो। तुम रस्सी से गिर जाओगे।

यदि तुम रस्सी पर बने रहना चाहते हो तो तुम्हें संतुलन करना पड़ेगा, कभी बाईं ओर, कभी दाईं ओर। और सच में संतुलन एक विज्ञान है। जब तुम बाईं ओर झुकोगे तो तत्क्षण तुम्हें दाईं ओर झुकना पड़ेगा, क्योंकि बायां हिस्सा गिरने की संभावना पैदा कर देगा। उसके विपरीत संतुलन करने के लिए तुम्हें दाईं ओर झुकना पड़ेगा। और जब तुम दाईं ओर झुकोगे तो फिर गिरने की संभावना हो सकती है। तो तुम्हें बाईं ओर झुकना पड़ेगा।

यही कारण है कि तुम प्रेम और घृणा के बीच, मित्र और शत्रु के बीच, इसके और उसके बीच, पसंद और नापसंद, आकर्षण और विकर्षण के बीच गति करते रहते हो। तुम सतत एक रस्सी पर चल रहे हो। यदि तुम इसे न समझो तो तुम्हारा पूरा जीवन एक उलझन ही रहेगा।

मैंने बहुत से लोगों का अध्ययन किया है और यह बुनियादी परेशानियों में से एक है। वे प्रेम करते हैं, फिर घृणा करते हैं; और वे समझ नहीं पाते कि जब वे प्रेम करते हैं तो फिर घृणा क्यों करते हैं। इस तरह वे संतुलन करते हैं। और यह संतुलन तुम्हें अहंकार देता है, तुम्हारा व्यक्तित्व देता है।

यदि तुम सच में अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो कोई भी अति चुन लो। बाईं ओर झुक जाओ, प्रेम करो और उसे दाएं से संतुलित मत करो—तुम रस्सी से गिर जाओगे। या दाईं ओर झुक जाओ, घृणा करो और पूरी तरह से घृणा करो और बाईं ओर मत जाओ, तुम रस्सी से गिर जाओगे।

महावीर कहते हैं कि हर चीज से विरक्त हो जाओ—यह घृणा है। और कृष्ण कहते हैं कि प्रेम करो। यही कारण है कि जैन कभी भी कृष्ण का संदेश नहीं समझ सकते। असंभव है। और हिंदुओं ने महावीर की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने अपने शास्त्रों में उनके नाम का कोई उल्लेख भी नहीं किया है। एक भी उल्लेख नहीं है। उन्होंने कोई ध्यान ही नहीं दिया, क्योंकि वह कहते हैं कि हर चीज से इतने विरक्त हो जाओ कि वह घृणा बन जाए। कृष्ण कहते हैं कि प्रेम करो और इतनी पूर्णता से प्रेम करो कि घृणा बिलकुल ही मन से छूट जाए।

दोनों एक ही हैं। तुम्हें विरोधाभासी लगते हैं, हैं नहीं। या तो बाईं ओर झुक जाओ या दाईं ओर, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तुम जमीन पर ही गिरोगे, रस्सी पर नहीं रह सकते—इतना पक्का है। वह रस्सी अहंकार है, या कहो संसार है, और उस पर तुम अपने को संतुलित कर रहे हो।

बहुत लोग मुझे प्रेम करते हैं, और मुझे पता है कि देर-अबेर वे संतुलन करेंगे और घृणा करने लगेंगे। और जब वे घृणा करते हैं तो व्यथित हो जाते हैं। उन्हें व्यथित नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसे ही तो वे रस्सी पर बने रह सकते हैं। लेकिन वे ज्यादा देर तक घृणा भी नहीं कर सकते, उन्हें फिर संतुलन करना पड़ेगा।

सुबह तुम प्रेम करते हो और शाम को घृणा करते हो, सुबह तुम फिर प्रेम करने लगते हो। जब तक तुम अहंकार को छोड़ने को तैयार नहीं हो तब तक यह संतुलन चलता रहेगा। यह अनंत काल तक चल सकता है, रस्सी अंतहीन है। लेकिन एक बार तुम पूरे खेल से ऊब जाओ, एक बार तुम्हें दिख जाए कि यह व्यर्थ है—हर बार घृणा और प्रेम में संतुलन करना और बार-बार विपरीत दिशा में जाना, यह बेकार है—तब तुम किसी एक छोर पर जा सकते हो, चाहे प्रेम चाहे घृणा, और रस्सी से हट सकते हो। और एक बार तुम रस्सी से हटे कि तुम संबुद्ध हो। बीच में बने रहना संसार है।

चौथा प्रश्न :

पुरुष के अंदर गर्भ में प्रवेश करने की एक अंतर्निहित अभीप्सा है। कृपया बताएं कि पुरुष की संभोग के द्वारा स्त्री के भीतर प्रवेश करने की चाह भी क्या गर्भ में लौट जाने की इसी अंतर्निहित अभीप्सा की प्रतीक है?

हां, यह चाह भी उसी का अंग है। प्रकृति में हर चीज स्रोत पर लौटना चाहती है। यह एक नियम है। बीच में कुछ भी हो, असंगत है। हर वर्तुल पूर्णता पर पहुंच जाता है, आरंभ पर, मूल स्रोत पर पहुंच जाता है।

पुरुष गर्भ से पैदा होता है। जब भी वह क्षोभ या विषाद में होता है, जब भी संसार में बहुत अधिक जिम्मेवारियां होती हैं, बोझ होते हैं, सब कुछ भारी हो जाता है—वह गर्भ में लौटना चाहता है। इसीलिए स्त्री में प्रवेश करने का यह आकर्षण है, यह चाह है। लेकिन तुम प्रवेश नहीं कर सकते, तुम दोबारा बच्चे नहीं बन सकते, तो संभोग एक प्रतीक बन जाता है। वह प्रवेश प्रतीकात्मक हो जाता है। तुम फिर गर्भ में पहुंच जाते हो। इसीलिए संभोग इतना विश्रामदायी, आरामदेह हो जाता है। सब तनाव खो जाते हैं, मन बोझ से मुक्त हो जाता है। कम से कम उस क्षण में तुम आनंदित होते हो। यह एक रेचन है—तुम बहुत सी धूल झाड़ लेते हो।

तो संभोग एक राहत, एक विश्राम बन जाता है। और स्त्री एक गर्भ बन जाती है। यही आकर्षण का हिस्सा है, कामना का हिस्सा है। हो सकता है तुम्हें इसका पता न हो, लेकिन आराम के लिए हमने जो भी बनाया है वह गर्भ जैसा ही है। एक बंद कमरे में, शरीर के तापमान पर, शांत बैठकर तुम आसानी से विश्राम कर सकते हो। और यदि तुम्हारे शयनकक्ष में गर्भाशय के सभी गुण हों तो तुम गहरी नींद सोओगे। एक दीवार घड़ी भी तुम्हें सहयोग देती है। उसकी टिक-टिक, टिक-टिक चलती रहती है। वह मां के हृदय की टिक-टिक, टिक-टिक जैसी ही है जो गर्भ में बच्चे को सुनाई

पड़ती है। वह उसे सुनता रहता है। टिक-टिक की लय सहयोगी है; गद्दा, सिराहना, जो भी चीजें हम प्रयोग करते हैं वे गर्भ जैसी ही हैं। अब तो वैज्ञानिकों का कहना है कि देर-अबेर हम सोने के लिए ठीक गर्भ जैसे चैंबर बना लेंगे, ठीक वैसे ही, क्योंकि वे तुम्हें गहरी से गहरी नींद दे पाएंगे।

निर्वाण की परम धारणा भी गर्भ जैसी है। गर्भ में बच्चा एकदम स्वतंत्र होता है, सब जिम्मेवारियों से मुक्त होता है। उसे किसी चाह का पता नहीं चलता। चाह उठने से पहले ही तृप्त हो जाती है। इसी को हिंदू कल्पवृक्ष कहते हैं। स्वर्ग में ऐसे वृक्ष होते हैं जिनके नीचे तुम बैठो, और जैसे ही तुम्हारे मन में कोई चाह उठती है, तत्क्षण वह पूर्ण हो जाती है। इच्छा, मांग और आपूर्ति के बीच कोई अंतराल नहीं होता, कोई समय का अंतराल नहीं होता। चाह उठी नहीं कि पूर्ति हो जाती है।

गर्भ में ऐसा ही होता है, वह कल्पवृक्ष है। बच्चे को कभी पता नहीं चलता कि वह भूखा है, इससे पहले कि भूख लगे वह तृप्त हो जाती है। बच्चे को कभी पता नहीं चलता कि वह प्यासा है, इससे पहले कि प्यास लगे, प्यास तृप्त हो जाती है। उसे किसी संघर्ष, किसी तनाव का पता नहीं चलता, उसके सारे काम चुपचाप समष्टि द्वारा कर दिए जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यही कारण है कि गर्भ में बच्चा सचेत नहीं हो सकता, क्योंकि चेतना के लिए संघर्ष की, श्रम की जरूरत है। चेतना विकसित ही तब होती है जब पहले मांग उठे, फिर एक अंतराल हो और फिर उसकी पूर्ति हो। वह अंतराल तुम्हें सचेत करता है। यदि कोई अंतराल न हो, तुम जो चाहो वह तत्क्षण पूरा हो जाए तो तुम सो जाओगे।

तो बच्चा नौ महीने तक लगातार सोया रहता है, एक क्षण के लिए भी नहीं जागता। जागने की कोई जरूरत भी नहीं है। सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं। कोई पीड़ा नहीं है, कोई कष्ट नहीं है, कोई तनाव नहीं है, तो चैतन्यता संभव नहीं है। वह सोया रहता है।

और जब वह पैदा होता है तो इतना बड़ा धक्का लगता है कि फ्रायड कहता है कि कोई कभी भी उससे उबर नहीं पाता। यह एक चोट है। यह एक घाव की तरह सदा तुम्हारे भीतर रहता है। और मैं सोचता हूं कि वह ठीक है। जब बच्चा पैदा होता है तो उसे एक धक्का लगता है! वह अदन के बगीचे से, स्वर्ग में फेंक दिया जाता है। वहां सब कुछ इतना सुंदर था, इतना सुंदर था कि वह सोया हुआ था। वहां इतना आराम था कि उसे एक क्षण के लिए भी जागने की जरूरत नहीं थी। वह एक स्वप्नलोक में था और अब उसे जबरदस्ती बाहर फेंका जा रहा है।

इस बात की पूरी संभावना है कि बच्चे का अचेतन गर्भ में रहने के लिए संघर्ष करता होगा। कहना कठिन है कि सच में ऐसा है कि नहीं, लेकिन संभावना पूरी है कि बच्चा गर्भ में बने रहने के लिए संघर्ष करता है। वह बाहर आने में हर तरह की कठिनाई

खड़ी करता है। इसीलिए पीड़ा और संघर्ष होते हैं। वह बाहर फेंका जा रहा है, बाहर निकाला जा रहा है।

और गर्भ के बाहर पहला क्षण इतनी बड़ी पीड़ा का होगा कि इतनी पीड़ा उस बच्चे को फिर कभी नहीं होगी। मृत्यु भी इतनी कष्टपूर्ण नहीं होगी। क्योंकि पहली बार उसे अपने आप श्वास लेनी पड़ेगी—और संसार अपनी सारी चिंताओं के साथ शुरू हो गया। अब वह केंद्र होगा और उत्तरदायी होगा और उसे अपना बोझ खुद उठाना पड़ेगा। वह मां से बाहर फेंक दिया गया है। अब उसे श्वास लेनी पड़ेगी और भूख लगेगी तो रोना पड़ेगा। और अब कुछ भी पक्का नहीं है कि जब उसे भूख लगेगी तो वह पूरी होगी या नहीं—निश्चित नहीं है। यह निर्भर करेगा, वह आश्रित हो गया। अब अपनी हर जरूरत के लिए उसे संघर्ष करना पड़ेगा।

लेकिन फिर हम अपने बच्चों के लिए हर तरह से हर सुविधा का प्रबंध करते हैं, ताकि चोट बहुत गहरी न जाए। मां उसकी जरूरतों को तत्क्षण पूरा करती रहती है। इस कारण बच्चे को लगने लगता है कि वह संसार का केंद्र है और सारा संसार उसके पीछे चलता है। बस जरा से रोने भर से पूरा संसार उसके चरणों में आ गिरेगा। इससे बड़ी अहंकारपूर्ण शुरुआत होती है।

तो हर बच्चा बड़ा अहंकारी होता है। और फिर पीछे और सदमे भी आएंगे, क्योंकि यह तो बस पहला जन्म था, बहुत से जन्मों की शुरुआत थी। जो लोग मानवीय प्रक्रिया को गहरे से समझते हैं वे कहते हैं कि पूरा जीवन ही एक अनवरत जन्म है। कई जन्म होते हैं। एक दिन आएगा जब मां बच्चे को दूध पिलाना बंद कर देगी। अब उसे भोजन पर निर्भर रहना पड़ेगा। उसे चबाना पड़ेगा। उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। अब भोजन चबाना पड़ेगा, पचाना पड़ेगा। दूध की बात कुछ और थी। बच्चा कुछ नहीं कर रहा था, बस चूस रहा था। वह बस चूसने वाला था।

तो रोज-रोज उत्तरदायित्व बढ़ता जाएगा और वह मां से दूर और दूर होता चला जाएगा और जितना उसे दूर किया जाएगा संसार उसे उतना ही घेरता चला जाएगा। और संसार प्रतिकूल है, गर्भ कभी प्रतिकूल न था, मित्रवत था। संसार मित्रवत नहीं है; वहां प्रतियोगिता है और सब अपने में उत्सुक हैं, तुममें कोई उत्सुक नहीं है। संसार तुम्हारी मां नहीं है।

जब बच्चा स्कूल जाता है तो वह एक विरोधी संसार में प्रवेश कर रहा है, जहां चोटें हैं, घाव हैं और धक्के हैं। और यह चलता रहता है। और अंतिम विच्छेद तब होता है जब बच्चा किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है। वह बड़ा हो रहा है। यह मां के साथ अंतिम विच्छेद है; अब आखिरी सेतु टूट गया।

लेकिन अभी भी यह पुरुष रूपी बच्चा ऐसे ही व्यवहार करेगा जैसे पत्नी उसकी मां हो। पर वह है नहीं। वह अपने में उत्सुक है और पति अपने में उत्सुक है। दोनों अपने-अपने में उत्सुक हैं, दोनों ही अहंकार हैं। और हर पति प्रयास करता रहता है कि उसकी पत्नी मां की तरह व्यवहार करे। यही संघर्ष है। वह उस तरह व्यवहार कर नहीं

सकती, उसकी अपनी पसंद है। मां तो पूरी तरह समर्पित थी।

तो हर पुरुष अपनी पत्नी से निराश होता है, क्योंकि कोई पत्नी मां नहीं बन सकती। इसमें अच्छी या बुरी पत्नियों का सवाल नहीं है, कोई पत्नी मां नहीं हो सकती। तो हर पुरुष निराश है। मैंने अभी तक एक भी पुरुष नहीं देखा जो अपनी पत्नी से निराश न हो। निराश न होना असंभव लगता है, क्योंकि वह चाह भी बिलकुल असंभव है।

लेकिन पुरुष को अच्छा लगता है जब वह स्त्री के भीतर प्रवेश करता है। वह दोबारा गर्भ में पहुंच जाता है। यह प्रतीकात्मक प्रवेश है—उन थोड़े से क्षणों के लिए वह सब चिंताएं, संसार, सब कुछ भूल जाता है। वह फिर बच्चा हो जाता है। किसी पुरुष को अपनी पत्नी या अपनी प्रेमिका के साथ गहन प्रेम में देखो, उसका चेहरा एक बच्चे की तरह नजर आएगा। सब तनाव जा चुके। तो यह सांयोगिक नहीं है कि प्रेम करते समय पत्नी पति को बेबी कहती है।

मैं एक घटना पढ़ रहा था। आधी रात थी और एक घर में आग लग गई थी। अंतिम क्षण में एक स्त्री को बाहर निकाला गया। वह पागलों की तरह रो रही थी, 'मेरा बच्चा अंदर रह गया।' और फिर अचानक वह बच्चा निकला—छज्जे पर तीन सौ साठ पौंड का पुरुष खड़ा था—और वह बोला, 'चिंता न करो, मैं जीवित हूं, और अभी आ रहा हूं।' और सारी भीड़ हैरान थी कि मामला क्या है! लेकिन वे गहन प्रेम में थे, साथ-साथ सोए हुए थे, और उस क्षण पुरुष बच्चे जैसा हो गया था।

मन हर तरह से गर्भ जैसी स्थिति पुनः पाना चाहता है। लेकिन तुम गर्भ में पुनः प्रवेश कर नहीं सकते, संभोग में भी नहीं। केवल ऐसा आभास भर होता है। गर्भ में प्रवेश करने की एकमात्र संभावना शारीरिक नहीं, मानसिक है, या गहरे तल पर, आध्यात्मिक है। यदि तुम समष्टि के साथ एक हो सको तो पुनः गर्भ में पहुंच जाओगे, और यह तुमसे छीना भी नहीं जा सकता। तब पूरा अस्तित्व मां बन जाता है।

तो मेरे देखे, वे धर्म अधिक वैज्ञानिक हैं जो कहते हैं कि परमात्मा पिता नहीं, मां है। जिन्होंने परमात्मा को पिता कहा है वे उतने वैज्ञानिक नहीं हैं, क्योंकि पिता कोई बहुत जरूरी नहीं है, केवल सांयोगिक है। पिता शब्द सदा से नहीं था। मां शब्द पिता से बहुत पुराना है। यहां तक कि अंकल शब्द भी पिता से पुराना है। क्योंकि पांच हजार साल पहले कोई विवाह नहीं होते थे, समूह में लोग साथ-साथ रहते थे। बच्चा अपनी मां को जानता था, लेकिन उसे यह नहीं पता होता था कि उसका पिता कौन है। इसलिए समूह के सभी पुरुष उसके अंकल थे। अंकल या चाचा पिता शब्द से पुराना शब्द है। सभी पुरुष चाचा होते थे, क्योंकि यह पक्का नहीं था कि पिता कौन है।

पिता तो बाद में आया। जब एक पुरुष एक स्त्री पर अधिकार करके बाकी सब पुरुषों को धकेलने लगा तो पिता अस्तित्व में आया। और यह भी निश्चित नहीं है कि वह सदा रहेगा, क्योंकि परिवार बिखर रहे हैं। परिवार शाश्वत नहीं है, बस संस्थागत है। लगता है कि पिता विदा हो रहा है; भविष्य में वह बच नहीं सकता। पिता के लिए कोई आशा नहीं है। वह समाप्त हो जाएगा। अंकल फिर से महत्त्वपूर्ण हो जाएगा।

मां बुनियादी है; पिता सामाजिक है, उसे छोड़ा जा सकता है, यह समाज की मान्यता पर निर्भर करता है। लेकिन मां को नहीं छोड़ा जा सकता। तो जो धर्म परमात्मा को मां की तरह मानते हैं कि वे वास्तव में अधिक गहरे हैं जब तुम मातृवत परमात्मा में प्रवेश करते हो, उसके साथ एक हो जाते हो, तो तुम शाश्वत गर्भ में प्रवेश कर गए। अब कोई पीड़ा नहीं होगी, कोई कष्ट नहीं होगा। अब तुम कभी बाहर नहीं फेंके जाओगे।

अंतिम प्रश्न :

आपने कहा कि हम धागे की, मूलभूत की फिक्र करते हैं। लेकिन आपका किस हम से तात्पर्य है? क्योंकि हम तो अभी मनकों से, घटनाओं से ही उलझे हुए हैं। हम घटनाओं में जीते हैं।

जब मैं कहता हूं कि हमें धागे से, सारभूत से, मूलभूत से, वास्तविक से मतलब है, तो हम से मेरा अभिप्राय तुमसे नहीं है। जैसे तुम अभी हो सकते हो उससे नहीं है। लेकिन जो तुम हो सकते हो उससे है। तुम दो हो, जो तुम अभी हो वह वास्तविक नहीं है, वह बस एक झूठ है, एक प्रतिमा है, जिसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। वास्तविक तुम तो वह है, जिसे तभी जाना जा सकता है जब सभी मुखौटे गिर जाएं।

तो जब मैं कहता हूं कि हमें धागे से मतलब है तो मैं तुमको तुम्हारी वास्तविकता के रूप में लेता हूं। अहंकार के रूप में नहीं, आत्मा के रूप में।

तुम दो हो—एक तो जैसे तुम दिखाई पड़ते हो और एक जो तुम हो। जैसे तुम दिखाई पड़ते हो वह तो घटनाओं से, मनकों से, बाह्य से संबंधित है। लेकिन अंतस, जो तुम सच में हो, घटनाओं से संबंधित नहीं है; वह समय से बिलकुल भी संबंधित नहीं है। उसका संबंध शाश्वत से है।

मैं तुम्हें बुद्ध के एक पूर्व-जन्म की कहानी सुनाता हूं, जब वह बुद्ध नहीं हुए थे। उस जन्म में बुद्ध सबकी तरह अज्ञानी थे। उन्होंने एक व्यक्ति के बारे में सुना जो संबुद्ध हो गया था, तो वह उसके चरण छूने और उसके दर्शन करने गए। उन्होंने उस बुद्ध पुरुष के चरण छुए, और जब वह उठ रहे थे तो बड़े हैरान हुए, क्योंकि वह बुद्ध पुरुष उनके चरण छूने लगा। उन्होंने कहा, 'यह आप क्या कर रहे हैं? मैं अज्ञानी हूं, अंधकार में हूं, पापी हूं; और आप बुद्ध पुरुष हैं, शुद्धतम प्रकाश हैं जैसा पहले मैंने कभी देखा नहीं। आप मेरे पांव क्यों छू रहे हैं? मैं आपके चरण छूने आया हूं। आप मेरे पांव क्यों छू रहे हैं?'

उस बुद्ध पुरुष ने हंसकर कहा, 'मैं तेरे पांव नहीं छू रहा हूं। मैं उस तत्त्व के, उस आत्मा के चरण छू रहा हूं जो तुझमें छिपी हुई है। और वह पहले से ही बुद्ध है। बाद में तुम्हें इसका पता लग सकता है, और जब तुझे पता लगे तो याद रखना। एक दिन तुझे भी उस वास्तविकता का पता लग जाएगा जिसके आगे मैं झुका हूं। अभी तुझे पता नहीं है, तुझे अपने खजाने का ही पता नहीं है, लेकिन मुझे अपने खजाने का पता

है। और जिस क्षण मैंने अपने खजाने को जाना, मुझे सबके खजाने का पता चल गया।' उस बुद्ध पुरुष ने बुद्ध से कहा, 'जिस क्षण मैं संबुद्ध हुआ मुझे सबकी मूल वास्तविकता का पता चल गया। तू अपने को धोखा दिए जा सकता है, वह तेरे ऊपर निर्भर है, लेकिन मैं तेरे भीतर शुद्धतम प्रकाश देख रहा हूं। जब तुझे भी इसका अनुभव हो तो मुझे याद करना।'

और जब अपने अगले जन्म में बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, 'वह बुद्ध पुरुष क्या कह रहा था मैं समझ नहीं सका था। वह एक रहस्य था। लेकिन अब मैं देखता हूं कि उसका क्या अभिप्राय था। अब वह प्रकट हुआ है। और जो मैं अब हूं वह मैं तब भी था। उसने जरूर इसी को प्रमाण किया होगा।'

तो जब मैं कहता हूं हम तो मैं तुम्हारी संभावना को शामिल करता हूं। तुम्हारी आकृति तो बस एक सपना है। लेकिन तुम्हें इसका पता नहीं चल सकता, क्योंकि जब तुम्हें पता चलता है कि तुम सपना देख रहे हो तो सपना टूट जाता है। तुम्हें अपने स्वभाव का बोध नहीं है। यदि तुम्हें पता चल जाए तो प्रतीति समाप्त हो जाएगी। लेकिन मुझे पता है—तो तुम मेरी कठिनाई समझ सकते हो—मैं तुम्हें संबुद्धों की तरह देखता हूं। तुम वही हो। तुम बस अज्ञानी होने का खेल खेल रहे हो, स्वयं को धोखा दे रहे हो। लेकिन तुम कुछ भी करो, उससे मूल स्वभाव को कोई अंतर नहीं पड़ता। वह निर्दोष, शुद्ध, परिशुद्ध रहता है।

तुम यहां हो। यदि मैं तुम्हारे बाह्य रूप को देखूं तो बहुत-सी चीजें तुम्हें समझाने को हैं। लेकिन यदि मैं तुम्हारे अंतरतम में झांकूं तो तुम्हें कुछ भी समझाने की जरूरत नहीं है। कुछ करने की जरूरत नहीं है। यही मेरा अभिप्राय है जब मैं कहता हूं, हमें धागे से, मूलभूत से मतलब है; मनकों से, घटनाओं से, बाह्य से नहीं।

इसे याद रखो। किसी दिन जब तुम संबुद्ध होओगे तुम्हें पता चलेगा कि हम से मेरा क्या तात्पर्य था और कौन उसमें शामिल था। इतना निश्चित है कि जैसे तुम यहां मेरे सामने हो, जैसे दिखाई पड़ते हो, वैसे तुम उसमें शामिल नहीं हो—लेकिन जैसे तुम सदा थे और जैसे तुम सदा रहोगे, जब यह पर्दा हट जाएगा, जब बादल छंट जाएंगे और सूरज उगेगा। मैं बादलों के पीछे सूर्य को देख सकता हूं।

तुम बादलों से तादात्म्य बनाए हो, तुम मुझ पर विश्वास भी नहीं कर सकते। यदि मैं कहूं कि तुम संबुद्ध ही हो तो तुम कैसे विश्वास कर सकते हो? तुम कहोगे कि मैं जरूर तुम्हें धोखा दे रहा हूं या कोई चाल चल रहा हूं। यह सत्य है, लेकिन सत्य को समझना कठिन है। और इससे पहले कि तुम स्वयं पर लौटो, तुम्हें लंबी यात्रा करनी है। इससे पहले कि तुम्हें पता चले कि तुम्हारा घर ही लक्ष्य है, कि उस जगह तुम सदा से ही हो जहां तुम पहुंचना चाहते हो, तुम्हें लंबी यात्रा करनी है।

आज इतना ही।

71

परिधि का विस्मरण

सूत्र

98. किसी सरल मुद्रा में दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।

99. स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।

जीवन बाहर से एक झंझावात है—एक अनवरत द्वंद्व, एक उपद्रव, एक संघर्ष। लेकिन ऐसा केवल सतह पर है। जैसे सागर के ऊपर उन्मत्त और सतत संघर्षरत लहरें होती हैं। लेकिन यही सारा जीवन है। गहरे में एक केंद्र भी है—मौन, शांत, न कोई द्वंद्व, न कोई संघर्ष। केंद्र में जीवन का एक मौन और शांत प्रवाह है, जैसे कोई सरिता बिना संघर्ष, बिना कलह, बिना शोरगुल के बस बह रही हो। उस अंतस केंद्र की ही खोज है। तुम सतह के साथ, बाह्य के साथ तादात्म्य बना सकते हो। फिर संताप और विषाद घिर आते हैं। यही है जो सबके साथ हुआ है; हमने सतह के साथ और उस पर चलने वाले कलह के साथ तादात्म्य बना लिया है।

सतह तो अशांत होगी ही, उसमें कुछ भी गलत नहीं है। और यदि तुम केंद्र में अपनी जड़ें जमा सको तो परिधि की अशांति भी सुंदर हो जाएगी, उसका अपना ही सौंदर्य होगा। यदि तुम भीतर से मौन हो सको तो बाहर की सब ध्वनियां संगीतमय हो जाती हैं। तब कुछ भी गलत नहीं रहता है; बस एक खेल रह जाता है। लेकिन यदि तुम आंतरिक केंद्र को, मौन केंद्र को नहीं जानते, यदि तुम परिधि के साथ ही एकात्म हो तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे। और सभी करीब-करीब विक्षिप्त हैं।

सभी धार्मिक विधियां, योग की विधियां, ध्यान, झेन सभी मूलतः तुम्हें पुनः उस केंद्र के संपर्क में ले आने के लिए हैं; ये विधियां भीतर मुड़ने के लिए, परिधि को भूल जाने के लिए, कुछ समय के लिए परिधि को छोड़कर अपने अंतस में इतना गहन विश्राम करने के लिए हैं कि बाह्य बिलकुल मिट जाए और केवल अंतस ही बचे। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे पीछे मुड़ना है, कैसे स्वयं में उतरना है, तो कुछ भी कठिन नहीं रह जाता है। फिर सब कुछ एकदम सरल हो जाता है। लेकिन यदि तुम्हें पता न हो, तुम्हें यदि केवल परिधि के साथ मन के तादात्म्य का ही पता हो, तो बहुत कठिन है। स्वयं में विश्राम करना कठिन नहीं है, परिधि से तादात्म्य तोड़ना कठिन है।

मैंने एक सूफी कहानी सुनी है। एक बार एक सूफी फकीर कहीं जा रहा था। अंधेरी रात थी और वह रास्ता भटक गया। इतना अंधेरा था कि उसे रास्ता भी नजर नहीं आता था। अचानक वह एक खाई में गिर गया। वह डरा। अंधेरे में उसे कुछ पता नहीं चल रहा था कि खाई कितनी गहरी है और नीचे क्या है। उसने एक वृक्ष की टहनी पकड़ ली और प्रार्थना करने लगा। रात सर्द थी। वह चिल्ला रहा था, लेकिन कोई सुनने वाला न था, बस उसकी अपनी ही आवाज गूंज रही थी। और सर्दी इतनी थी कि उसके हाथ जमे जा रहे थे और लग रहा था कि जल्दी ही टहनी उसके हाथ से छूट जाएगी। उसे पकड़े रहना मुश्किल हो रहा था, उसके हाथ इतने जम गए थे कि टहनी से छूटने लगे। मौत बिलकुल करीब थी, किसी भी पल वह गिरकर मर सकता था।

और फिर अंतिम क्षण आ गया। तुम समझ सकते हो कि वह कितना भयभीत रहा होगा। प्रतिपल वह मर रहा था, और फिर अंतिम क्षण आ गया जब उसने अपने हाथों से टहनी को छूटते हुए देखा। उसके हाथ इतने जम चुके थे कि लटके रहने का कोई उपाय ही न था, तो वह गिर पड़ा।

लेकिन जिस क्षण वह गिरा, वह नाचने लगा—वहां कोई खाई थी ही नहीं, वह समतल जमीन पर ही था। और सारी रात उसने कष्ट भोगा···।

यही स्थिति है। तुम सतह से ही चिपके चले जाते हो, इस भय से कि तुमने अगर सतह को छोड़ दिया तो खो जाओगे। असल में, इस तरह से चिपकने के कारण ही तुम खो गए हो। लेकिन भीतर गहरे में अंधकार है, इसलिए तुम आधार को नहीं देख पाते; तुम सतह के अलावा और कुछ भी नहीं देख पाते।

ये सब विधियां तुम्हें साहसी और मजबूत और हिम्मतवर बनाने के लिए हैं, ताकि तुम अपनी पकड़ को छोड़कर स्वयं के भीतर गिर सको। जो अंधेरी, अंतहीन खाई की तरह दिखाई पड़ती है, वही तुम्हारे प्राणों की धरती है। एक बार तुम बाहर की परिधि को छोड़ दो तो तुम केंद्रित हो जाओगे।

यह केंद्रीकरण ही गंतव्य है। और एक बार तुम केंद्रित हो जाओ तो फिर तुम बाहर जा सकते हो, पर तुम्हारी चेतना की पूरी गुणवत्ता बदल जाएगी। फिर तुम परिधि पर जाओगे तो भी तुम परिधि नहीं बनोगे, सदा केंद्र पर ही रहोगे। और परिधि पर भी केंद्रित बने रहना बहुत सुंदर है। फिर तुम उसका आनंद ले सकते हो; यह एक सुंदर खेल बन जाएगा। फिर कोई संघर्ष नहीं है; बस एक खेल है। फिर इससे तुम्हारे भीतर कोई तनाव नहीं होगा और न तुम्हारे चारों ओर कोई संताप या विषाद होगा। और जिस भी क्षण परिधि तुम पर भारी पड़ने लगे, तुम मूल स्रोत पर लौट सकते हो, तुम भीतर डुबकी लगा सकते हो। तुम फिर तरो-ताजा और जीवंत होकर परिधि पर लौट सकते हो।

एक बार तुम्हें मार्ग का पता लग जाए···और मार्ग कोई बहुत लंबा नहीं है। तुम और कहीं नहीं बस अपने ही भीतर जा रहे हो, इसलिए मार्ग कोई बहुत लंबा नहीं है। वह पास ही है। बस एक ही बाधा है, और वह है परिधि पर तुम्हारी पकड़, तुम्हारा

भय, कि उसे छोड़ते ही तुम खो जाओगे। ऐसा भय पकड़ता है कि तुम मर ही जाओगे। आंतरिक केंद्र की ओर जाना मृत्यु है। मृत्यु इन अर्थों में कि परिधि के साथ तुम्हारे तादात्म्य की मृत्यु तो जाएगी और तुम्हारे अस्तित्व की एक नई आभा, एक नई अनुभूति पैदा होगी।

तो अगर हम थोड़े से शब्दों में कहना चाहें कि तंत्र की विधियां क्या हैं, तो हम कह सकते हैं कि वे अंतरतम में गहन विश्राम की, स्वयं में विश्रांत होने की विधियां हैं।

तुम सदा तनाव से भरे हो, यही पकड़ है, यही बंधन है। तुम कभी विश्रांत नहीं होते, जैसा घटित हो रहा है उसे होने देने की स्थिति में नहीं होते। तुम हमेशा कुछ न कुछ कर रहे हो। यह करना ही समस्या है। तुम कभी अकर्मण्यता की स्थिति में नहीं होते, जब सब कुछ अपने आप होता है और तुम कुछ भी नहीं करते। श्वास भीतर आती है और बाहर जाती है, रक्त संचारित होता है, शरीर जीवित है और धड़कता है, हवा बहती है, सारा संसार-चक्र घूमता रहता है—और तुम कुछ भी नहीं कर रहे, तुम कर्ता नहीं हो। तुम बस शांत हो और सब कुछ हो रहा है। जब सब कुछ होता है और तुम कुछ नहीं करते, तब तुम शांत होते हो। जब तुम सब करते हो और कुछ भी अपने आप नहीं होता, तुम्हें ही करना पड़ता है, तब तुम तनाव-युक्त होते हो।

तुम तभी थोड़े विश्रांत होते हो जब सोए होते हो, लेकिन वह विश्राम पूरा नहीं होता। नींद में भी तुम कुछ-न-कुछ करते रहते हो। नींद में भी तुम सब कुछ अपने आप नहीं होने देते। किसी व्यक्ति को सोते हुए देखो—तुम पाओगे कि वह बड़ा तनाव से भरा है, उसका पूरा शरीर तनाव में है। किसी छोटे बच्चे को सोते हुए देखो, वह बड़ा विश्रांत है। या किसी जानवर को, किसी बिल्ली को देखो! बिल्ली सदा विश्रांत रहती है।

तुम सोते समय भी विश्रांत नहीं होते; तुम तनाव में होते हो, संघर्ष कर रहे होते हो, हिलते हो, किसी से लड़ रहे होते हो। तुम्हारे चेहरे पर तनाव होता है, शायद सपने में तुम किसी से लड़ रहे हो, अपना बचाव कर रहे हो—वही सब जो तुम जागते में कहते हो, उसी को भीतर किसी नाटक में दोहरा रहे हो। तुम विश्रांत नहीं हो; तुम गहन समर्पण में नहीं हो।

इसीलिए नींद कठिन होती जा रही है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो जल्दी ही ऐसा होगा कि कोई भी स्वाभाविक रूप से नहीं सो पाएगा। नींद को रायायनिक तरीके से पैदा करना पड़ेगा, क्योंकि कोई भी स्वाभाविक रूप से नहीं सो पाएगा। वह दिन बहुत दूर नहीं है। इस राह पर तो तुम चल ही पड़े हो, क्योंकि अभी भी सोते हुए तुम अधूरे ही सोए होते हो, अधूरे ही विश्रांत होते हो।

ध्यान गहनतम निद्रा है। यह परिपूर्ण विश्राम तो है ही, साथ में कुछ और भी है; तुम पूर्णतः विश्रांत होते हो और फिर भी सजग होते हो, होश बना रहता है। होश के साथ पूर्ण निद्रा ही ध्यान है। तुम पूरी तरह सजग हो, सब कुछ अपने आप हो रहा है, लेकिन तुम कोई प्रतिरोध, कोई संघर्ष, कुछ भी नहीं कर रहे। कर्ता है ही नहीं। कर्ता

सो गया है। बस एक साक्षी है, एक होशपूर्ण विश्राम की अवस्था है। फिर कुछ भी बाधा नहीं डाल सकता।

यदि तुम्हें पता चल जाए कि कैसे विश्राम करना है तो कुछ भी तुम्हें विचलित नहीं कर सकता। यदि तुम्हें पता न हो कि विश्रांत कैसे हुआ जाता है तो कुछ भी तुम्हें बाधा डालेगा। मैं कहता हूं, कुछ भी! असल में और कुछ भी तुम्हारी विश्रांति में बाधा नहीं है, हर चीज एक बहाना है। तुम हमेशा ही परेशान होने को तैयार रहते हो। अगर एक चीज तुम्हें परेशान नहीं करेगी तो दूसरी करेगी; तुम परेशान हो जाओगे। तुम तैयार ही हो, परेशान होने की तुम्हारी प्रवृत्ति है।

यदि सब कारण हटा लिए जाएं तो भी तुम परेशान रहोगे। तुम कोई कारण ढूंढ़ लोगे, कोई कारण निर्मित कर लोगे। यदि बाहर से कुछ नहीं मिलता तो तुम भीतर से कुछ निर्मित कर लोगे—कोई विचार, कोई धारणा—और परेशान हो जाओगे। तुम्हें बहाने चाहिए।

एक बार तुम्हें विश्रांत होने की कला आ जाए तो कुछ भी तुम्हें परेशान नहीं कर सकता। ऐसा नहीं है कि संसार बदल जाएगा, कि परिस्थितियां बदल जाएंगी। संसार वैसा ही रहेगा, लेकिन तुममें वह प्रवृत्ति न रही, वह पागलपन न रहा; तुम हमेशा परेशान होने को तैयार नहीं हो। फिर तुम्हारे आस-पास जो भी होगा, विश्रामदायक होगा। यदि तुम विश्रांत हो तो ट्रैफिक का शोर भी विश्रामदायक हो जाएगा, बाजार भी विश्रामदायक हो जाएगा। यह तुम पर निर्भर है। यह तो भीतर का गुण है।

जितना तुम केंद्र की ओर जाओगे उतना ही यह गुण बढ़ेगा, और जितना तुम परिधि की ओर जाओगे उतने ही व्याकुल होओगे। अगर तुम बहुत परेशान हो या परेशान होने को तैयार हो तो इससे बस एक ही बात का पता चलता है कि तुम परिधि पर जी रहे हो, और कुछ भी नहीं। यह संकेत है इस बात का कि तुमने परिधि के आस-पास घर बना लिया है। पर यह झूठा घर है, क्योंकि असली घर तो केंद्र में ही है, तुम्हारे अंतरतम में है।

अपने हृदय में शांति का अनुभव करो

अब हम विधियों में प्रवेश करेंगे :

98. किसी सरल मुद्रा में दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।

यह बड़ी सरल विधि है, परंतु चमत्कारिक ढंग से कार्य करती है। इसे करके देखो। और कोई भी इसे कर सकता है, इसमें कोई खतरा नहीं है। पहली बात तो यह है कि किसी भी आरामदेह मुद्रा में बैठ जाओ, जो भी मुद्रा तुम्हारे लिए आसान हो। किसी विशेष मुद्रा या आसन में बैठने की कोशिश मत करो। बुद्ध एक विशेष मुद्रा में बैठते हैं, वह उनके लिए आसान है। वह तुम्हारे लिए भी आसान बन सकती है अगर कुछ समय तुम उसका अभ्यास

करो, लेकिन शुरू-शुरू में यह तुम्हारे लिए आसान न होगा। पर इसका अभ्यास करने की कोई जरूरत नहीं है; किसी भी ऐसी मुद्रा से शुरू करो जो अभी तुम्हारे लिए आसान हो। मुद्रा के लिए संघर्ष मत करो। तुम आराम से एक कुर्सी पर बैठ सकते हो। बस एक ही बात का ध्यान रखना है कि तुम्हारा शरीर एक विश्रांत अवस्था में होना चाहिए।

तो बस अपनी आंखें बंद कर लो और सारे शरीर को अनुभव करो। पैरों से शुरू करो, महसूस करो कि उनमें कहीं तनाव तो नहीं है। यदि तुम्हें लगे कि कोई तनाव है तो एक काम करो—उसे और तनाव से भर दो। यदि तुम्हें लगे कि दाहिनें पांव में तनाव है तो उस तनाव को जितना सघन कर सको, उतना सघन करो। उसे एक शिखर तक ले आओ, फिर अचानक उसे ढीला छोड़ दो, ताकि तुम यह महसूस कर सको कि कैसे वहां विश्राम उतर रहा है। फिर पूरे शरीर में देखते जाओ कि कहां-कहां तनाव है। जहां भी तुम्हें लगे कि तनाव है उसे और गहराओ, क्योंकि तनाव सघन हो तो विश्राम में जाना सरल है। आधे-अधूरे तो यह बड़ा कठिन है, क्योंकि तुम उसे महसूस ही नहीं कर सकते। एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत सरल है, क्योंकि एक अति स्वयं ही दूसरी अति पर जाने के लिए परिस्थिति पैदा कर देती है।

तो चेहरे पर अगर तुम कोई तनाव महसूस करो तो चेहरे की मांस-पेशियों को जितना खींच सको खींचो, तनाव को एक शिखर पर पहुंचा दो। उसे ऐसे बिंदु तक ले आओ जहां और तनाव संभव ही न हो, फिर अचानक ढीला छोड़ दो। इस तरह से देखो कि शरीर के सभी अंग विश्रांत हो जाएं।

और चेहरे की मांस-पेशियों पर विशेष ध्यान दो, क्योंकि वे तुम्हारे नब्बे प्रतिशत तनावों को ढोती हैं, बाकी शरीर में केवल दस प्रतिशत तनाव हैं। सब तनाव तुम्हारे मस्तिष्क में होते हैं, इसलिए तुम्हारा चेहरा उनका भंडार बन जाता है। तो अपने चेहरे पर जितना तनाव डाल सको डालो, शर्माओ मत। चेहरे को पूरी तरह से संतापयुक्त, विषादयुक्त बना डालो, और फिर अचानक ढीला छोड़ दो। पांच मिनट के लिए ऐसा करो, ताकि तुम्हारे शरीर का हर अंग विश्रांत हो जाए। यह तुम्हारे लिए बड़ी सरलमुद्रा है। तुम इसे बैठकर, या बिस्तर में लेटे हुए, या जैसे भी तुम्हें आसान लगे कर सकते हो।

'किसी सरल मुद्रा में दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।'

दूसरी बात—जब तुम्हें लगे कि शरीर किसी सुखद मुद्रा में पहुंच गया है—इस बात को अधिक तूल मत दो—जब महसूस करो कि शरीर विश्रांत है, फिर शरीर को भूल जाओ। क्योंकि असल में, शरीर को स्मरण रखना एक प्रकार का तनाव है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि इस विषय में बहुत झंझट मत करो। शरीर को विश्रांत हो जाने दो और भूल जाओ। भूल जाना ही विश्राम है। जब भी तुम बहुत याद रखते हो तो वह स्मरण ही शरीर को तनाव से भर देता है।

शायद तुमने कभी इस ओर ध्यान न दिया हो, लेकिन इसके लिए एक बड़ा सरल

प्रयोग है। अपना हाथ अपनी नाड़ी पर रखो और उसकी धड़कनों को गिनो। फिर अपनी आंखों को बंद कर लो और सारे ध्यान को पांच मिनट के लिए नाड़ी पर ले आओ, फिर उसे गिनो। नाड़ी अब तेज धड़केगी, क्योंकि पांच मिनट के ध्यान ने उसे तनाव दे दिया है।

तो वास्तव में जब भी कोई डाक्टर तुम्हारी धड़कन को मापता है तो वह माप कभी असली नहीं होता, वह माप हमेशा डाक्टर के माप शुरू करने से पहले के माप से अधिक होता है। जब भी डाक्टर तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता है तो तुम उसके प्रति सजग हो जाते हो। और यदि डाक्टर महिला डाक्टर हो तो तुम और भी सजग हो जाओगे, धड़कन और तेज चलने लगेगी। तो जब भी कोई महिला डाक्टर तुम्हारी धड़कन गिने तो उसमें से दस घटा लेना। तब वह तुम्हारी असली धड़कन होगी, नहीं तो दस धड़कनें प्रति मिनट अधिक रहेंगी।

तो जब भी तुम अपनी चेतना को शरीर के किसी अंग पर ले जाते हो, वह अंग तनाव से भर जाता है। जब कोई तुम्हें घूरता है तो तुम तनाव से भर उठते हो; तुम्हारा सारा शरीर तनाव-युक्त हो जाता है। जब तुम अकेले होते हो तब भिन्न होते हो। जब कोई कमरे में आ जाता है तब तुम वही नहीं रहते। पूरे शरीर की गति तेज हो जाती है, तुम तनाव से भर जाते हो। तो विश्राम को कोई बहुत अधिक महत्त्व न दो, वरना उसी के साथ अटक जाओगे। पांच मिनट के लिए बस आराम करो और भूल जाओ। तुम्हारा भूलना सहयोगी होगा और शरीर को और गहन विश्राम में ले जाएगा।

'दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।'

अपनी आंखें बंद कर लो और दोनों कांखों के बीच के स्थान को महसूस करो; हृदय-क्षेत्र को, अपने वक्षस्थल को महसूस करो। पहले केवल दोनों कांखों के बीच अपना पूरा अवधान लाओ, पूरे होश से महसूस करो। पूरे शरीर को भूल जाओ और बस दोनों कांखों के बीच हृदय-क्षेत्र और वक्षस्थल को देखो, और उसे अपार शांति से भरा हुआ महसूस करो।

जिस क्षण तुम्हारा शरीर विश्रांत होता है तुम्हारे हृदय में स्वतः ही शांति उतर आती है। हृदय मौन, विश्रांत और लयबद्ध हो जाता है। और जब तुम अपने सारे शरीर को भूल जाते हो और अवधान को बस वक्षस्थल पर ले जाते हो और उसे शांति से भरा हुआ महसूस करते हो तो तत्क्षण अपार शांति घटित होगी।

शरीर में दो ऐसे स्थान हैं, विशेष केंद्र हैं, जहां होशपूर्वक कुछ विशेष अनुभूतियां पैदा की जा सकती हैं। दोनों कांखों के बीच हृदय का केंद्र है, और हृदय का केंद्र तुममें घटित होने वाली सारी शांति का केंद्र है। जब भी तुम शांत होते हो, वह शांति हृदय से आती है। हृदय शांति विकीरित करता है।

इसीलिए तो संसार भर में हर जाति ने, हर वर्ग, धर्म, देश और सभ्यता ने महसूस किया है कि प्रेम कहीं हृदय के पास से उठता है। इसके लिए कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है। जब भी तुम प्रेम के संबंध में सोचते हो तुम हृदय के संबंध में सोचते हो। असल

में, जब भी तुम प्रेम में होते हो तुम विश्रांत होते हो। और क्योंकि तुम विश्रांत होते हो, तुम एक विशेष शांति से भर जाते हो। वह शांति हृदय से उठती है। इसलिए प्रेम और शांति आपस में जुड़ गए हैं। जब भी तुम प्रेम में होते हो तुम शांत होते हो। जब भी तुम प्रेम में नहीं होते तो परेशान होते हो। शांति के कारण हृदय प्रेम से जुड़ गया है।

तो तुम दो काम कर सकते हो, तुम प्रेम की खोज कर सकते हो : फिर कभी-कभी तुम शांत अनुभव करोगे। लेकिन यह मार्ग खतरनाक है, क्योंकि जिस व्यक्ति को तुम प्रेम करते हो वह तुमसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। और दूसरा तो दूसरा ही है, तुम एक तरह से पराधीन हो गए। तो प्रेम तुम्हें कभी-कभी शांति देगा, पर सदा नहीं। कई व्यवधान आएंगे, संताप और विषाद के कई क्षण आएंगे। क्योंकि दूसरे का प्रवेश हो गया है। जब भी दूसरा प्रवेश कर जाता है तो व्यवधान तो आएंगे ही, क्योंकि दूसरे से तुम केवल परिधि पर ही मिल सकते हो। परिधि विक्षुब्ध हो जाएगी। केवल कभी-कभी, जब तुम दोनों बिना किसी संघर्ष के गहन प्रेम में होओगे, केवल तभी तुम विश्रांत होओगे और तुम्हारा हृदय शांति से भर सकेगा।

तो प्रेम तुम्हें केवल शांति की झलकें दे सकता है, लेकिन कोई स्थायी, गहरी शांति नहीं दे सकता। इससे किसी शाश्वत शांति की संभावना नहीं है, बस झलकों की संभावना है। और दो झलकों के बीच कलह की, हिंसा की, घृणा और क्रोध की गहरी घाटियां होंगी।

शांति को खोजने का दूसरा उपाय है—उसे प्रेम के द्वारा नहीं, सीधे ही खोजना। यदि तुम शांति को सीधे ही पा सको—और उसी की यह विधि है—तो तुम्हारा जीवन प्रेम से भर जाएगा। लेकिन अब प्रेम का गुणधर्म अलग होगा। उसमें मालकियत नहीं होगी; वह किसी एक पर केंद्रित नहीं होगा। न तो वह स्वयं पराधीन होगा, न किसी को अपने अधीन बनाएगा। तुम्हारा प्रेम बस एक भाव, एक करुणा, एक गहन सहानुभूति बन जाएगा। और अब कोई भी, कोई प्रेमी भी, तुम्हें अशांत नहीं कर पाएगा। क्योंकि शांति की जड़ें गहरी हैं और तुम्हारा प्रेम आंतरिक शांति की छाया की भांति है। पूरी बात उलटी हो गई है।

तो बुद्ध भी प्रेमपूर्ण हैं, पर उनका प्रेम एक विषाद नहीं है। यदि तुम प्रेम करो तो कष्ट भोगोगे और प्रेम न करो तो भी कष्ट भोगेगे। यदि तुम प्रेम न करो तो प्रेम की अनुपस्थिति से कष्ट होगा; और प्रेम करो तो प्रेम की उपस्थिति से कष्ट होगा। क्योंकि तुम परिधि पर हो इसलिए तुम कुछ भी करो, वह तुम्हें क्षणिक तृप्ति देगा, फिर अंधेरी घाटियां आ जाएंगी।

पहले अपनी स्वयं की शांति में स्थिर हो जाओ, फिर तुम स्वतंत्र हो, फिर प्रेम तुम्हारी जरूरत नहीं है। फिर तुम जब भी प्रेम में होओगे तो बंधन अनुभव नहीं करोगे; तुम्हें कभी यह नहीं लगेगा कि प्रेम एक तरह की परतंत्रता, एक गुलामी, एक बंधन बन गया है। तब प्रेम बस एक दान होगा—तुम्हारे पास इतनी शांति है कि तुम उसे बांटना चाहते हो। फिर वह बस देना मात्र होगा, जिसमें वापस पाने का कोई विचार नहीं होगा;

वह बेशर्त होगा। और यह एक राज है कि जितना तुम देते हो उतना ही तुम्हें मिलता है। जितना ही तुम देते हो और बांटते हो उतना ही तुम पर बरस जाता है। जितना तुम इस खजाने में गहरे प्रवेश करते हो, जो कि अनंत है, उतना ही तुम सबको लुटा सकते हो। यह कभी समाप्त नहीं हो सकता।

लेकिन प्रेम आंतरिक शांति की छाया की भांति घटित होना चाहिए। साधारणतः इससे उलटा होता है, शांति तुम्हारे प्रेम की छाया की भांति आती है। प्रेम शांति की छाया होना चाहिए, तब प्रेम सुंदर होता है। वरना तो प्रेम भी कुरूपता निर्मित करता है। एक रोग, एक ज्वर बन जाता है।

'दोनों कांखों के मध्य-क्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे शांति व्याप्त होने दो।'

कांखों के मध्य-क्षेत्र के प्रति जागरूक हो जाओ और महसूस करो कि वह अपार शांति से भर रहा है। बस शांति को अनुभव करो और तुम पाओगे कि वह भरी जा रही है। शांति तो सदा से भरी ही है, पर तुम्हें कभी पता नहीं चला। यह केवल तुम्हारे होश को बढ़ाने के लिए, तुम्हें घर की ओर लौटा लाने के लिए है। और जब तुम्हें यह शांति अनुभव होगी, तुम परिधि से हट जाओगे। ऐसा नहीं कि वहां कुछ नहीं होगा, लेकिन जब तुम इस प्रयोग को करोगे और शांति से भरोगे तो तुम्हें एक दूरी महसूस होगी। सड़क से शोर आ रहा है, पर बीच में अब बहुत दूरी है। सब चलता रहता है, पर इससे कोई परेशानी नहीं होती; बल्कि इससे मौन और गहरा होता है।

यही चमत्कार है। बच्चे खेल रहे होंगे, कोई रेडियो सुन रहा होग, कोई लड़ रहा होगा, और पूरा संसार चलता रहेगा, लेकिन तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे और सब चीजों के बीच में एक दूरी आ गई है। यह दूरी इसलिए पैदा हुई है कि तुम परिधि से अलग हो गए हो। परिधि पर घटनाएं होंगी और तुम्हें लगेगा कि वे किसी और के साथ हो रही हैं। तुम सम्मिलित नहीं हो। तुम्हें कुछ परेशान नहीं करता इसलिए तुम सम्मिलित नहीं हो, तुम अतिक्रमण कर गए हो। यही अतिक्रमण है।

और हृदय स्वभावतः शांति का स्रोत है। तुम कुछ भी पैदा नहीं कर रहे। तुम तो बस उस स्रोत पर लौट रहे हो जो सदा से था। यह कल्पना तुम्हें इस बात के प्रति जागने में सहयोगी होगी कि हृदय शांति से भरा हुआ है, ऐसा नहीं है कि यह कल्पना शांति पैदा करेगी।

तंत्र और पाश्चात्य सम्मोहन के दृष्टिकोण में यही अंतर है। सम्मोहनविद सोचते हैं कि वे कल्पना के द्वारा कुछ पैदा कर रहे हैं। पर तंत्र का मानना है कि कल्पना के द्वारा तुम कुछ पैदा नहीं करते, तुम तो बस उस चीज के साथ लयबद्ध हो जाते हो जो पहले से ही है। क्योंकि कल्पना से तुम जो भी पैदा कर सकते हो वह स्थायी नहीं हो सकता—यदि कोई चीज वास्तविक नहीं है तो वह झूठी है, नकली है, तुम बस एक भ्रम निर्मित कर रहे हो।

तो शांति के भ्रम में पड़ने से तो वास्तविक रूप से परेशान होना बेहतर है, क्योंकि वह कोई विकास नहीं है, बस तुमने अपने को उसमें भुला लिया है। देर-अबेर तुम्हें उससे

बाहर निकलना पड़ेगा, क्योंकि जल्दी ही वास्तविकता भ्रम को तोड़ देगी। सच्चाई भ्रमों को नष्ट करेगी ही; केवल उच्चतर वास्तविकता को नष्ट नहीं किया जा सकता। उच्चतर वास्तविकता उस यथार्थ को नष्ट कर देगी जो कि परिधि पर है।

इसीलिए शंकर तथा दूसरे कई बुद्ध पुरुष कहते हैं कि संसार माया है। ऐसा नहीं है कि संसार माया है, लेकिन उन्हें एक उच्चतर वास्तविकता का बोध हुआ है। उस ऊंचाई से संसार स्वप्नवत प्रतीत होता है। वह शिखर इतनी अनंत दूर है, इतनी दूरी है कि यह संसार वास्तविक नहीं लग सकता।

तो सड़क से आता हुआ शोर ऐसे लगेगा जैसे तुम उसका सपना देख रहे हो, वह वास्तविक नहीं है। वह कुछ नहीं कर सकता। बस आता है और गुजर जाता है, और तुम अस्पर्शित रह जाते हो। और जब तुम वास्तविक से अस्पर्शित रह जाओ तो तुम्हें कैसे लगेगा कि यह वास्तविक है! वास्तविकता तुम्हें केवल तभी महसूस होती है जब वह तुममें गहरी प्रवेश कर जाए। जितनी गहरी वह प्रविष्ट होगी उतनी ही वास्तविक लगेगी।

शंकर कहते हैं, पूरा संसार मिथ्या है। वह ऐसे बिंदु पर पहुंच गए होंगे जहां से दूरी इतनी बढ़ जाती है कि संसार में जो भी हो रहा है सपना-सा ही प्रतीत होता है। उसकी प्रतीति होती है, लेकिन उसके साथ कोई वास्तविकता की प्रतीति नहीं होती, क्योंकि वह भीतर प्रवेश नहीं कर पाती। प्रवेश ही वास्तविकता का अनुपात है। यदि मैं तुम्हें पत्थर मारूं और तुम्हें चोट लगे तो उसकी चोट तुम्हारे भीतर प्रवेश करती है और चोट का प्रवेश करना ही पत्थर को वास्तविकता बनाता है। यदि मैं एक पत्थर फेंकूं और वह तुम्हें छुए, पर चोट भीतर प्रवेश न करे, तो गहरे में कहीं तुम्हें अपने पर पत्थर गिरने की आवाज सुनाई देगी, पर उससे कोई व्यवधान पैदा नहीं होगा। तुम्हें वह झूठ लगेगा, मिथ्या लगेगा, माया लगेगा।

लेकिन तुम परिधि के इतने करीब हो कि यदि मैं तुम्हें पत्थर मारूं तो तुम्हें चोट लगेगी ही। अगर मैं बुद्ध पर पत्थर फेंकूं तो उनके शरीर को भी उतनी ही चोट लगेगी जितनी तुम्हारे शरीर को लगेगी, लेकिन बुद्ध परिधि पर नहीं हैं, केंद्र में स्थित हैं। और दूरी इतनी अधिक है कि उन्हें पत्थर की आवाज तो सुनाई देगी पर चोट नहीं लगेगी। अंतस अस्पर्शित रह जाएगा, उस पर खरोंच भी न आएगी। इस निर्विचार अंतस को लगेगा कि जैसे सपने में कुछ फेंका गया। यह माया है। तो बुद्ध कहते हैं, कि किसी चीज में कोई सार नहीं है, सब कुछ असार है। संसार असार है। यह वही बात है जैसे शंकर कहते हैं कि संसार माया है।

इसे करके देखो। जब भी तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारी दोनों कांखों के बीच, तुम्हारे हृदय के केंद्र पर शांति व्याप्त कर रही है तो संसार तुम्हें भ्रामक प्रतीत होगा। यह इस बात का संकेत है कि तुम ध्यान में प्रवेश कर गए—जब संसार माया लगने लगे। ऐसा सोचो मत कि संसार माया है, ऐसा सोचने की कोई जरूरत नहीं है, तुम्हें ऐसा महसूस होगा। अचानक तुम्हारे मन में आएगा, 'संसार को क्या हो गया है?' अचानक संसार स्वप्नवत हो गया है। एक स्वप्न की तरह से सारहीन हो गया है। बस इतना ही

वास्तविक प्रतीत होता है जैसे पर्दे पर फिल्म। भले ही थ्री-डायमेंशनल हो, पर ऐसा लगता है जैसे कोई प्रक्षेपण हो। हालांकि संसार प्रक्षेपण नहीं है, संसार वास्तव में माया नहीं है। नहीं संसार तो वास्तविक है, लेकिन तुम दूरी पैदा कर लेते हो। और दूरी बढ़ती ही जाती है। और दूरी बढ़ रही है या नहीं, यह तुम इस बात से पता लगा सकते हो कि संसार अब तुम्हें कैसा लगता है।

यही कसौटी है। यह एक ध्यान की कसौटी है। यह सच नहीं है कि संसार मिथ्या है, पर यदि संसार मिथ्या लगने लगे तो तुम अंतरतम में केंद्रित हो गए। अब तुममें और परिधि में इतनी दूरी है कि तुम उसे अपने से अलग एक वस्तु की तरह देख सकते हो। तुम्हारा उससे तादात्म्य नहीं है।

यह विधि बहुत सरल है और यदि तुम इसे करो तो बहुत समय नहीं लगेगा। इस विधि के साथ तो कई बार ऐसा होता है कि पहले ही प्रयास में तुम इसके सौंदर्य और चमत्कार को अनुभव करोगे। तो इसे करके देखो। लेकिन पहले प्रयास में अगर तुम्हें कुछ अनुभव न हो तो निराश मत होओ। प्रतीक्षा करो, और करते रहो। और यह इतनी सरल विधि है कि तुम किसी भी समय इसे कर सकते हो। रात अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे कर सकते हो; सुबह जब तुम्हें लगे कि तुम्हारी नींद खुल गई है, उस समय तुम इसे कर सकते हो। पहले इसे करो फिर उठो। दस मिनट भी पर्याप्त होंगे।

रात सोने से पहले दस मिनट इसे करो। संसार को मिथ्या बना दो। और तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी जितनी पहले कभी न हुई होगी। यदि सोने से ठीक पहले संसार मिथ्या हो जाए तो सपने कम आएंगे। क्योंकि यदि संसार ही सपना बन जाए तो सपने नहीं चल सकते। और यदि संसार मिथ्या हो जाए तो तुम बिलकुल विश्रांत हो जाओगे, क्योंकि संसार की वास्तविकता तुम पर चोट नहीं करेगी, असर नहीं करेगी।

यदि विधि मैं उन लोगों को सुझाता हूं जो अनिद्रा से पीड़ित हैं। इससे बड़ी मदद मिलती है। यदि संसार मिथ्या है तो तनाव समाप्त हो जाते हैं। और यदि तुम परिधि से हट सको तो तुम स्वतः ही नींद की गहरी अवस्था में चले गए। इससे पहले कि नींद आए तुम उसमें गहरे चले गए। और फिर सुबह बहुत अच्छा लगेगा, क्योंकि तुम बहुत ताजा हो गए हो और युवा हो गए हो। तुम्हारी ऊर्जा तरंगायित है, क्योंकि तुम केंद्र से परिधि पर लौट रहे हो।

और जिस क्षण तुम्हें लगे कि नींद जा चुकी तो आंखें मत खोलो; पहले इस प्रयोग को दस मिनट के लिए करो, फिर अपनी आंखें खोलो। शरीर पूरी रात के बाद विश्राम में है और ताजा तथा जीवंत अनुभव कर रहा है। तुम पहले ही विश्रांत हो तो अब अधिक समय नहीं लगेगा। बस विश्राम करो। अपनी चेतना को दोनों कांखों के बीच हृदय पर ले आओ—उसे गहन शांति से भरा हुआ अनुभव करो। दस मिनट तक उस शांति में रहो, फिर आंखें खोलो।

संसार बिलकुल अलग ही नजर आएगा, क्योंकि शांति तुम्हारी आंखों से भी झलकेगी। और सारा दिन तुम्हें ही अनुभव होगा। न केवल तुम्हें अलग अनुभव होगा,

बल्कि तुम्हें लगेगा कि लोग भी तुमसे अलग तरह से व्यवहार कर रहे हैं। हर संबंध में तुम कुछ सहयोग देते हो। यदि तुम्हारा सहयोग न हो तो लोग तुमसे अलग तरह से व्यवहार करेंगे, क्योंकि उन्हें लगेगा कि अब तुम भिन्न व्यक्ति हो गए हो। हो सकता है कि उन्हें इसका पता भी न हो, पर जब तुम शांति से भर जाओगे तो हर कोई तुमसे अलग तरह से व्यवहार करेगा। लोग अधिक प्रेमपूर्ण और अधिक विनम्र होंगे, कम बाधा डालेंगे, खुले होंगे, समीप होंगे। एक चुंबकत्व पैदा हो गया।

शांति एक चुंबक है। जब तुम शांत होते हो तो लोग तुम्हारे अधिक निकट आते हैं, जब तुम परेशान होते हो तो सब पीछे हटते हैं। और यह इतनी भौतिक घटना है कि तुम इसे सरलता से देख सकते हो। जब भी तुम शांत हो, तुम्हें लगेगा सब तुम्हारे करीब आना चाहते हैं। क्योंकि शांति विकीरित होने लगती है, चारों ओर एक तरंग बन जाती है। तुम्हारे चारों ओर शांति के स्पंदन होते हैं और जो भी आता है तुम्हारे करीब होना चाहता है, जैसे तुम किसी वृक्ष की छाया के नीचे जाकर विश्राम करना चाहते हो।

शांत व्यक्ति के चारों ओर एक छाया होती है। वह जहां भी जाएगा सब उसके पास जाना चाहेंगे, खुले होंगे, श्रद्धा होगी। जिस व्यक्ति के भीतर संघर्ष है, विषाद है, संताप है, तनाव है, वह लोगों को दूर हटाता है। जो भी उसके पास जाता है घबराता है। तुम खतरनाक हो। तुम्हारे करीब होना खतरनाक है। क्योंकि तुम वही दोगे जो तुम्हारे पास है, लगातार तुम वही दे रहे हो।

तो हो सकता है कि तुम किसी को प्रेम करना चाहो, पर यदि तुम भीतर से परेशान हो तो तुम्हारा प्रेमी भी तुमसे दूर हटेगा और तुमसे भागना चाहेगा। क्योंकि तुम उसकी ऊर्जा को चूस लोगे और वह तुम्हारे साथ सुखी नहीं होगा। और जब तुम उसे छोड़ोगे, बिलकुल थका-हारा छोड़ोगे, क्योंकि तुम्हारे पास कोई जीवनदायी स्रोत नहीं है, तुम्हारे भीतर विध्वंसात्मक ऊर्जा है।

तो न केवल तुम्हें लगेगा कि तुम भिन्न हो गए हो, दूसरों को भी लगेगा कि तुम बदल गए हो। यदि तुम थोड़ा-सा केंद्र के करीब सरक जाओ तो तुम्हारी पूरी जीवन-शैली बदल जाती है, सारा दृष्टिकोण, सारा प्रतिफलन भिन्न हो जाता है। यदि तुम शांत हो तो तुम्हारे लिए सारा संसार शांत हो जाता है। यह केवल एक प्रतिबिंब है। तुम जो हो वही चारों ओर प्रतिबिंबित होता है। हर कोई एक दर्पण बन जाता है।

समस्त दिशाओं में व्याप्त हो जाओ

दूसरी विधि :

99. स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।

तंत्र और योग दोनों मानते हैं कि संकीर्णता ही समस्या है। क्योंकि तुमने स्वयं को इतना संकीर्ण कर लिया है इसीलिए तुम सदा ही बंधन अनुभव करते हो। बंधन कहीं और से नहीं आ रहा है, बंधन तुम्हारे संकीर्ण मन से आ रहा है। और वह संकीर्ण

से संकीर्णतर होता चला जाता है और तुम सीमित होते चले जाते हो।

वह सीमित होना तुम्हें बंधन की अनुभूति देता है। तुम्हारे पास अनंत आत्मा है और अनंत अस्तित्व है, पर वह अनंत आत्मा बंदी अनुभव करती है। तो तुम कुछ भी करो, तुम्हें सब ओर सीमाएं नजर आती हैं। तुम कहीं भी जाओ, एक बिंदु पर पहुंच जाते हो जहां से आगे नहीं जाया जा सकता। सब ओर एक सीमा-रेखा है। उड़ने के लिए कोई खुला आकाश नहीं है।

लेकिन यह सीमा तुमने खड़ी की है, यह सीमा तुम्हारा निर्माण है। तुमने कई कारणों से यह सीमा निर्मित की है—सुरक्षा के लिए, बचाव के लिए। तुमने एक सीमा बना ली है। और जितनी संकीर्ण सीमा होती है उतने सुरक्षित तुम महसूस करते हो। यदि तुम्हारी सीमा बहुत बड़ी हो तो तुम पूरी सीमा पर पहरा नहीं दे सकते, तुम सब ओर से सावधान नहीं हो सकते। बड़ी सीमा असुरिक्षत हो जाती है। सीमा को संकीर्ण करो तो तुम उस पर पहरा दे सकते हो, बंद रह सकते हो; फिर तुम संवेदनशील न रहे, सुरक्षित हो गए। इस सुरक्षा के लिए ही तुमने सीमा खड़ी की है। लेकिन फिर तुम्हें बंधन लगता है।

मन ऐसा ही विरोधाभासी है। तुम सुरक्षा भी मांगते हो और साथ ही साथ स्वतंत्रता भी। दोनों एक साथ नहीं मिल सकतीं। यदि तुम्हें स्वतंत्रता चाहिए तो सुरक्षा खोनी पड़ेगी। कुछ भी हो, सुरक्षा बस भ्रम मात्र है, वास्तविक नहीं है। क्योंकि मृत्यु तो होगी, तुम चाहे कुछ भी करो, तुम मरोगे ही। तुम्हारी सारी सुरक्षा ऊपर-ऊपर है, कुछ भी मदद न देगा। लेकिन असुरक्षा से डरकर तुम सीमाएं खड़ी करते हो, अपने चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवारें खींच लेते हो, और फिर खुला आकाश बंद हो जाता है। फिर तुम कष्ट भोगते हो! और फिर तुम कहते हो, 'खुला आकाश कहां है?' और कहते हो, 'मैं स्वतंत्रता चाहता हूं और मैं बढ़ना चाहता हूं!' लेकिन तुमने ही ये सीमाएं खड़ी की हैं।

तो इससे पहले कि तुम यह विधि करो, यह पहली बात याद रख लेने जैसी है, वरना इसे कर पाना संभव नहीं होगा। अपनी सीमाओं को बचाकर तुम इसे नहीं कर सकते। जब तक तुम सीमाएं बनाना बंद न कर दो, तब तक तुम न तो इसे कर पाओगे, न महसूस कर पाओगे।

'सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।'

कोई सीमाएं नहीं, अनंत हो रहे हो, अनंत आकाश के साथ एक हो रहे हो···।

तुम्हारे मन के साथ तो यह असंभव होगा। तुम इसे कैसे अनुभव कर सकते हो? इसे कैसे कर सकते हो? पहले तुम्हें कुछ चीजें करना बंद करना पड़ेगा।

पहली बात यह है कि यदि तुम सुरक्षा के बारे में ज्यादा ही चिंतित हो तो बंधन में ही रहो। असल में, कारागृह सबसे सुरक्षित स्थान है। वहां तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। कैदियों से अधिक सुरक्षित, अधिक पहरे में और कोई नहीं है। तुम किसी कैदी को मार नहीं सकते, उसकी हत्या नहीं कर सकते। बहुत कठिन है। वह राजा से भी अधिक पहरे में है। तुम किसी राष्ट्रपति या राजा की हत्या कर सकते हो, यह कठिन

नहीं है। रोज लोग उनकी हत्या करते रहते हैं। लेकिन तुम किसी कैदी को नहीं मार सकते। वह इतना सुरक्षित है कि यदि किसी को इतनी ही सुरक्षा पानी हो तो उसे कारागृह में ही रहना पड़ेगा, बाहर नहीं। कारागृह से बाहर रहना खतरनाक है, मुसीबतों से भरा है। कुछ भी हो सकता है।

तो हमने अपने चारों ओर मानसिक कारागृह, मनोवैज्ञानिक कारागृह बना लिए हैं। और हम उन कारागृहों को अपने साथ ढोते हैं। तुम्हें उनमें रहने की जरूरत नहीं है, वे तुम्हारे साथ चलते हैं। जहां भी तुम जाते हो तुम्हारा कारागृह साथ चलता है। तुम सदा एक दीवार के पीछे रहते हो। बस कभी-कभी किसी को छूने के लिए तुम अपना हाथ उससे बाहर निकालते हो। लेकिन बस एक हाथ, तुम अपने कारागृह से कभी बाहर नहीं आते।

तो जब भी लोग आपस में मिलते हैं, वह केवल कारागृहों से निकले हुए हाथों का मिलन होता है। डरे-डरे हम खिड़कियों से हाथ बाहर निकालते हैं और किसी भी क्षण हाथ वापस खींच लेने को तैयार रहते हैं। दोनों लोग एक ही काम कर रहे हैं, बस एक हाथ से छू रहे हैं।

और अब तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह भी एक दिखावा है, क्योंकि हाथों के चारों ओर अपना एक कवच होता है। कोई भी हाथ दस्ताने के बिना नहीं है। सिर्फ क्वीन एलिजाबेथ ही दस्ताने नहीं पहनती, तुम भी दस्ताने पहनते हो ताकि तुम्हें कोई छू न सके। और यदि कोई छूता भी है तो बस एक हाथ, मुर्दा हाथ। तुम पहले से ही पीछे हटे हुए हो, भयभीत होकर। क्योंकि दूसरा व्यक्ति भय पैदा करता है।

जैसा सार्त्र ने कहा है, 'दूसरा दुश्मन है।' यदि तुम इतने बंद हो तो दूसरा तुम्हें दुश्मन की तरह ही दिखाई देगा। बंद व्यक्ति से किसी तरह की मित्रता नहीं हो सकती। उससे मित्रता असंभव है, प्रेम असंभव है, किसी तरह का संवाद असंभव है।

तुम भयभीत हो। कोई तुम पर मालकियत कर सकता है, तुम पर हावी हो सकता है, तुम्हें गुलाम बना सकता है। इससे भयभीत होकर तुमने एक कारागृह, एक सुरक्षा कवच का निर्माण अपने चारों ओर कर लिया है। तुम संभलकर चलते हो, फूंक-फूंककर कदम रखते हो। जीवन एक ऊब हो जाता है। यदि तुम बहुत ज्यादा ही सावधान हो तो जीवन एक अभियान नहीं हो सकता। यदि तुम अपने को बहुत ज्यादा ही बचा रहे हो, सुरक्षा के पीछे भाग रहे हो, तो तुम पहले ही मर चुके।

तो एक आधारभूत नियम याद रखो—जीवन असुरक्षा है। और यदि तुम असुरक्षा में जीने को राजी हो तभी तुम जीवंत रह पाओगे। असुरक्षा स्वतंत्रता है। यदि तुम असुरक्षित होने को, सतत असुरक्षित होने को तैयार हो तो तुम स्वतंत्र रहोगे। और स्वतंत्रता परमात्मा का द्वार है।

भयभीत, तुम एक कारागृह बना लेते हो, मुर्दा हो जाते हो। फिर तुम पुकारते हो, 'परमात्मा कहां है?' और फिर तुम पूछते हो, 'जीवन कहां है? जीवन का अर्थ क्या है? आनंद कहां है?' जीवन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, लेकिन उसी की शर्तों के अनुसार

तुम्हें उससे मिलना होगा। तुम अपनी शर्तें नहीं लगा सकते हो, जीवन की अपनी शर्तें हैं। और मूल शर्त है—असुरक्षित रहो। इसके बाबत कुछ किया नहीं जा सकता। तुम बस भ्रम पैदा कर सकते हो और उस भ्रम में जीवन व्यर्थ कर ले सकते हो। कुछ भी नहीं किया जा सकता। तुम जो भी करोगे एक धोखा ही होगा।

अगर तुम प्रेम में पड़ते हो तो तुम्हें भय पकड़ लेता है कि यह स्त्री तुम्हें छोड़ देगी या यह पुरुष तुम्हें छोड़ देगा। भय तत्क्षण प्रवेश कर जाता है। जब तुम प्रेम में नहीं थे तो कभी भयभीत न थे। अब तुम प्रेम में हो—जीवन का प्रवेश हुआ और उसके साथ ही असुरक्षा का भी। जो किसी से प्रेम नहीं करता उसे कोई भय नहीं होता कि कोई उसे छोड़ देगा। पूरा संसार उसे छोड़ सकता है, उसे कोई भय नहीं है। तुम उसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते। वह सुरक्षित है। जिस क्षण तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, असुरक्षा शुरू हो जाती है, क्योंकि जीवन प्रवेश कर गया। और जीवन के साथ मृत्यु प्रवेश कर गई। जिस क्षण तुम प्रेम में पड़ते हो तुम्हें भय पकड़ लेता है—यह व्यक्ति मर सकता है, छोड़कर जा सकता है, किसी और से प्रेम कर सकता है!

अब सब कुछ सुरक्षित करने के लिए तुम्हें कुछ करना पड़ेगा, तुम्हें विवाह करना पड़ेगा। फिर एक कानूनी बंधन बनाना पड़ेगा ताकि वह व्यक्ति तुम्हें छोड़ न सके। अब समाज तुम्हारी रक्षा करेगा, कानून तुम्हारी रक्षा करेगा, पुलिस, जज सब तुम्हारी रक्षा करेंगे। अब यदि वह व्यक्ति तुम्हें छोड़ना चाहे तो तुम उसे कोर्ट में घसीट सकते हो। और यदि वह तलाक लेना चाहे तो उसे तुम्हारे विरुद्ध कुछ सिद्ध करना पड़ेगा। तब भी इसमें तीन से पांच साल तक लगेंगे। अब तुमने अपने चारों ओर एक सुरक्षा खड़ी कर ली।

लेकिन जिस क्षण तुमने विवाह किया तुम मर गए, संबंध जीवित नहीं रहा। अब वह संबंध नहीं रहा, एक कानून बन गया। अब यह कोई जीवंत चीज नहीं रही, कानूनी घटना हो गई। कोर्ट जीवन को नहीं बचा सकता, बस सौदों को बचा सकता है। कानून जीवन को नहीं बचा सकता, बस नियमों को ही बचा सकता है। अब विवाह एक मरी हुई चीज है। उसकी परिभाषा की जा सकती है। प्रेम की परिभाषा नहीं की जा सकती। विवाह परिभाष्य है, प्रेम अपरिभाष्य है।

विवाह के साथ तुम परिभाषाओं के जगत में आ गए। पर पूरी बात ही समाप्त हो गई। जिस क्षण तुमने सुरक्षित होना चाहा, जिस क्षण तुमने जीवन को बंद कर लेना चाहा ताकि इसमें कुछ भी नया न हो सके, तुम उसमें कैद हो गए। फिर तुम कष्ट भोगोगे। फिर तुम कहोगे कि यह पत्नी तुम्हारे लिए बंधन बन गई है। पति कहेगा कि पत्नी ने उसे बांध लिया है। फिर तुम लड़ोगे, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के लिए कारागृह बन गए हो। अब तुम लड़ते हो। अब प्रेम समाप्त हो गया है, बस एक कलह बची है। सुरक्षा के पीछे दौड़ने से यही होता है।

और ऐसा सब चीजों में हुआ है। इसे मूल नियम की तरह याद रखो—जीवन असुरक्षित है। यह जीवन का स्वभाव है। तो जब तुम प्रेम में पड़ो, इस भय को भले

ही झेल लो कि प्रेमिका तुम्हें छोड़कर जा सकती है, पर कभी सुरक्षा मत खड़ी करो। फिर प्रेम विकसित होगा। हो सकता है कि प्रेमिका मर जाए और तुम कुछ भी न कर पाओ, लेकिन उससे प्रेम नहीं मरेगा। प्रेम तो और बढ़ेगा।

सुरक्षा मार सकती है। असल में यदि आदमी अमर होता है तो मैं कहता हूं कि प्रेम असंभव हो जाता। यदि आदमी अमर होता तो किसी को भी प्रेम करना असंभव हो जाता है। प्रेम में पड़ना बहुत खतरनाक हो जाता। मृत्यु है तो जीवन ऐसे है जैसे किसी कंपते हुए पत्ते पर पड़ी ओस की बूंद। किसी भी क्षण हवा आएगी और ओस की बूंद गिरकर खो जाएगी। जीवन बस एक स्पंदन है। उस स्पंदन के कारण, उस गति के कारण, मृत्यु सदा बनी रहती है। इससे प्रेम को त्वरा मिलती है। प्रेम इसीलिए संभव है क्योंकि मृत्यु है। मृत्यु के कारण ही प्रेम सघन हो पाता है।

सोचो, यदि तुम्हें पता हो कि तुम्हारी प्रेमिका अगले ही क्षण मरने वाली है तो सब चालाकियां, सब कलह समाप्त हो जाएगी। और यही एक क्षण शाश्वत हो जाएगा। और इतना प्रेम उमगेगा कि तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसमें प्रवाहित हो जाएगा। लेकिन अगर तुम्हें पता हो कि अभी तुम्हारी प्रेमिका जीवित रहेगी तो फिर कोई जल्दी नहीं है। फिर अभी तुम झगड़ सकते हो और प्रेम को आगे के लिए टाल सकते हो। यदि जीवन शाश्वत हो शरीर अमर हो, तो तुम प्रेम नहीं कर सकते।

हिंदुओं की एक बड़ी सुंदर कथा है। वे कहते हैं कि स्वर्ग में जहां इंद्र राज्य करता है—इंद्र स्वर्ग का राजा है—वहां कोई प्रेम नहीं है। वहां सुंदर युवतियां हैं, पृथ्वी से अधिक सुंदर युवतियां हैं। वहां संभोग तो होता है पर प्रेम नहीं होता, क्योंकि वे अमर हैं।

तो एक कथा में कहा गया है कि मुख्य अप्सरा उर्वशी ने एक पुरुष से प्रेम करने के लिए कुछ दिन पृथ्वी पर जाने की अनुमति मांगी। इंद्र ने कहा, 'क्या मूर्खता है! तुम यहां प्रेम कर सकती हो। और इतने सुंदर लोग तुम्हें पृथ्वी पर नहीं मिलेंगे।' उर्वशी ने कहा, 'वे भले ही सुंदर हों, पर अमर हैं, इसमें कोई मजा नहीं आता, सच में तो वे मुर्दा हैं।'

वास्तव में वे मुर्दा ही हैं, क्योंकि उन्हें जीवंत बनाने के लिए कोई मृत्यु नहीं है। वे सदा-सदा रहेंगे। वे कभी मर नहीं सकते, इसलिए वे जीवित भी कैसे हो सकते हैं? वह जीवंतता मृत्यु के विपरीत ही होती है। आदमी जीवित है क्योंकि मृत्यु सतत संघर्ष कर रही है। मृत्यु की भूमिका में जीवन है।

तो उर्वशी ने कहा, 'मुझे पृथ्वी पर जाने की आज्ञा दो। मैं किसी को प्रेम करना चाहती हूं।' उसे आज्ञा मिल गई। तो वह नीचे पृथ्वी पर आ गई और एक युवक पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई। लेकिन इंद्र की ओर से एक शर्त थी। इंद्र ने शर्त रखी थी कि वह पृथ्वी पर जा सकती है, किसी से प्रेम कर सकती है, पर जो पुरुष उसे प्रेम करे उसे यह पहले ही बता देना होगा कि वह उससे यह कभी न पूछे कि वह कौन है।

प्रेम के लिए यह कठिन है, क्योंकि प्रेम जानना चाहता है। प्रेम प्रेमी के विषय में सब कुछ जानना चाहता हूं। हर अज्ञात चीज को ज्ञात करना चाहता है। हर रहस्य

में प्रवेश करना चाहता है। तो इंद्र ने बड़ी चालाकी से यह शर्त रखी, जिसकी चालबाजी को उर्वशी नहीं समझ पाई। वह बोली, 'ठीक है। मैं अपने प्रेमी को कह दूंगी कि वह मेरे बारे में कभी कुछ जानना न चाहे, कभी यह न पूछे कि मैं कौन हूं। और यदि वह पूछता है तो तत्क्षण उसे छोड़कर मैं वापस आ जाऊंगी।' और उसने पुरुरवा से कह दिया, 'कभी मुझसे यह मत पूछना कि मैं कौन हूं। जिस क्षण तुम पूछोगे, मुझे पृथ्वी को छोड़ना पड़ेगा।'

लेकिन प्रेम तो जानना चाहता है। और इस बात के कारण पुरुरवा और भी उत्सुक हो गया होगा कि वह कौन है। वह सो भी नहीं सका। वह उर्वशी की ओर देखता रहा। वह है कौन? इतनी सुंदर स्त्री, किसी स्वप्निल पदार्थ की बनी लगती है, पार्थिव, भौतिक नहीं लगती। शायद वह कहीं और से, किसी अज्ञात आयाम से आई है। वह और-और उत्सुक होता गया। लेकिन वह और भयभीत भी होता गया कि वह जा सकती है। वह इतना भयभीत हो गया कि जब रात वह सोती, उसकी साड़ी का पल्लू वह अपने हाथ में ले लेता, क्योंकि उसे अपने पर भी भरोसा नहीं था। कभी भी वह पूछ सकता था, प्रश्न सदा उसके मन में रहता था। अपनी नींद में भी वह पूछ सकता था। और उर्वशी ने कहा था कि नींद में भी उसके बाबत नहीं पूछना है। तो वह उसकी साड़ी का कोना अपने हाथ में लेकर सोता।

लेकिन एक रात वह अपने को वश में नहीं रख पाया और उसने सोचा कि अब वह उससे इतना प्रेम करती है कि छोड़कर नहीं जाएगी। तो उसने पूछ लिया। उर्वशी को अदृश्य होना पड़ा, बस उसकी साड़ी का एक टुकड़ा पुरुरवा के हाथ में रह गया। और कहा जाता है कि वह अभी भी उसे खोज रहा है।

स्वर्ग में प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि असल में वहां कोई जीवन ही नहीं है। जीवन यहां इस पृथ्वी पर है, जहां मृत्यु है। जब भी तुम कुछ सुरक्षित कर लेते हो, जीवन खो जाता है। असुरक्षित रहो, यह जीवन का ही गुण है। इसके बारे में कुछ किया नहीं जा सकता। और यह सुंदर है।

जरा सोचो, यदि तुम्हारा शरीर अमर होता तो कितना कुरूप होता। तुम आत्मघात करने के उपाय खोजने लगोगे। और यदि यह असंभव है, कानून के विरुद्ध है, तो तुम्हें इतना कष्ट होगा कि कल्पना भी नहीं कर सकते। अमरत्व एक बहुत लंबी बात है। अब पश्चिम में लोग स्वेच्छा-मरण की बात सोच रहे हैं, क्योंकि लोग अब लंबे समय तक जी रहे हैं। तो जो व्यक्ति सौ वर्ष तक पहुंच जाता है वह स्वयं को मारने का अधिकार चाहता है।

और वास्तव में, यह अधिकार देना ही पड़ेगा। जब जीवन बहुत छोटा था तो हमने आत्महत्या न करने का कानून बनाया था। बुद्ध के समय में चालीस या पचास साल का हो जाना बहुत था। औसत आयु कोई बीस साल के करीब थी। भारत में अभी बीस साल पहले तक औसत आयु तेईस साल थी। अब स्वीडन में औसत आयु तिरासी साल है। तो लोग बड़ी आसानी से डेढ़ सौ साल तक जी सकते हैं। रूस में कोई पंद्रह सौ

लोग हैं जो डेढ़ सौ तक पहुंच गए हैं। अब यदि वे कहते हैं कि उन्हें स्वयं को मारने का अधिकार है क्योंकि अब बहुत हो चुका, तो हमें यह अधिकार उन्हें देना होगा। इससे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता।

देर-अबेर आत्महत्या हमारा जन्मसिद्ध अधिकार होगा। अगर कोई मरना चाहता है तो तुम उसे मना नहीं कर सकते—किसी भी कारण से नहीं। क्योंकि अब जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया, पहले ही बहुत हो चुका। सौ साल के व्यक्ति को जीने जैसा नहीं लगता। ऐसा नहीं है कि वह परेशान हो गया है, कि उसके पास भोजन नहीं है। सब कुछ है, पर जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया है।

तो अमरत्व की सोचो, जीवन बिलकुल अर्थहीन हो जाएगा। अर्थ मृत्यु के कारण होता है। प्रेम का अर्थ है, क्योंकि प्रेम खोया जा सकता है। तब प्रेम धड़कता है, स्पंदित होता है। प्रेम खो सकता है। तुम उसके बारे में निश्चिंत नहीं हो सकते। तुम उसे कल पर नहीं टाल सकते, क्योंकि हो सकता है कल प्रेम रहे ही न। तुम्हें प्रेमी या प्रेमिका को इस तरह से प्रेम करना होगा कि हो सकता है कल आए ही न। फिर प्रेम सघन होता है।

तो पहली बात, सुरक्षित जीवन पैदा करने के अपने सारे प्रयास हटा लो। बस यह प्रयास हटाने से ही तुम्हारे आस-पास की दीवारें गिरने लगेंगी। पहली बार तुम्हें लगेगा कि वर्षा तुम पर सीधी पड़ रही है, हवाएं सीधी तुम तक बह रही हैं, सूर्य सीधा तुम तक पहुंच रहा है। तुम खुले आकाश के नीचे आ जाओगे। सुंदर है यह। लेकिन तुम्हें अगर यह विचित्र लगता है तो इसलिए क्योंकि तुम कारागृह में रहने के आदी हो गए हो। तुम्हें इस नई स्वतंत्रता से परिचित होना पड़ेगा। यह स्वतंत्रता तुम्हें अधिक जीवंत, अधिक तरल, अधिक खुला, अधिक समृद्ध, अधिक जीवित बनाएगी। लेकिन तुम्हारी जीवंतता, तुम्हारे जीवन का शिखर जितना ऊंचा होगा, उतनी ही गहन मृत्यु तुम्हारे निकट होगी, एकदम करीब होगी। तुम केवल मृत्यु के, मृत्यु की घाटी के विरुद्ध ही उठ सकते हो। जीवन का शिखर और मृत्यु की घाटी सदा पास-पास होते हैं और एक ही अनुपात में होते हैं।

इसलिए मैं कहता हूं कि नीत्शे के सूत्र का पालन करना चाहिए। यह बड़ा आध्यात्मिक सूत्र है। नीत्शे कहता है, 'खतरे में जीओ।' ऐसा नहीं कि खतरा तुम्हें खोजना है। खतरे को अपनी ओर से खोजने की कोई जरूरत नहीं है। बस सुरक्षा मत खड़ी करो। अपने चारों ओर दीवारें मत खींचो। स्वाभाविक रूप से जीओ और यही बहुत खतरनाक होगा। खतरे को खोजने की जरूरत नहीं है।

फिर तुम यह विधि कर सकते हो, 'स्वयं को सभी दिशाओं में परिव्याप्त होता हुआ महसूस करो—सुदूर, समीप।'

फिर यह बहुत असान है। यदि दीवारें न हों तो तुम स्वयं को सब ओर व्याप्त होता हुआ अनुभव करने ही लगोगे। फिर तुम कहां समाप्त होते हो, इसकी कोई सीमा नहीं होगी। तुम बस हृदय से शुरू होते हो और कहीं भी समाप्त नहीं होते। बस तुम्हारे

पास एक केंद्र है और कोई परिधि नहीं है। परिधि बढ़ती चली जाती है—आगे और आगे। पूरा आकाश उसमें समा जाता है। सितारे उसमें घूमते हैं। पृथ्वियां उसी में बनती हैं और मिटती हैं। ग्रह उगते हैं और अस्त होते हैं। पूरा ब्रह्मांड तुम्हारी परिधि बन जाता है।

इस विस्तार में तुम्हारा अहंकार कहां होगा? इस विस्तार से तुम्हारे कष्ट कहां होंगे? इस विस्तार में तुम्हारा चालाक मन कहां होगा? क्षुद्र मन कहां होगा? इतने विस्तार में मन नहीं बच सकता, विलीन हो जाता है। बस एक संकीर्ण स्थान पर ही मन बच सकता है। मन तो केवल तभी चल सकता है जब दीवारों में बंद हो, कैद हो। यह बंद होना ही समस्या है। खतरे में जीओ और असुरक्षा में जीने के लिए तैयार रहो। और मजा यह है कि अगर तुम असुरक्षा में न भी रहना चाहो तो भी असुरक्षित ही हो! तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

मैंने एक राजा के बारे में सुना है। वह मृत्यु से बहुत डरता था···।

राजा अधिक डरते हैं। वे अधिक डरते हैं क्योंकि उन्होंने इतने लोगों का शोषण किया है; उन्होंने इतने लोगों को दबाया है, कुचला है; इतने लोगों पर उन्होंने राजनैतिक खेल खेले हैं। उनके कई शत्रु बन जाते हैं। असली राजा का कोई मित्र नहीं होता, हो नहीं सकता। क्योंकि घनिष्ठतम मित्र भी उसका शत्रु होता है, बस अवसर की तलाश में होता है कि कब उसे मारकर उसकी जगह पर बैठ सके। सत्ता में जो व्यक्ति होता है उसको कोई मित्र नहीं हो सकता। किसी हिटलर, किसी स्टैलिन, किसी निक्सन का कोई मित्र नहीं हो सकता। उनके बस शत्रु होते हैं जो मित्रों की तरह उनके आस-पास घूम रहे हैं, ताकि मौका मिलते ही उनको धक्का देकर वे स्वयं सिंहासन पर आ सकें। जब भी उन्हें मौका मिले वे कुछ भी कर सकते हैं। एक ही क्षण पहले वे मित्र थे, लेकिन उनकी मित्रता एक छलावा है। उनकी मित्रता एक दांव-पेंच है। सत्ता में जो है उसका कोई मित्र नहीं हो सकता।

इसीलिए लाओत्से कहता है, 'यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मित्र हों तो सत्ता में मत आओ। फिर सारा संसार तुम्हारा मित्र होगा। यदि तुम सत्ता में हो तो बस तुम ही अकेले मित्र हो, बाकी सब शत्रु हैं।'

तो वह राजा बहुत डरा हुआ था। उसे मृत्यु का बड़ा भय था, चारों ओर मृत्यु ही मृत्यु थी। उसे यही भय लगा रहता था कि उसके आस-पास सभी उसे मारना चाहते हैं। वह सो भी नहीं सकता था। उसने अपने सलाहकारों से पूछा कि क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह एक ऐसा महल बनवाए जिसमें केवल एक ही द्वार हो। द्वार पर सैनिकों की सात टुकड़ियां खड़ी की जाएं—पहली टुकड़ी महल पर नजर रखे, दूसरी टुकड़ी पहली पर, तीसरी दूसरी पर। एक ही द्वार होने से कोई और भीतर नहीं आ सकता और राजा सुरक्षित रहेगा।

राजा ने एक ही द्वार वाला महल बनवाया और उस पर सैनिकों की सात टुकड़ियां तैनात करवा दीं जो एक-दूसरे पर नजर रखती थीं। यह खबर चारों ओर फैल गई और पड़ोसी राज्य का राजा उसे देखने आया। वह भी भयभीत था। उसे खबर मिली थी कि

पड़ोसी राजा ने ऐसा सुरक्षित महल बनवाया है जहां उसे मार पाना असंभव है। तो वह देखने आया और दोनों ने मिलकर इस एक ही द्वार वाले महल और सुरक्षा व्यवस्था की बड़ी प्रशंसा की—कोई खतरा नहीं है।

जब वे द्वार की ओर देख रहे थे तो सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी हंसने लगा। तो राजा ने उससे पूछा, 'तू हंस क्यों रहा है?' भिखारी ने उत्तर दिया, 'मैं इसलिए हंस रहा हूं कि तुमसे एक गलती हो गई है। तुम्हें अंदर जाकर इस द्वार को भी बंद कर लेना चाहिए। यह द्वार खतरनाक है, कोई इससे भीतर घुस सकता है। द्वार का अर्थ ही है कि कोई भीतर आ सकता है। यदि कोई न भी आए तो कम से कम मृत्यु तो आएगी ही। तो तुम एक काम करो—अंदर चले जाओ और इस द्वार को भी बंद कर लो। तब तुम सच में सुरक्षित हो जाओगे, क्योंकि मृत्यु भी नहीं घुस सकेगी।'

लेकिन राजा ने कहा, 'अगर मैं यह द्वार भी बंद कर लूं तो मैं वैसे ही मर जाऊंगा!' उस भिखारी ने कहा, 'निन्यानबे प्रतिशत तो तुम मर ही चुके हो, तुम उतने ही जीवित हो जितना यह द्वार। बस इतना ही खतरा है, इतने ही तुम जीवित हो। यह जीवंतता भी छोड़ दो।'

सभी अपनी-अपनी तरह से अपने आस-पास महल बना रहे हैं, ताकि भीतर कोई न आ सके और वे शांति से रह सकें। लेकिन फिर तुम पहले ही मर गए। और शांति बस उन्हें ही घटती है जो जीवित हैं। शांति कोई मुर्दा चीज नहीं है। जीवंत रहो, खतरे में जीओ, एक संवेदनशील, मुक्त जीवन जीओ, ताकि तुम्हें सब कुछ स्पर्श कर सके। और अपने साथ सब कुछ होने दो। जितना तुम्हारे साथ कुछ घटेगा, उतने ही तुम समृद्ध होओगे।

फिर तुम इस विधि का अभ्यास कर सकते हो। फिर यह विधि बड़ी सरल है, तुम्हें इसका अभ्यास करने की जरूरत भी नहीं पड़ेगी। बस भाव करो, और तुम पूरे आकाश में परिव्याप्त हो जाओगे।

आज इतना ही।

72

असुरक्षा में जीना बुद्धत्व का मार्ग है

प्रश्न-सार

1. *कृपया बुद्ध पुरुष के प्रेम को समझाएं।*
2. *क्या प्रेम गहरा होकर विवाह नहीं बन सकता?*
3. *क्या व्यक्ति असुरक्षा में जीते हुए निश्चिंत रह सकता है?*
4. *अतिक्रमण की क्या आवश्यकता है?*

पहला प्रश्न :

आपने कहा कि प्रेम केवल मृत्यु के साथ ही संभव है। फिर क्या आप कृपया बुद्ध पुरुष के प्रेम के विषय में समझाएंगे?

अज्ञानी व्यक्ति के लिए तो प्रेम सदा घृणा का ही अंग होता है, सदा घृणा के साथ ही आता है। अज्ञानी मन के लिए तो प्रेम और घृणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अज्ञानी मन के लिए प्रेम कभी शुद्ध नहीं होता। और यही प्रेम का विषाद है, क्योंकि वह घृणा जो है, विष बन जाती है। तुम किसी से प्रेम करते हो और उसी से घृणा भी करते हो।

लेकिन हो सकता है, तुम घृणा और प्रेम दोनों एक साथ न कर रहे होओ तो तुम्हें कभी इसका पता ही नहीं चलता। जब तुम किसी से प्रेम करते हो तो तुम घृणा वाले हिस्से को भूल जाते हो, वह नीचे चला जाता है, अचेतन मन में चला जाता है और वहां प्रतीक्षा करता है। फिर जब तुम्हारा प्रेम थक जाता है तो वह अचेतन में गिर जाता है और घृणा वाला हिस्सा ऊपर आ जाता है। फिर तुम उसी व्यक्ति से घृणा करने लगते हो। और जब तुम घृणा करते हो तो तुम्हें पता भी नहीं होता कि तुम प्रेम भी करते हो, अब प्रेम गहरे अचेतन में चला गया है। यह चलता रहता है, बिलकुल दिन और रात की तरह यह एक वर्तुल में चलता चला जाता है। यही विषाद बन जाता है।

लेकिन एक बुद्ध, एक जाग्रत व्यक्ति के लिए दुई, द्वैत मिट जाते हैं। सब तरफ—न केवल प्रेम के ही संबंध में, बल्कि पूरा जीवन एक अद्वैत बन जाता है। फिर कोई दुई नहीं रहती, विरोधाभास नहीं बचता।

तो वास्तव में, बुद्ध के प्रेम को प्रेम कहना ठीक नहीं है, लेकिन हमारे पास और कोई शब्द नहीं है। बुद्ध ने स्वयं कभी प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया। उन्होंने करुणा

शब्द का उपयोग किया। लेकिन वह भी कोई बहुत अच्छा शब्द नहीं है। क्योंकि तुम्हारी करुणा सदा तुम्हारी क्रूरता के साथ संबंधित है, तुम्हारी अहिंसा सदा तुम्हारी हिंसा के साथ संबंधित है। तुम कुछ भी करो उसका विपरीत सदा ही साथ होगा। तुम विरोधाभासों में जीते हो; इसीलिए तनाव, दुख और संताप होते हैं।

तुम एक नहीं हो, तुम हमेशा बंटे हुए हो। तुम बहुत से खंडों में बंटी हुई एक भीड़ हो। और वे सब खंड एक-दूसरे का विरोध कर रहे हैं। तुम्हारा होना एक तनाव है; बुद्ध का होना एक गहन विश्राम है। स्मरण रखो, तनाव दो विरोधी ध्रुवों के बीच में होता है, और विश्राम होता है ठीक मध्य में, जहां दो विरोधी ध्रुव विरोधी नहीं रहते। वे एक-दूसरे को काट देते हैं, और एक रूपांतरण घटित होता है।

तो बुद्ध का प्रेम उससे मूलतः भिन्न होता है, जिसे तुम प्रेम जानते हो। तुम्हारा प्रेम तो एक बेचैनी है; बुद्ध का प्रेम है पूर्ण विश्राम। उसमें मस्तिष्क का कोई भाग नहीं होता, इसलिए उसका गुणधर्म पूर्णतः बदल जाता है। बुद्ध के प्रेम में ऐसा बहुत कुछ होगा जो साधारण प्रेम में नहीं होता।

पहली बात तो यह कि वह ऊष्ण नहीं होगा। ऊष्णता आती है घृणा से। बुद्ध का प्रेम वासना नहीं, करुणा होता है; ऊष्ण नहीं, शीतल होता है। हमारे लिए तो शीतल प्रेम का अर्थ होता है कि इसमें कुछ कमी है। बुद्ध का प्रेम शीतल होता है, उसमें कोई ऊष्णता नहीं होती। वह सूर्य की तरह नहीं होता, चांद की तरह होता है। वह तुममें उत्तेजना नहीं लाता, वरन एक गहन शीतलता निर्मित करता है।

दूसरे, बुद्ध का प्रेम वास्तव में कोई संबंध नहीं होता, तुम्हारा प्रेम एक संबंध होता है। बुद्ध का प्रेम तो उनके होने की अवस्था ही है। असल में, वह तुम्हें प्रेम नहीं करते, वह प्रेम ही हैं। यह भेद स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। यदि तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो तुम्हारा प्रेम एक कृत्य होता है, तुम कुछ करते हो, कोई निश्चित व्यवहार करते हो, कोई संबंध, कोई सेतु निर्मित करते हो। बुद्ध का प्रेम तो बस उनका होना ही है, बस ऐसे ही वह हैं। वह तुम्हें प्रेम नहीं कर रहे, वह प्रेम ही हैं। वह तो बगीचे में खिले फूल की तरह हैं। तुम उधर से गुजरो, और सुगंध तुम तक पहुंच जाती है। ऐसा नहीं है कि फूल विशेष रूप से तुम तक सुगंध पहुंचा रहा है; जब कोई नहीं भी गुजर रहा था, तब भी वहां सुगंध थी। और यदि कभी भी कोई नहीं गुजरे, तब भी सुगंध रहेगी।

जब तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे साथ नहीं होता, तुम्हारी प्रेमिका तुम्हारे साथ नहीं होती, प्रेम विदा हो जाता है, सुवास नहीं रहती। यह प्रेम तुम्हारा प्रयास है, तुम्हारा होना मात्र नहीं है। इसे लाने के लिए तुम्हें कुछ करना पड़ता है। जब कोई भी नहीं है और बुद्ध अकेले अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हैं तो भी वह प्रेम में होते हैं। अब यह जरा अजीब लगता है कि तब भी वह प्रेम में होते हैं। वहां कोई भी नहीं है जिसे प्रेम किया जाए, लेकिन फिर भी वह प्रेम में हैं। यह प्रेमपूर्ण होना उनकी अवस्था है। और क्योंकि यह उनकी अवस्था है, इसलिए उसमें तनाव नहीं होता। बुद्ध अपने प्रेम से थक नहीं सकते।

तुम थक जाओगे, क्योंकि तुम्हारा प्रेम ऐसा है जिसे तुम कर रहे हो। तो यदि बहुत प्रेम होता है तो प्रेमी एक-दूसरे से थक जाते हैं। वे थक जाते हैं, और दोबारा ऊर्जा से भरने के लिए उन्हें अवकाश की, अंतराल की जरूरत पड़ती है। यदि तुम चौबीस घंटे अपने प्रेमी के साथ रहो तो वह ऊब जाएगा, क्योंकि इतना ध्यान देना बहुत अधिक हो जाएगा। कुछ भी चौबीसों घंटे करते रहना अति हो जाती है।

बुद्ध कुछ कर नहीं रहे, वह अपने प्रेम से थकते नहीं हैं। यह तो उनका होना ही है, यह तो ऐसे ही हैं जैसे वह श्वास ले रहे हों। जैसे तुम श्वास लेने से कभी थकते नहीं, अपने होने से कभी थकते नहीं, ऐसे ही वह भी कभी अपने प्रेम से थकते नहीं।

और तीसरी बात यह है कि तुम्हें पता चलता है कि तुम प्रेम कर रहे हो, बुद्ध को बिलकुल पता नहीं होता। क्योंकि पता चलने के लिए विपरीत की आवश्यकता होती है। बुद्ध तो प्रेम से इतने भरे हैं कि उन्हें पता ही न चलेगा। यदि तुम उनसे पूछो तो वह कहेंगे, 'मैं तुमसे प्रेम करता हूं।' लेकिन इसका उन्हें पता नहीं होगा। प्रेम इतना चुपचाप उनसे बह रहा है, उनका इतना अंतरंग हिस्सा बन गया है, कि उन्हें इसका पता हो ही नहीं सकता।

तुम्हें पता चलेगा कि वह प्रेम करते हैं, और यदि तुम खुले तथा ग्रहणशील हो तो तुम्हें अधिक पता चलेगा कि वह तुम्हें और भी प्रेम करते हैं। तो यह तुम्हारी क्षमता पर निर्भर करता है कि तुम कितना ग्रहण कर सकते हो। लेकिन उनकी तरफ से यह कोई भेंट नहीं है। वह तुम्हें कुछ दे नहीं रहे हैं, ऐसे वह हैं ही, यही उनका होना है। जब भी तुम अपने समग्र अस्तित्व के प्रति जागते हो, प्रबुद्ध होते हो, मुक्त होते हो, तो तुम्हारे जीवन से विरोधाभास मिट जाता है। फिर कोई द्वैत नहीं रहता। फिर जीवन एक लयबद्धता बन जाता है, कुछ भी किसी भी चीज के विरुद्ध नहीं होता।

इस लयबद्धता के कारण एक गहन शांति घटित होती है, कोई अशांति नहीं रहती। अशांति बाहर पैदा नहीं होती, तुम्हारे भीतर ही होती है। विरोधाभास ही अशांति पैदा करता रहता है, जब कि बहाने तुम बाहर खोज ले सकते हो। उदाहरण के लिए जरा गौर से देखो कि अपने प्रेमी या किसी मित्र, किसी गहन, अंतरंग, निकटस्थ मित्र के साथ होने पर तुम्हें क्या होता है। उसके साथ रहो और बस देखो कि तुम्हें क्या हो रहा है। जब तुम मिलते हो तो तुम बहुत उत्साहित, आनंदित और नृत्यपूर्ण होते हो। लेकिन कितना नृत्य तुम कर सकते हो? और कितने आनंदित तुम हो सकते हो?

कुछ ही मिनटों में तुम नीचे उतरने लगते हो, उत्साह चला जाता है। और कुछ घंटों बाद तो तुम ऊब जाते हो, तुम कहीं और भाग जाने की सोचने लगते हो। और कुछ दिनों बाद तो तुम लड़ने लगोगे। ज़रा गौर से देखो कि क्या हो रहा है। यह सब भीतर से आ रहा है, लेकिन तुम बाहर बहाने खोज लोगे। तुम कहोगे कि यह व्यक्ति अब उतना प्रेमपूर्ण नहीं रहा जितना कि जब यह आया था, तब था; अब यह व्यक्ति मुझे अशांत कर रहा है, मुझे क्रोधित कर रहा है। और तुम हमेशा ही कोई बहाना खोज लोगे कि वह तुम्हें कुछ कर रहा है, तुम्हें कभी भी पता न चलेगा कि तुम्हारा विरोधाभास,

तुम्हारे मन का द्वैत या अंतर्द्वंद्व कुछ कर रहा है। हमें कभी भी हमारे अपने मन के कृत्यों का पता नहीं चल पाता।

मैंने सुना है कि एक बहुत प्रसिद्ध, सुंदर, हालीवुड अभिनेत्री एक स्टूडियो में अपना फोटो लेने गई। फोटो एक दिन पहले खींचा गया था। फोटोग्राफर ने फोटो उसे दिया, पर वह तो बहुत नाराज हो गई, तमतमा गई। उसने कहा, 'यह तुमने क्या कर डाला है? पहले भी तुमने मेरे फोटो लिए हैं, पर वे सब कितने गजब के थे!' फोटोग्राफर ने अभिनेत्री को कहा, 'हां, लेकिन आप यह भूल रही हैं कि जब मैंने वे फोटो खींचे थे तो मैं बारह वर्ष छोटा था। मैं तब बारह वर्ष छोटा था, यह आप भूल रही हैं।'

हम भीतर कभी नहीं देखते कि क्या हो रहा है। यदि फोटो तुम्हें ठीक नहीं लग रहा हो तो फोटोग्राफर में कुछ गड़बड़ है। यह नहीं कि बारह वर्ष बीत चुके हैं और अब तुम बड़ी हो गई हो। यह तो एक आंतरिक प्रक्रिया है, फोटोग्राफर का इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है। लेकिन फोटोग्राफर बड़ा बुद्धिमान रहा होगा! उसने कहा, 'आप भूल रही हैं कि मैं तब बारह वर्ष छोटा था।'

बुद्ध का प्रेम बिलकुल भिन्न है, लेकिन उसके लिए हमारे पास कोई और शब्द नहीं है। सबसे अच्छा शब्द जो हमारे पास है, वह प्रेम ही है। लेकिन यदि तुम यह स्मरण रख सको तो उसका गुणधर्म बिलकुल बदल जाता है।

और एक बात गांठ बांध लो, इस पर गहन विचार करो—यदि बुद्ध तुम्हारे प्रेमी हों तो क्या तुम संतुष्ट हो जाओगे? तुम संतुष्ट नहीं होओगे। क्योंकि तुम्हें लगेगा कि यह प्रेम तो शीतल है, इसमें कोई उत्तेजना नहीं है। तुम्हें लगेगा कि वह तुम्हें ऐसे ही प्रेम करते हैं जैसे वह सबको करते हैं, तुम कोई विशेष नहीं हो। तुम्हें लगेगा कि उनका प्रेम कोई भेंट नहीं है, वह तो ऐसे हैं ही, इसीलिए प्रेम कर रहे हैं। तुम्हें उनका प्रेम इतना स्वाभाविक लगेगा कि तुम उससे संतुष्ट नहीं होओगे।

भीतर विचार करो। जो प्रेम घृणा-रहित है उससे तुम कभी भी तृप्त नहीं हो सकते। और उस प्रेम से भी तुम कभी तृप्त नहीं हो सकते जिसमें घृणा हो। यही समस्या है। किसी भी तरह तुम अतृप्त ही रहोगे। यदि प्रेम घृणा के साथ है तो तुम अतृप्त रहोगे, सदा रुग्ण रहोगे, क्योंकि वह घृणा का अंश तुम्हें अशांत करेगा। यदि प्रेम घृणा-रहित है तो तुम्हें लगेगा कि यह शीतल है। और बुद्ध को यह इतने स्वाभाविक रूप से घटित हो रहा है कि तुम न भी होते तो भी होता, तो यह कोई विशेष रूप से तुम्हारे लिए नहीं है। इसलिए तुम्हारा अहंकार तृप्त नहीं होता। और मुझे ऐसा लगता है कि यदि तुम्हारे सामने किसी बुद्ध और अबुद्ध में से अपना प्रेमी चुनने का सवाल हो तो तुम अबुद्ध को चुनोगे, क्योंकि उसकी भाषा तुम समझ सकते हो। अबुद्ध कम से कम तुम्हारे जैसा तो है। तुम लड़ोगे-झगड़ोगे, सब अस्त-व्यस्त हो जाएगा, सब गड़बड़ हो जाएगा, लेकिन फिर भी तुम अबुद्ध को ही चुनोगे। क्योंकि बुद्ध इतने ऊंचे होंगे कि जब तक तुम भी ऊंचे न उठो, तुम नहीं समझ पाओगे कि बुद्ध कैसे प्रेम करते हैं।

एक अबुद्ध के साथ, एक अज्ञानी के साथ, तुम्हें स्वयं को रूपांतरित करने की

जरूरत नहीं होती। तुम वैसे के वैसे ही बने रह सकते हो। वह प्रेम कोई चुनौती नहीं है। वास्तव में प्रेमियों के साथ बिलकुल विपरीत ही होता है। जब दो प्रेमी मिलते हैं और प्रेम में पड़ते हैं तो वे दोनों एक-दूसरे को विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि वे बहुत महान हैं। जो भी सर्वोत्तम गुण हैं उन्हें वे बाहर लाते हैं। ऐसा लगता है कि वे शिखर पर हैं। लेकिन इसमें बहुत प्रयास करना पड़ता है! इस शिखर पर तुम टिके नहीं रह सकते। तो जब तुम थोड़े व्यवस्थित होने लगते हो तो धरती पर वापस लौट आते हो।

तो प्रेमी सदा एक-दूसरे से असंतुष्ट रहते हैं, क्योंकि उन्होंने सोचा था कि दूसरा तो बस दिव्य है और जब वे कुछ परिचित होते हैं, थोड़ा समय साथ होते हैं, तो सब कुछ धूमिल हो जाता है, साधारण हो जाता है। तो उन्हें लगता है कि दूसरा धोखा दे रहा था।

नहीं, वह धोखा नहीं दे रहा था, वह तो सर्वोत्तम रंगों में स्वयं को प्रस्तुत कर रहा था। बस इतना ही था। वह किसी को धोखा नहीं दे रहा था, वह जान-बूझकर कुछ भी नहीं कर रहा था। वह तो बस अपने सर्वोत्तम रंगों में स्वयं को प्रस्तुत कर रहा था। और ऐसा ही दूसरे ने भी किया था। लेकिन तुम स्वयं को बहुत देर तक इसी तरह प्रस्तुत नहीं कर सकते, क्योंकि यह बड़ा दुष्कर हो जाता है, कठिन हो जाता है, बोझिल हो जाता है। तो तुम नीचे उतर आते हो।

जब दो प्रेमी व्यवस्थित हो जाते हैं, जब वे मानने लगते हैं कि दूसरा तो उपलब्ध ही है, तब वे बड़े निकृष्ट, बड़े सामान्य, बड़े साधारण दिखाई पड़ने लगते हैं। जैसे वे पहले दिखाई पड़ते थे, उसके बिलकुल विपरीत दिखाई पड़ने लगते हैं। उस समय तो वे फरिश्ते थे; अब तो बस शैतान के शिष्य नजर आते हैं। तुम नीचे गिर जाते हो, तुम अपने सामान्य तल पर लौट आते हो।

साधारण प्रेम कोई चुनौती नहीं है, लेकिन किसी बुद्ध पुरुष के प्रेम में पड़ जाना बड़ी दुर्लभ घटना है। केवल बहुत सौभाग्यशाली ही ऐसे प्रेम में पड़ते हैं। यह बड़ी दुर्लभ घटना है। ऐसा तो केवल तभी होता है जब तुम जन्मों-जन्मों से किसी बुद्ध पुरुष की खोज करते रहे होओ। यदि ऐसा हुआ हो, केवल तभी तुम बुद्ध पुरुष के प्रेम में पड़ते हो। एक बुद्ध पुरुष के प्रेम में पड़ना स्वयं में ही एक महान उपलब्धि है। लेकिन फिर एक कठिनाई होती है। कठिनाई यह है कि बुद्ध पुरुष एक चुनौती है। वह तुम्हारे तल पर तो उतर नहीं सकता, ऐसा संभव ही नहीं है, यह असंभव है। तुम्हें ही उसके शिखर पर जाना होगा; तुम्हें यात्रा करनी होगी, तुम्हें रूपांतरित होना होगा।

तो यदि तुम किसी बुद्ध पुरुष के प्रेम में पड़ जाओ तो प्रेम एक साधना बन जाता है। प्रेम साधना बन जाता है, महानतम साधना बन जाता है। इसी कारण से जब भी कोई बुद्ध होते हैं, या कोई जीसस, या कोई लाओत्से, तो उनके आस-पास बहुत से लोग एक ही जन्म में उन शिखरों पर पहुंच जाते हैं जहां वे कई जन्मों में भी न पहुंच पाते। लेकिन इसका सारा राज इतना है कि वे प्रेम में पड़ सकें। यह अकल्पनीय नहीं है,

कल्पनीय है। हो सकता है तुम बुद्ध के समय में रहे होओ, तुम जरूर कहीं आस-पास रहे होओगे। बुद्ध शायद तुम्हारे गांव या नगर से गुजरे होंगे। और हो सकता है तुमने उन्हें सुना भी न हो, तुमने उन्हें देखा भी न हो। क्योंकि किसी बुद्ध को सुनने या किसी बुद्ध को देखने या उसके करीब जाने के लिए भी एक प्रेम चाहिए, तुम्हारी ओर से एक खोज चाहिए।

जब कोई बुद्ध पुरुष के प्रेम में पड़ता है तो यह बात अर्थपूर्ण होती है, बहुत अर्थपूर्ण होती है। लेकिन कठिन होता है मार्ग। बहुत सरल है किसी साधारण व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाना, उसमें कोई चुनौती नहीं है। लेकिन बुद्ध पुरुष के साथ चुनौती बड़ी होगी, मार्ग कठिन होगा, क्योंकि तुम्हें ऊपर उठना होगा। और ये सब बातें तुम्हें दिक्कत देंगी। उसका प्रेम शीतल होगा, उसका प्रेम तो लगेगा कि सबके लिए है उसके प्रेम में घृणा नहीं होगी।

ऐसा मेरा अनुभव रहा है। कई लोग मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं, और फिर वे चाल चलने लगते हैं, साधारण चालें। जाने या अनजाने वे ऐसा करते हैं। एक तरह से यह स्वाभाविक भी है। वे मुझसे अपेक्षाएं करने लगते हैं—साधारण-सी अपेक्षाएं—और उनका मन द्वैत की भाषा में सोचता है। उदाहरण के लिए, तुम मुझे प्रेम करते हो तो यदि तुम मुझे सुखी कर सको तो तुम सुखी अनुभव करोगे; लेकिन तुम मुझे सुखी नहीं कर सकते, मैं तो सुखी हूं ही।

इसलिए यदि तुम मेरे प्रेम में पड़ते हो तो तुम बहुत हताशा अनुभव करोगे, बहुत निराश होओगे, क्योंकि तुम मुझे सुखी नहीं कर सकते और कुछ करने को बचा नहीं। यदि तुम मुझे सुखी न कर सको तो तुम दुखी हो जाओगे और फिर तुम मुझे दुखी करने का प्रयास करोगे! क्योंकि कम-से-कम यदि तुम उतना भी कर सको तो तुम्हें तृप्ति मिलेगी। तुम मुझे दुखी करने का प्रयास करोगे—अनजाने, तुम जागरूक नहीं हो, तुम्हें इसकी खबर नहीं है। यदि तुम्हें पता हो तो तुम ऐसा नहीं करोगे। लेकिन तुम प्रयास करोगे, तुम्हारा अचेतन मन मुझे दुखी करने का प्रयास करेगा।

यदि तुम मुझे दुखी कर सको तो तुम्हें पक्का हो जाएगा कि तुम मुझे सुखी भी कर सकते हो। लेकिन यदि तुम मुझे दुखी न कर सको तो तुम बिलकुल निराश हो जाते हो। फिर तुम्हें लगेगा कि तुम मुझसे संबंधित नहीं हो, क्योंकि संबंध का तुम्हारे लिए यही अर्थ है।

साधारण प्रेम तो एक रोग है, क्योंकि द्वंद्व चलता रहता है। और बुद्ध पुरुष के प्रेम को समझना कठिन है। उसे बौद्धिक रूप से समझने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हें प्रेम में पड़ना होगा। और फिर तुम्हें अपने ही मन के प्रति सजग रहना होगा, क्योंकि वह मन उलझनें खड़ी करता रहेगा।

बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए, फिर वह अपने घर लौटे, बारह वर्षों बाद वापस लौटे। उनकी पत्नी, जिसे उन्होंने बहुत प्रेम किया था, बहुत क्रोधित थी, बहुत नाराज थी। इन बारह वर्षों में वह प्रतीक्षा ही करती रही थी कि किसी दिन यह व्यक्ति लौटेगा। और

उसके मन में बदले की बड़ी भावना थी, क्योंकि इस व्यक्ति ने उसके साथ अन्याय किया था, वह उचित नहीं था। एक रात अचानक ही वह गायब हो गया था। कम-से-कम वह कुछ कह तो सकता था। तब बात न्यायसंगत हो जाती। लेकिन बिना कुछ कहे, उसे और अपने छोटे से बच्चे को छोड़कर वह गायब हो गया था। बारह वर्ष तक उसने प्रतीक्षा की, और फिर बुद्ध आए। वह आग-बबूला थी, पागल हो रही थी।

बुद्ध का सबसे निकट का, निकटस्थ शिष्य था आनंद। आनंद सदा छाया की तरह उनका अनुसरण करता था। जब बुद्ध महल में प्रवेश कर रहे थे तो उन्होंने आनंद से कहा, 'तू मेरे साथ मत आ।'

आनंद ने पूछा कि क्यों? क्योंकि उसके पास तो साधारण मन था, वह संबुद्ध नहीं था। वह तो जब बुद्ध मरे तभी संबुद्ध हुआ। उसने पूछा, 'क्यों? क्या आप अभी भी पति और पत्नी की भाषा में सोच रहे हैं? कि आप अपनी पत्नी से मिलने जा रहे हैं? क्या आप अभी भी पति-पत्नी की भाषा में सोच रहे हैं?' उसे तो धक्का लगा। एक बुद्ध, एक प्रज्ञावान व्यक्ति कैसे कह सकता है कि मेरे साथ मत आ, मैं अपनी पत्नी से मिलने जा रहा हूं?

बुद्ध ने कहा, 'यह बात नहीं है। यह देखकर कि मैं किसी के साथ आया हूं, वह और भी नाराज हो जाएगी। वह बारह वर्ष से प्रतीक्षा कर रही है। उसे अकेले ही पागल हो लेने दो। वह बड़े प्रतिष्ठित, सुसंस्कृत कुल से है। तो वह तुम्हारे सामने नाराज नहीं होगी, वह कुछ भी प्रकट नहीं करेगी, और बारह वर्ष से वह प्रतीक्षा कर रही है। तो उसे विस्फोट कर लेने दो। मेरे साथ मत आओ। मैं अब उसका पति नहीं हूं, लेकिन वह तो अभी भी पत्नी है। मैं बदल गया हूं, लेकिन वह नहीं बदली है।'

बुद्ध अकेले ही गए। निश्चित ही वह नाराज थी, वह रोने और चीखने-चिल्लाने लगी और तरह-तरह की बातें कहने लगी। और बुद्ध सुनते रहे। वह बार-बार पूछती, 'यदि तुम मुझे थोड़ा भी प्रेम करते थे तो छोड़कर क्यों चले गए? तुम क्यों चले गए? और वह भी मुझे बिना बताए। यदि तुम मुझे थोड़ा भी प्रेम करते थे तो कहो मुझे!' और बुद्ध ने कहा, 'यदि मैं तुझे प्रेम न करता तो मैं वापस क्यों आता?'

लेकिन ये दो अलग बातें हैं, बिलकुल अलग बातें हैं। वह क्या कह रहे हैं, उसे सुनने को वह तैयार ही नहीं थी। वह पूछती ही रही, 'तुम मुझे अकेला क्यों छोड़कर गए? तुम इतना कह दो कि तुमने मुझे कभी प्रेम नहीं किया तो फिर सब ठीक है।' और बुद्ध ने कहा, 'मैं तुझे प्रेम करता था, मैं तुझे अभी भी प्रेम करता हूं। इसीलिए तो बारह वर्ष बाद मैं वापस लौटा हूं।'

लेकिन यह प्रेम भिन्न है। वह क्रोधित थी और बुद्ध क्रोधित नहीं थे। यदि वह भी क्रोधित हो जाते, क्योंकि वह रो रही थी और चीख-चिल्ला रही थी तो वह समझ सकती थी। यदि वह भी क्रोधित हो जाते और उनकी पिटाई करते तो वह समझ सकती थी। तो सब कुछ ठीक हो जाता। तो वह पुराने ही व्यक्ति होते। बारह वर्ष पूरी तरह मिट जाते और वे दोबारा प्रेम करने लगते। उसमें कोई कठिनाई न थी। लेकिन वह तो चुपचाप खड़े

थे और वह पागल हो रही थी। बस वही पागल हो रही थी। वह तो मुस्कुरा रहे थे। यह जरा ज्यादा था। यह कैसा प्रेम? यह समझना उसके लिए बहुत कठिन रहा होगा।

बुद्ध को ताना देने के लिए उसने अपने बेटे से, जो अब बारह वर्ष का था, कहा, 'ये तेरे पिता हैं, देख इनकी ओर, भगोड़े की ओर। तू बस एक दिन का था जब ये भाग गए थे। ये तेरे पिता हैं। ये एक भिखारी हैं और इन्होंने तुझे जन्म दिया था। अब अपना उत्तराधिकार मांग। इनके सामने अपने हाथ फैला, ये तेरे पिता हैं। पूछ इनसे कि तुझे देने के लिए इनके पास क्या है?' वह तो बुद्ध को ताना दे रही थी, वह नाराज थी, स्वभावतः।

और बुद्ध ने आनंद को बुलाया जो बाहर खड़ा था और कहा, 'आनंद, मेरा भिक्षा-पात्र ले आ।' जब भिक्षा-पात्र बुद्ध को दिया गया तो वह उन्होंने अपने बेटे राहुल को दे दिया और कहा, 'यही मेरा उत्तराधिकार है, मैं तुझे संन्यास में दीक्षित करता हूं।'

यह उनका प्रेम था। लेकिन यशोधरा तो और भी पागल हो गई। उसने कहा, 'यह तुम क्या कर रहे हो? यदि तुम अपने बेटे को प्रेम करते हो तो उसे भिखारी नहीं बनाओगे, संन्यासी नहीं बनाओगे।' बुद्ध ने कहा, 'मैं उसे इसीलिए भिखारी बना रहा हूं क्योंकि मैं उसे प्रेम करता हूं। मैं जानता हूं कि वास्तविक उत्तराधिकार क्या है और वही मैं उसे दे रहा हूं। मेरे पिता इतने बुद्धिमान नहीं थे, लेकिन मैं जानता हूं कि क्या देने योग्य है, और वही मैं दे रहा हूं।'

ये दो अलग-अलग आयाम हैं, दो अलग-अलग भाषाएं हैं, जिनका कहीं मिलन नहीं होता। वह प्रेम कर रहे हैं। उन्होंने अपनी पत्नी से जरूर प्रेम किया होगा, इसीलिए वह वापस आए। उन्होंने अपने बेटे को प्रेम किया होगा, इसीलिए उन्होंने उसे दीक्षा दी। लेकिन कोई पिता यह नहीं समझ सकता।

जब बुद्ध के पिता ने इस बारे में सुना—वह बूढ़े थे, बीमार थे—वह बाहर दौड़े आए और बोले, 'यह तूने क्या किया? क्या तू मेरे पूरे वंश को नष्ट करने पर तुला है? तू घर से भाग गया, तू मेरा इकलौता बेटा था। अब राहुल पर मेरी आशाएं टिकी हैं, वह तेरा इकलौता बेटा है। और तूने उसे भी संन्यास दे दिया! तो मेरा वंश तो अब समाप्त हो गया। अब भविष्य की कोई संभावना न रही। तू क्या कर रहा है? क्या तू मेरा शत्रु है?'

और बुद्ध ने कहा, 'क्योंकि मैं अपने बेटे को प्रेम करता हूं, इसलिए इसे वही दे रहा हूं। जो देने योग्य है। न तो आपका राज्य, न आपका वंश और वंश-वृक्ष ही किसी महत्त्व का है। संसार को इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह वंश-वृक्ष आगे बढ़ता है या नहीं। लेकिन यह संन्यास जिसमें मैं राहुल को दीक्षित कर रहा हूं, बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं भी अपने पुत्र को प्रेम करता हूं।'

दो पिता बात कर रहे हैं! बुद्ध के पिता फिर उनसे प्रार्थना करने लगे, 'तू वापस आ जा। मैं तेरा पिता हूं। मैं बूढ़ा हूं। मैं नाराज हूं। तूने मुझे निराश किया है। लेकिन फिर भी मेरे पास पिता का हृदय है और मैं तुझे क्षमा कर दूंगा। आ जा, मेरे द्वार खुले

हैं। वापस आ जा। छोड़ दे यह संन्यास, वापस आ जा, मेरे द्वार खुले हैं। यह राज्य तेरा है, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं बहुत बूढ़ा हूं, लेकिन मेरे मन में तेरे लिए बहुत प्रेम है और मैं क्षमा कर सकता हूं।'

यह एक प्रेम है। फिर यह दूसरे पिता, गौतम बुद्ध स्वयं हैं, जो संसार छोड़ने के लिए अपने बेटे को संन्यास दे रहे हैं। यह भी प्रेम है।

लेकिन दोनों प्रेम इतने भिन्न हैं कि दोनों को एक ही नाम से, एक ही शब्द से बुलाना ठीक नहीं है। लेकिन हमारे पास कोई दूसरा शब्द नहीं है।

दूसरा प्रश्न :

कल रात आपने कहा कि प्रेम जीवंत होता है क्योंकि असुरक्षित होता है, और विवाह मृत होता है क्योंकि सुरक्षित होता है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि प्रेम ही आध्यात्मिक गहराई में विवाह बन जाता है?

नहीं। प्रेम कभी विवाह नहीं बनता। वह जितना गहरा जाता है उतना ही अधिक प्रेम बन जाता है, लेकिन विवाह कभी नहीं बनता। विवाह से मेरा अर्थ है एक बाह्य बंधन, एक कानूनी स्वीकृति, एक सामाजिक समर्थन। और मैं कहता हूं कि प्रेम कभी विवाह नहीं बनता क्योंकि वह कभी सुरक्षित नहीं होता। वह प्रेम ही रहता है। वह अधिक प्रेम और अधिक प्रेम होता चला जाता है, लेकिन जितना अधिक होता है उतना ही असुरक्षित होता जाता है। कोई सुरक्षा नहीं होती। लेकिन यदि तुम प्रेम करते हो तो सुरक्षा की कोई फिक्र नहीं करते। जब तुम प्रेम नहीं करते तभी सुरक्षा की फिक्र होती है।

जब तुम प्रेम करते हो तो वह क्षण ही इतना पर्याप्त होता है कि तुम दूसरे क्षण की चिंता नहीं करते, भविष्य की चिंता नहीं करते। तुम्हें इससे कुछ मतलब नहीं होता कि कल क्या होगा, क्योंकि अभी जो हो रहा है पर्याप्त है, बहुत अधिक है। इतना अधिक है कि संभलता नहीं। तुम कोई चिंता नहीं करते।

मन में सुरक्षा की बात क्यों उठती है? यह चिंता भविष्य के कारण उठती है। वर्तमान पर्याप्त नहीं है इसलिए तुम भविष्य की चिंता करते हो। वास्तव में, तुम वर्तमान में नहीं हो। तुम वर्तमान में नहीं जी रहे। तुम इसका आनंद नहीं ले रहे। यह क्षण आनंद नहीं है। वर्तमान आनंद नहीं है। इसलिए तुम भविष्य की आशा करते हो। फिर तुम भविष्य की योजना बनाते हो, फिर तुम भविष्य के लिए हर सुरक्षा जुटा लेना चाहते हो।

प्रेम कभी भी सुरक्षा जुटाना नहीं चाहता, वह स्वयं में ही सुरक्षित होता है। यही सत्य है। प्रेम स्वयं में ही इतना सुरक्षित होता है कि किसी और सुरक्षा की बात ही नहीं सोचता; भविष्य में क्या होगा, इससे कुछ मतलब ही नहीं है। क्योंकि भविष्य इसी वर्तमान से विकसित होगा, और यदि वर्तमान इतना जीवंत है, इतना आनंदपूर्ण है, तो भविष्य इसी से विकसित होगा। उसके बारे में चिंता क्यों करें?

जब वर्तमान आनंदपूर्ण नहीं होता, विषाद होता है, तब तुम भविष्य के लिए चिंतित होते हो। तब तुम उसे सुरक्षित करना चाहते हो। लेकिन याद रखो, कोई भी कुछ भी सुरक्षित नहीं कर सकता। प्रकृति का ऐसा स्वभाव नहीं है। भविष्य तो असुरक्षित रहेगा ही। तुम केवल एक काम कर सकते हो—वर्तमान को और गहनता से जी लो। तुम इतना ही कर सकते हो। यदि उससे कोई सुरक्षा होती है तो वही एकमात्र सुरक्षा है। और यदि सुरक्षा नहीं हो रही तो नहीं हो रही, कुछ भी किया नहीं जा सकता।

लेकिन हमारा मन सदा आत्मघाती ढंग से व्यवहार करता है। वर्तमान जितना विषादयुक्त होता है, उतना ही तुम भविष्य के बारे में सोचते हो और उसे सुरक्षित करना चाहते हो। और जितने तुम भविष्य में जाओगे, वर्तमान उतना ही विषादयुक्त होता चला जाएगा। फिर तुम एक दुष्चक्र में फंस गए। यह चक्र तोड़ा जा सकता है, लेकिन इसे तोड़ने का एकमात्र उपाय यही है—वर्तमान क्षण इतनी गहनता से जीया जाए कि यह क्षण ही अपनी गहराई में शाश्वतता बन जाए। इसी से भविष्य पैदा होगा, भविष्य अपना मार्ग स्वयं बना लेगा, तुम्हें इसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

तो मैं कहता हूं कि प्रेम सुरक्षा के बारे में कभी नहीं सोचता, क्योंकि वह स्वयं में ही इतना सुरक्षित होता है। प्रेम कभी असुरक्षा से भयभीत नहीं होता। यदि जरा भी प्रेम है तो वह असुरक्षा से भयभीत नहीं होता। प्रेम असुरक्षित है, लेकिन प्रेम असुरक्षा से भयभीत नहीं होता। बल्कि, प्रेम असुरक्षा का आनंद लेता है, क्योंकि असुरक्षा जीवन को रंग देती है, बदलती हुई ऋतुएं और मौसम देती है, धार देती है। यही सौंदर्य है। बदलता हुआ जीवन सुंदर होता है, क्योंकि सदा ही आविष्कृत करने के लिए कुछ शेष रहता है, सदा ही किसी ऐसी चीज से साक्षात्कार होता है जो नई है।

वास्तव में, दो प्रेमी सतत एक-दूसरे में नए-नए आविष्कार करते रहते हैं। और गहराई असीम है। एक प्रेम से भरा हृदय असीम है, अनंत है। तुम उसे कभी समाप्त नहीं कर सकते। उसका कोई अंत नहीं है। वह बढ़ता ही चला जाता है, आगे फैलता चला जाता है। वह आकाश जैसा ही विशाल है।

प्रेम असुरक्षा की परवाह नहीं करता, प्रेम उसका आनंद ले सकता है। इससे एक पुलक मिलती है। जो प्रेम नहीं कर सकते वे ही असुरक्षा से डरते हैं, क्योंकि उनकी जड़ें जीवन में नहीं जमी हुई हैं। जो प्रेम नहीं कर सकते, वे जीवन में सदा सुरक्षित रहते हैं। वे सुरक्षित करने में ही अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं, और जीवन सुरक्षित कभी होता नहीं, हो नहीं सकता।

सुरक्षा मृत्यु का गुण है; सुरक्षा मृत्यु का गुणधर्म है। जीवन असुरक्षित है, और प्रेम इससे नहीं डरता। प्रेम जीवन से, असुरक्षा से नहीं डरता, क्योंकि वह धरती में थिर होता है। यदि तुम धरती में थिर नहीं हो और देखो कि झंझावात आ रहा है तो तुम डर जाओगे। लेकिन यदि तुम धरती में थिर हो तो तुम झंझावात का स्वागत करोगे, वह एक पुलक बन जाएगा। यदि तुम थिर हो तो आता हुआ झंझावात एक चुनौती बन जाएगा, उससे तुम्हारी जड़ें हिल जाएंगी, हर तंतु जीवंत हो उठेगा। फिर जब झंझावात

गुजर जाएगा तो तुम यह नहीं सोचोगे कि यह बुरा था, कोई दुर्भाग्य था। तुम कहोगे कि यह तो सौभाग्य था, एक आशीर्वाद था, क्योंकि झंझावात ने सारी मृतवत्ता दूर कर दी। जो कुछ भी मृत था वह उसके साथ बह गया और जो भी जीवंत था वह और जीवंत हो गया।

जब झंझावात गुजर जाए तो वृक्षों की ओर देखो। वे जीवन से तरंगायित हैं, जीवन से धड़क रहे हैं, दीप्तिमान हैं, जीवंत है, ऊर्जा उन्हें ओत-प्रोत कर रही है। क्योंकि झंझावात ने एक अवसर दिया उन्हें अपनी जड़ों को अनुभव करने का, अपनी थिरता को अनुभव करने का। यह स्वयं के अनुभव का एक अवसर था।

तो जो प्रेम में थिर है वह किसी भी चीज से नहीं डरता। जो कुछ भी आए सुंदर है—परिवर्तन आए, असुरक्षा आए। जो भी होता है शुभ है। लेकिन प्रेम कभी विवाह नहीं बनता। और जब मैं कहता हूं कि प्रेम विवाह नहीं बन सकता तो मेरा यह अर्थ नहीं है कि प्रेमियों को विवाह नहीं करना चाहिए लेकिन यह विवाह प्रेम का विकल्प नहीं बन जाना चाहिए। यह केवल बाहरी आवरण होना चाहिए, यह विकल्प नहीं होना चाहिए।

और प्रेम कभी विवाह नहीं बनता, क्योंकि प्रेमी कभी एक-दूसरे के प्रति सुनिश्चित धारणा नहीं रखते, कोई प्रतिमा नहीं रखते। मेरा जो अर्थ है वह गहन रूप से मनोवैज्ञानिक है, प्रेमी एक-दूसरे के प्रति कभी तय नहीं होते, कोई धारणा नहीं रखते। एक बार तुम एक-दूसरे के प्रति सुनिश्चित हो जाओ तो दूसरा एक वस्तु बन गया। अब वह व्यक्ति न रहा। तो विवाह प्रेमियों को वस्तुओं में बदल देता है। पति एक वस्तु है, पत्नी एक वस्तु है, उनके बारे में पहले से ही भविष्यवाणी की जा सकती है।

मैं पूरे देश में बहुत से परिवारों में ठहरता रहा हूं और मुझे बहुत से पति-पत्नियों को जानने का अवसर मिला है। वे व्यक्ति हैं ही नहीं। उनके बारे में पहले से सब कुछ बताया जा सकता है। यदि पति कुछ कहे तो यह बताया जा सकता है कि पत्नी क्या कहेगी, कैसे व्यवहार करेगी। और यदि पत्नी यंत्रवत रूप से कुछ कहती है तो पति भी यंत्रवत उत्तर देगा।

यह सब सुनिश्चित है। वे वही अभिनय बार-बार कर रहे हैं। उनका जीवन बस उस ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह है जिसमें कुछ गड़बड़ी हो जाए, जिसमें सुई एक जगह अटक जाए और वह बार-बार वही दोहराता जाए यह इतना ही सुनिश्चित है। तुम बता सकते हो कि आगे क्या होने वाला है। पति और पत्नी कहीं अटक गए हैं, वे ग्रामोफोन रिकार्ड बन गए हैं और दोहराए चले जाते हैं। वह पुनरुक्ति ही ऊब पैदा करती है।

मैं एक घर में ठहरा हुआ था। पति ने मुझसे कहा, मैं तो अपनी पत्नी के साथ अकेला रहने से डरने लगा हूं। जब कोई और साथ होता है तभी हम दोनों सुखी होते हैं। हम किसी दूसरे को साथ लिए बिना छुट्टी पर भी नहीं जा सकते, क्योंकि वह दूसरा कुछ नवीनता लाता है। वरना तो हम जानते ही हैं कि क्या होने वाला है। यह सब इतना सुनिश्चित हो गया है कि किसी योग्य ही नहीं रहा। हम पहले से ही सब जानते हैं। यह ऐसे ही है जैसे तुम उसी किताब को बार-बार और बार-बार पढ़ते जाओ।'

प्रेमियों के बारे में पहले से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यही असुरक्षा है। तुम नहीं जानते कि क्या होने वाला है। और यही सौंदर्य है। तुम नए और युवा और जीवंत रह सकते हो। लेकिन हम एक-दूसरे को वस्तु बना लेना चाहते हैं, क्योंकि वस्तु आसानी से नियंत्रित की जा सकती है। और तुम्हें वस्तु से डरने की भी जरूरत नहीं होती। तुम जानते हो कि वह कहां है, उसका व्यवहार क्या है। तुम पहले से ही योजना बना सकते हो कि क्या करना है और क्या नहीं करना है।

विवाह से मेरा अर्थ है एक ऐसी व्यवस्था जिसमें दो व्यक्ति वस्तुओं के तल पर गिर जाते हैं। प्रेम कोई व्यवस्था नहीं है, यह तो एक साक्षात्कार है—क्षण-क्षण, जीवंत। निश्चित ही खतरे से भरा है, पर जीवन ऐसा ही है। विवाह सुरक्षित है, उसमें कोई खतरा नहीं है; प्रेम असुरक्षित है। तुम नहीं जानते कि क्या होने वाला है, अगला क्षण अज्ञात है, और अज्ञात ही रहता है।

तो प्रेम हर क्षण अज्ञात में प्रवेश है। जब जीसस कहते हैं, 'परमात्मा प्रेम है', तो उनका यही अर्थ है। परमात्मा उतना ही अज्ञात है जितना प्रेम। और यदि तुम जीवंत होने को, प्रेम में होने को, असुरक्षित होने को तैयार नहीं हो तो तुम परमात्मा में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि वह तो परम असुरक्षा है, परम अज्ञात है।

तो प्रेम तुम्हें प्रार्थना के लिए तैयार करता है। यदि तुम प्रेम कर सको, और किसी अज्ञात व्यक्ति को बिना वस्तु बनाए, बिना यंत्रवत व्यवहार के क्षण-क्षण जीते हुए प्रेम कर सको, तो तुम प्रार्थना के लिए तैयार हो रहे हो।

प्रार्थना और कुछ नहीं प्रेम ही है, समस्त अस्तित्व के प्रति प्रेम। तुम अस्तित्व के साथ ऐसे जीते हो जैसे अपने प्रेमी के साथ जी रहे हो। न तुम्हें भाव-दशा का पता है, न ऋतु का पता है, तुम्हें कुछ पता ही नहीं कि क्या होने वाला है। कुछ भी ज्ञात नहीं है। तुम बस उघाड़ते चले जाते हो—यह एक अनंत यात्रा है।

तीसरा प्रश्न :

क्या ऐसा हो सकता है कि जो व्यक्ति संबुद्ध नहीं है वह पूर्ण असुरक्षा में जीए और फिर भी संतप्त, हताश और दुखी न हो?

पूर्ण असुरक्षा और उसमें जीने की क्षमता बुद्धत्व के पर्याय हैं। तो जो व्यक्ति संबुद्ध नहीं है वह पूर्ण असुरक्षा में नहीं रह सकता और जो पूर्ण असुरक्षा में नहीं रह सकता वह संबुद्ध नहीं हो सकता। ये दो बातें नहीं हैं, ये एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। तो तुम असुरक्षा में रहने की तब तक प्रतीक्षा न करो जब तक तुम संबुद्ध न हो जाओ, नहीं! क्योंकि फिर तो तुम कभी संबुद्ध न हो पाओगे।

असुरक्षा में जीना शुरू करो, यही बुद्धत्व का मार्ग है। और पूर्ण असुरक्षा के बारे में मत सोचो। जहां तुम हो वहीं से शुरू करो। जैसे तुम हो वैसे ही किसी चीज में समग्र नहीं हो सकते, लेकिन कहीं से तो शुरू करना ही होता है। शुरू में इससे संताप होगा,

शुरू में इससे दुख होगा। लेकिन बस शुरू में ही। यदि तुम शुरुआत पार कर सको, यदि तुम शुरुआत सह सको, तो दुख मिट जाएगा, संताप मिट जाएगा।

इस प्रक्रिया को समझना पड़ेगा। जब तुम असुरक्षित अनुभव करते हो तो संतप्त क्यों होते हो? यह असुरक्षा के कारण नहीं बल्कि सुरक्षा की मांग के कारण है। जब तुम असुरक्षित अनुभव करते हो तो संतप्त हो जाते हो, संताप पैदा होता है। यह असुरक्षा के कारण पैदा नहीं हो रहा बल्कि जीवन को एक सुरक्षा बनाने की मांग से पैदा हो रहा है। यदि तुम असुरक्षा में रहने लगो और सुरक्षा की मांग न करो तो जब मांग चली जाएगी तो संताप भी चला जाएगा। वह मांग ही संताप पैदा कर रही है।

असुरक्षा जीवन का स्वभाव है। बुद्ध के लिए संसार असुरक्षित है; जीसस के लिए भी असुरक्षित है। लेकिन वे संतप्त नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। वे इस वास्तविकता की स्वीकृति के लिए प्रौढ़ हो गए हैं।

प्रौढ़ता अप्रौढ़ता की मेरी यही परिभाषा है। उस व्यक्ति को मैं अपरिपक्व कहता हूं जो कल्पनाओं और सपनों के लिए वास्तविकता से लड़ता रहता है। वह व्यक्ति अपरिपक्व है। प्रौढ़ता का अर्थ है—वास्तविकता का साक्षात्कार करना, सपनों को एक ओर फेंक देना और वास्तविकता जैसी है वैसी स्वीकार कर लेना।

बुद्ध प्रौढ़ हैं। वह स्वीकार कर लेते हैं कि यह ऐसा ही है।

उदाहरण के लिए, हालांकि मृत्यु सुनिश्चित है, पर अपरिपक्व व्यक्ति सोचे चला जाता है कि बाकी सब चाहे मर जाएं लेकिन वह नहीं मरने वाला। अपरिपक्व व्यक्ति सोचता है कि उसके मरने के समय तक कुछ खोज लिया जाएगा, कोई दवा खोज ली जाएगी, जिससे वह नहीं मरेगा। अपरिपक्व व्यक्ति सोचता है कि मरना कोई नियम नहीं है। निश्चित ही, बहुत से लोग मरे हैं, लेकिन हर चीज में अपवाद होते हैं और वह सोचता है कि वह अपवाद है।

जब भी कोई मरता है तो तुम सहानुभूति अनुभव करते हो, तुम्हें लगता है, बेचारा मर गया। लेकिन तुम्हारे मन में यह कभी नहीं आता कि उसकी मृत्यु तुम्हारी मृत्यु भी है। नहीं, तुम उससे बचकर निकल जाते हो। इतनी सूक्ष्म बातों को तो तुम छूते ही नहीं। तुम सोचते रहते हो कि कुछ-न-कुछ तुम्हें बचा लेगा—कोई मंत्र, कोई चमत्कारी गुरु। कुछ हो जाएगा और तुम बच जाओगे। तुम कहानियों में, बच्चों की कहानियों में जी रहे हो।

प्रौढ़ व्यक्ति वह है जो इस तथ्य की ओर देखता है और स्वीकार कर लेता है कि जीवन और मृत्यु साथ-साथ हैं। मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, वह तो जीवन का शिखर है। वह जीवन के साथ घटी कोई दुर्घटना नहीं है, वह तो जीवन के हृदय में विकसित होती है। विकसित होती है और एक शिखर पर पहुंचती है। तो प्रौढ़ व्यक्ति स्वीकार कर लेता है और मृत्यु का कोई भय नहीं रहता। वह समझ लेता है कि सुरक्षा असंभव है।

तुम चाहे एक चारदीवारी बना लो, बैंक बैलेंस रख लो, स्वर्ग में सुरक्षा पाने के लिए धन दान दे दो, तुम सब कर लो, लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि असल में कुछ

भी सुरक्षित नहीं है। बैंक तुम्हें धोखा दे सकता है। और पुरोहित धोखेबाज हो सकता है, वह सबसे बड़ा धोखेबाज हो सकता है, कोई नहीं जानता। वे चिट्ठियां लिख देते हैं···।

भारत में मुसलमानों का एक संप्रदाय है, उसका प्रधान पुरोहित परमात्मा के नाम चिट्ठियां लिखता है। तुम कुछ धन दान दे दो और वह चिट्ठी लिख देगा। चिट्ठी तुम्हारे साथ तुम्हारे मकबरे में, तुम्हारी कब्र में रख दी जाएगी। वह तुम्हारे साथ रख दी जाएगी ताकि तुम उसे दिखा सको। धन पुरोहित के पास चला जाता है और चिट्ठी तुम्हारे साथ चली जाती है। लेकिन कुछ भी तो सुरक्षित नहीं हुआ।

परिपक्व व्यक्ति वास्तविकता का सामना करता है, वह उसको जैसी है वैसी ही स्वीकार कर लेता है। वह कुछ मांग नहीं करता। वह मांगने वाला नहीं होता। वह यह नहीं कहता कि यह ऐसे होना चाहिए। वह तथ्य की ओर देखता है और कहता है, 'हां, यह ऐसा है।' वास्तविकता का सीधा साक्षात्कार तुम्हारे लिए दुखी होना असंभव कर देगा। क्योंकि दुख तभी आता है जब तुम कुछ मांग करते हो। असल में, दुख और कुछ नहीं बस इसी बात का संकेत है कि तुम वास्तविकता के विपरीत चल रहे हो। और वास्तविकता तुम्हारे अनुसार नहीं बदल सकती, तुम्हें वास्तविकता के अनुसार बदलना पड़ेगा। तुम्हें स्वयं को छोड़ना पड़ेगा। तुम्हें समर्पण करना पड़ेगा।

समर्पण का यही अर्थ है—तुम्हें स्वयं को छोड़ना पड़ेगा। वास्तविकता समर्पण नहीं कर सकती, वह तो जैसी है वैसी है। जब तक तुम समर्पण न करो, तुम दुखी रहोगे। दुख तुम्हारे द्वारा ही निर्मित होता है, क्योंकि तुम संघर्ष करते हो।

यह ऐसे ही है जैसे नदी की धारा सागर की तरफ बह रही हो और तुम धारा के विपरीत तैरने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हें लगता है कि नदी तुम्हारे विरुद्ध है। नदी तुम्हारे विरुद्ध नहीं है। उसने तो तुम्हारे बारे में सुना भी नहीं है। वह तुम्हें जानती भी नहीं है। नदी तो बस सागर की ओर बहे जा रही है। यह नदी का स्वभाव है कि सागर की ओर बहे, सागर की ओर चले और उसमें समाहित हो जाए। तुम धारा के विपरीत जाने की कोशिश कर रहे हो।

और हो सकता है किनारे पर कुछ मूरख खड़े हों जो तुम्हें बढ़ावा दे रहे हों, 'तुम बहुत अच्छा कर रहे हो। कोई फिक्र न करो, देर-अबेर नदी को समर्पण करना पड़ेगा। तुम तो महान हो, चलते रहो! जो महान हैं उन्होंने नदी पर विजय पाई है!' सदा ऐसे मूरख लोग होते ही हैं जो तुम्हें प्रेरणा देते हैं, तुम्हारा हौसला बढ़ाते हैं। लेकिन कोई सिकंदर, कोई नेपोलियन, कोई महान व्यक्ति उलटा स्रोत तक नहीं पहुंच सका। देर-अबेर नदी की विजय होती है। लेकिन मरने के बाद तुम वह आनंद नहीं ले सकते जो तब संभव था जब तुम जीवित थे—समर्पण का आनंद, स्वीकृति का आनंद, नदी के साथ ऐसे एक हो जाने का आनंद कि कोई संघर्ष न बचे।

लेकिन किनारे पर खड़े वे मूर्ख लोग कहेंगे, 'तुमने समर्पण कर दिया, तुम हार गए, तुम असफल हुए।' उनकी मत सुनो, उस आंतरिक स्वतंत्रता का आनंद लो जो

समर्पण से आती है। उनकी मत सुनो।

जब बुद्ध ने धारा के विपरीत तैरने की कोशिश छोड़ दी तो जो उनको जानते थे, उन्होंने कहा, तुम भगोड़े हो। तुम पराजित हो। तुमने हार मान ली। दूसरे क्या कहते हैं वह मत सुनो। भीतर के भाव को अनुभव करो। तुम्हें क्या घट रहा है कि उसको अनुभव करो। यदि धारा के साथ बहने में तुम्हें अच्छा लगता है तो यही मार्ग है। यही ताओ है तुम्हारे लिए। किसी की मत सुनो, बस अपने हृदय की सुनो। प्रौढ़ता है यथार्थ का स्वीकार।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक मुसलमान, एक ईसाई और एक यहूदी से एक प्रश्न पूछा गया। प्रश्न एक ही था। किसी ने उन तीनों से पूछा, 'यदि तूफानी लहरें सागर को जमीन पर ले आएं और तुम उसमें डूब जाओ तो तुम क्या करोगे?' ईसाई ने कहा, 'मैं अपने हृदय पर क्रास का चिह्न बनाऊंगा और परमात्मा से प्रार्थना करूंगा कि मुझे स्वर्ग में आने के लिए द्वार खोल दे।' मुसलमान ने कहा, 'मैं अल्ला का नाम लूंगा और कहूंगा कि यही किस्मत है, यही भाग्य है, और डूब जाऊंगा।' यहूदी ने कहा, 'मैं परमात्मा को धन्यवाद दूंगा, उसकी मरज़ी को स्वीकार करूंगा और पानी के नीचे रहना सीख लूंगा।'

यही करना है। अस्तित्व की मरज़ी को, विराट की मरज़ी को स्वीकार करना है और उसमें जीना सीखना है। यही सारी कला है। प्रौढ़ व्यक्ति यथार्थ को स्वीकार कर लेता है, कोई मांग नहीं करता, किसी स्वर्ग की बात नहीं करता। ईसाई मांग कर रहा था, वह मांग रहा था, वह कह रहा था, स्वर्ग के द्वार खोल दो। लेकिन वह भी निराशावादी है जो बस स्वीकार कर लेता है और डूब जाता है। मुसलमान भी यही कर रहा था। यहूदी ने स्वीकार किया, बल्कि स्वागत किया और कहा, यही उसकी मरज़ी है, अब मुझे पानी के नीचे रहना सीखना है। यही परमात्मा की मरज़ी है। वास्तविकता को ऐसा का ऐसा स्वीकार कर लो, और सीखो कि समर्पित हृदय, समर्पित चित्त के साथ उसमें कैसे जीना है।

अंतिम प्रश्न :

कल आपने कहा कि जीवन और मृत्यु साथ-साथ हैं। फिर कृपया बताएं कि अतिक्रमण की क्या आवश्यकता है?

यही आवश्यकता है। इसीलिए आवश्यकता है। जीवन मृत्यु के साथ ही है—यदि तुम इसे समझ सको तो तुमने अतिक्रमण कर लिया।

तुम जीवन को स्वीकार करते हो, मृत्यु को स्वीकार नहीं करते। या कि करते हो? तुम जीवन को स्वीकार करते हो लेकिन मृत्यु को अस्वीकार करते हो, और इसी कारण तुम सदा कठिनाई में रहते हो। तुम कठिनाई में पड़ते हो क्योंकि मृत्यु जीवन का अंग है, जब तुम जीवन को अस्वीकार करते हो तो मृत्यु तो होगी, लेकिन तुम मृत्यु को

अस्वीकार कर देते हो। जब तुमने मृत्यु को अस्वीकार किया तो जीवन को भी अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे दो नहीं हैं। तो तुम कठिनाई में रहोगे। या तो पूरे को स्वीकार करो या पूरे को अस्वीकार करो। यही अतिक्रमण है।

और अतिक्रमण करने के दो उपाय हैं। या तो जीवन और मृत्यु दोनों को एक साथ स्वीकार करो, या दोनों को एक साथ अस्वीकार करो, तब तुम अतिक्रमण कर गए। यही दो उपाए हैं, विधायक और नकारात्मक। नकारात्मक कहता है, 'दोनों को अस्वीकार कर दो।' विधायक कहता है, 'दोनों को स्वीकार कर लो।' लेकिन जोर इस बात पर है कि दोनों साथ होने चाहिए, चाहे स्वीकार करो चाहे अस्वीकार करो। जब जीवन और मृत्यु दोनों होते हैं तो एक-दूसरे को काट डालते हैं। और जब वे दोनों ही नहीं रहते तो तुम अतिक्रमण कर जाते हो।

तुम या तो जीवन से जुड़े होते हो या कभी-कभी मृत्यु से, लेकिन तुम कभी दोनों को स्वीकार नहीं करते। मैं कई लोगों से मिला हूं जो जीवन से इतने हताश हो गए हैं कि वे आत्महत्या करने की सोचने लगते हैं। पहले उनका जीवन में रस होता है, फिर जीवन उबाने लगता है। ऐसा नहीं कि जीवन उबाता है, वह मोह उबाता है, लेकिन लोग सोचते हैं कि जीवन उबा रहा है। तो वे मृत्यु में रस लेने लगते हैं। अब वे सोचने लगते हैं कि अपने को कैसे नष्ट कर लें और कैसे आत्महत्या कर लें, कैसे मर जाएं। लेकिन मोह तो है ही। पहले जीवन का था, अब मृत्यु का है। तो जो व्यक्ति जीवन के मोह में है और जो व्यक्ति मृत्यु में है, वे भिन्न नहीं हैं। मोह तो है ही मोह ही समस्या है। दोनों को स्वीकार करो।

जरा सोचो, यदि तुम जीवन और मृत्यु दोनों को स्वीकार कर लोगे तो क्या होगा? तत्क्षण एक मौन उतर आएगा, क्योंकि वे दोनों एक-दूसरे को काट डालेंगे। जब तुम स्वीकार कर लेते हो तो जीवन और मृत्यु दोनों समाप्त हो जाते हैं, तब तुम अतिक्रमण कर गए, तुम पार चले गए। या दोनों को अस्वीकार कर दो—यह एक ही बात है।

अतिक्रमण का अर्थ है द्वैत के पार चले जाना। मोह का अर्थ है द्वैत में रहना, एक में रस लेना और दूसरे के विपरीत होना। जब तुम दोनों को स्वीकार करते हो या दोनों को अस्वीकार करते हो तो मोह गिर जाता है। तुम्हारी गांठ खुल जाती है। अचानक तुम अपने प्राणों के तीसरे आयाम पर पहुंच जाते हो, जहां न जीवन है न मृत्यु। वही निर्वाण है, वही मोक्ष है। वहां द्वैत नहीं है, अद्वैत है, तथाता है। और जब तक तुम अतिक्रमण न कर जाओ, तुम सदा दुख में ही रहोगे। भले ही तुम अपने मोह को इससे हटाकर उस पर लगा लो, लेकिन तुम दुख में ही रहोगे।

मोह दुख पैदा करता है। अस्वीकार भी दुख पैदा करता है। तुम कुछ भी चुन सकते हो, यह तुम पर निर्भर करता है। तुम कृष्ण की तरह विधायक मार्ग चुन सकते हो। वह कहते हैं, 'स्वीकार करो। दोनों को स्वीकार करो।' या तुम बुद्ध का मार्ग चुन सकते हो। बुद्ध कहते हैं, 'दोनों को अस्वीकार करो।' लेकिन दोनों को साथ-साथ कर लो, फिर अतिक्रमण तत्क्षण होता है। यदि तुम दोनों के बारे में सोचो भी तो अतिक्रमण हो जाएगा।

और यदि वास्तविक जीवन में तुम यह कर पाओ तो एक नई चेतना का आविर्भाव होगा। वह चेतना द्वैत के जगत की नहीं है, वह एक अज्ञात जगत की चेतना है—निर्वाण के जगत की।

आज इतना ही।

ओशो—एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या श्रृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है—ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर, 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैरकर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च, 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि को उपलब्ध हुए। संबोधि के संबध में वे कहते हैं, 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूं। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।' उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। बुद्धत्व घटित होने के पश्चात् भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन् 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्ड मेडलिस्ट) रहकर एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः ही 60-70 हजार की संख्या में उपस्थित होनेवाले श्रोताओं में वे आध्यात्मिक जन-जागरण की लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध थी जो किसी पार के लोक से आती है।

सन् 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि वे ध्यान की कला को और एक नये मनुष्य—जोरबा दि बुद्धा—के अपने जीवन-दर्शन

को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुंचा सकें। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है; जो मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है।

सन् 1970 में वे बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के लिए किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें बताया कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आस-पास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने जाने लगे।

सन् 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने पर उनके प्रभाव का घेरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम, पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। कृष्ण, शिव, महावीर, बुद्ध, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ-ही-साथ भारतीय अध्यात्म आकाश के अनेक संतों—आदि शंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी अनेक साधना-पद्धतियों के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण, संभावित परमाणु युद्ध का विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

वे दिन में केवल दो बार बाहर आते रहे—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

वर्ष 1979 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष उन्हें जून में अमरीका ले जाया गया।

उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगॅन के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जगह खरीदी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह जगह एक फूलते-फलते शहर में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5000 प्रेमी मित्र मिल-जुलकर अपने सद्‌गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्टूबर, 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया।

मध्य सितंबर, 1985 में ओशो की सचिव के रजनीशपुरम छोड़कर चले जाने के बाद उसके अपराधों की खबरें ओशो तक पहुंचीं। उसके अपराधपूर्ण कृत्यों के संबंध में बताने के लिए एक विश्व पत्रकार-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें ओशो ने स्वयं प्रशासन-अधिकारियों से अपनी सचिव को गिरफ्तार करने को कहा। लेकिन अधिकारियों की खोजबीन का उद्देश्य कम्यून को नष्ट करना था, न कि सचिव के अपराधपूर्ण कृत्यों का पता लगाना। प्रारंभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं। यह उनके लिए एक अच्छा मौका था।

अक्टूबर, 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डालकर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल ले जाया जाता रहा। जगह-जगह घुमाते हुए उन्हें पोर्टलैंड (ओरेगॅन) ले जाया गया। सामान्यतः जो यात्रा पांच घंटे की है, वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असरवाला जहर दिया।

14 नवंबर, 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने उन्हें विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। उनकी देखभाल करनेवाले उनके गैर-भारतीय शिष्यों के वीसा रद कर दिये गये, उन्हें मिलने के लिए आनेवाले पत्रकारों और उनके शिष्यों को वीसा देने से इनकार किया गया। तब ओशो नेपाल चले गये। लेकिन उन्हें नेपाल में भी अधिक समय तक रुकने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी, 1986 में वे विश्व-भ्रमण के लिए निकले, जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से की। लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतंत्र लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्‌जरलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई, 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना में अपने आश्रम लौटे, जो अब ओशो कम्यून इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों के आग्नेय बाणों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इंटरनेशनल में अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित यूटोपिया का सपना साकार देखकर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर, 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी, 1989 को ओशो कम्यून इंटरनेशनल के बुद्ध सभागार में प्रवचन के दौरान उनके 10,000 शिष्यों व प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्टूबर, 1985 में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने के कारण एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया, जिसके बावजूद वे ओशो कम्यून इंटरनेशलन, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल, 1989 तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे।

17 सितंबर, 1989 से गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। यह बैठक 'ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड' कहलाती है। ओशो 16 जनवरी, 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सभा में उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर में इतना दर्द है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी, 1990 की संध्या-सभा में घोषणा की गई कि ओशो अपनी देह छोड़कर पांच बजे अपराह्न को महाप्रयाण कर गए हैं। ओशो की इच्छा के अनुरूप उसी संध्या उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए लाकर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी, 1990 की पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून में लाकर च्वांग्त्सू हॉल में निर्मित एक संगमरमर की समाधि में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11, 1931—Jan 19, 1990

ओशो कम्यून, ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन ओशो की विदेह-उपस्थिति में आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बन गया है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति की अनुभूति कर रहे हैं।

●●●

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद

सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण

गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति-

महावीर

महावीर-वाणी (दो भागों में)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

मीरा

पद घुंघरू बांध
झुक आई बदरिया सावन की

बुद्ध

एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

लाओत्से

ताओ उपनिषद (छह भागों में)

अष्टावक्र

महागीता (छह भागों में)

कबीर

सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूंघट के पट खोल
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फ़रीद)

शांडिल्य

अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

दादू

सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन

नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

सुंदरदास

हरि बोलौ हरि बोल

ज्योति से ज्योति जले

पलटू

अजहूं चेत गंवार

सपना यह संसार

काहे होत अधीर

धरमदास

जस पनिहार धरे सिर गागर

का सोवै दिन रैन

मलूकदास

कन थोरे कांकर घने

रामदुवारे जो मरे

दरिया

कानों सुनी सो झूठ सब

अमी झरत बिगसत कंवल

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

बिन बाती बिन तेल

सहज समाधि भली

दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी

भक्ति-सूत्र (नारद)

शिव-सूत्र (शिव)

भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)

एक ओंकार सतनाम (नानक)

जगत तरैया भोर की (दयाबाई)

बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)

नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)

संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)

कहै वाजिद पुकार (वाजिद)

मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)

सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)

बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)

दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)

हंसा तो मोती चुगैं (लाल)

गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)

मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)

झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)

जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र

मृत्योर्मा अमृतं गमय

प्रीतम छवि नैनन बसी

रहिमन धागा प्रेम का

उड़ियो पंख पसार

सुमिरन मेरा हरि करैं

पिय को खोजन मैं चली

साहेब मिल साहेब भये

जो बोलैं तो हरिकथा

बहुरि न ऐसा दांव

ज्यूं था त्यूं ठहराया

ज्यूं मछली बिन नीर

दीपक बारा नाम का

अनहद में बिसराम

लगन महूरत झूठ सब

सहज आसिकी नाहिं

पीवत रामरस लगी खुमारी

रामनाम जान्यो नहीं

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद

सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण

गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर

महावीर-वाणी (दो भागों में)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

मीरा

पद घुंघरू बांध
झुक आई बदरिया सावन की

बुद्ध

एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

लाओत्से

ताओ उपनिषद (छह भागों में)

अष्टावक्र

महागीता (छह भागों में)

कबीर

सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूंघट के पट खोल
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फ़रीद)

शांडिल्य

अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

दादू

सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन

नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

सुंदरदास

हरि बोलौ हरि बोल

ज्योति से ज्योति जले

पलटू

अजहूं चेत गंवार

सपना यह संसार

काहे होत अधीर

धरमदास

जस पनिहार धरे सिर गागर

का सोवै दिन रैन

मलूकदास

कन थोरे कांकर घने

रामदुवारे जो मरे

दरिया

कानों सुनी सो झूठ सब

अमी झरत बिगसत कंवल

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

बिन बाती बिन तेल

सहज समाधि भली

दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी

भक्ति-सूत्र (नारद)

शिव-सूत्र (शिव)

भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)

एक ओंकार सतनाम (नानक)

जगत तरैया भोर की (दयाबाई)

बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)

नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)

संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)

कहै वाजिद पुकार (वाजिद)

मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)

सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)

बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)

दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)

प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)

हंसा तो मोती चुगैं (लाल)

गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)

मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)

झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)

जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र

मृत्योर्मा अमृतं गमय

प्रीतम छवि नैनन बसी

रहिमन धागा प्रेम का

उड़ियो पंख पसार

सुमिरन मेरा हरि करैं

पिय को खोजन मैं चली

साहेब मिल साहेब भये

जो बोलैं तो हरिकथा

बहुरि न ऐसा दांव

ज्यूं था त्यूं ठहराया

ज्यूं मछली बिन नीर

दीपक बारा नाम का

अनहद में बिसराम

लगन महूरत झूठ सब

सहज आसिकी नाहिं

पीवत रामरस लगी खुमारी

रामनाम जान्यो नहीं

सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पाजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
चेति सकै तो चेति
क्या सोवै तू बावरी
एक एक कदम
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
मूलभूत मानवीय अधिकार
नया मनुष्य : भविष्य की एकमात्र आशा
सत्यम् शिवम् सुंदरम्
रसो वै सः
सच्चिदानंद
पंडित-पुरोहित और राजनेता : मानव आत्मा के शोषक
ॐमणि पद्मे हुम्
ॐशांतिः शांतिः शांतिः
हरि ॐतत्सत्
एक महान् चुनौती : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र

संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)
तंत्र-सूत्र (पेपर बैक दस भागों में)

पत्र-संकलन

क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप
अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा

मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना, योग

ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
रजनीश ध्यान योग
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
नेति-नेति
मैं कहता आंखन देखी
पंतजलि : योग-सूत्र (दो भागों में)

साधना-शिविर

साधना-पथ
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज

ओशो के संबंध में

भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति

संपर्क सूत्र : साधना फाउण्डोशन, 17 कोरेगांव पार्क, पूना 411001

ओशो

रहस्य में प्रवेश

- तंत्र शरीर अथवा पदार्थ तथा मन दोनों को स्वीकार कर उसके रहस्यों को प्रकाशित करता है तथा इसके साथ ध्यान के जुड़ जाने से चेतना के अनुभव का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। ओशो ने जीवन और जगत के संदर्भ में तंत्र के इसी बहुआयामी स्वरूप का अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत उदात्त, अत्यंत कल्याणकारी उद्घाटन किया है।
- ओशो ने स्पष्ट किया कि तंत्र जीवन को देखने का विधायक भाव है, वह जीवन के पूर्ण स्वीकार का मार्ग है। तंत्र ऐसा मार्ग है, जिससे हृदय खिल उठता है।
- ओशो ने अपने प्रवचनों द्वारा समझाया है कि तंत्र का पूरा जोर चेतना के विकास पर है। तंत्र ध्यान की अनेक विधियों द्वारा मूर्च्छा को दूर कर जागरण के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।
- इस सदी के सर्वाधिक चर्चित संत, चिंतक एवं दार्शनिक महामानव ओशो के प्रवचनों की यह शृंखला वास्तव में ऐसी विधियां हैं, जो आज के बदहवास मनुष्य का आध्यात्मिक कल्याण करने में सक्षम हैं।
- 'रहस्य में प्रवेश' ओशो द्वारा भगवान् शिव के 'विज्ञान भैरव-तंत्र' पर दिए गए 80 प्रवचनों में से 65 से 72 प्रवचनों का यह संकलन इस भौतिक युग में एक सार्थक मार्गदर्शक है, जो मन को विकसित करता है और मस्तिष्क के दरवाजे खोलता है।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 75/-
ISBN 81-216-0716-7
AHW HPB HINDI SERIES

रहस्य में प्रवेश ओशो

H-2416